प्रकाशक
मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी

•

प्रथम संस्करण
१९५
मूल्य : आठ रुपये

•

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय वाराणसी

अग्रजों एवं साथियोंको

जिनकी पगडंडियोंके कदमोंमें
समीक्षाके प्रशस्त पथकी
अँगड़ाइयाँ
उभर-उभर उठती हैं

—सुमन—

दो शब्द

मिर्ज़ा या मीरज़ा ग़ालिब उर्दू काव्यके सबसे अधिक विवादास्पद कवि हैं। उनके जीवन-कालमें कुछने उनपर फब्तियाँ कसीं, कुछने श्रद्धासे उनके आगे सिर झुकाया। आजतक यही हालत है। कुछ कहते हैं उर्दू क्या किसी भारतीय भाषामें उनकी समता नहीं, कुछ उन्हें दुर्बल अनुभूतियाँ लेकर कल्पनाके गगनमें उड़नेवाला एक सामान्य कवि मानते हैं।

जो हो, ग़ालिबकी हस्तीमें एक कशिश है। विरोध करो या अपनाओ पर उसे छोड़ नहीं सकते। इसीलिए ग़ालिबपर इतना लिखा गया है और इतने प्रकारसे लिखा गया है कि वह एक भूल-भुलैया बनकर रह गया है। पाठक समझ नहीं पाता, उलटे उलझकर रह जाता है।

हिन्दीमें भी उनका दीवान दो एक जगहसे निकला है—सभाष्य भी और मूल रूपमें भी। पर एक भी उनके बहुरंगी व्यक्तित्वको स्पष्ट नहीं करता। उनमें अशुद्धियाँ भी हैं। उनके दीवानके एक अच्छे भाष्यकी आवश्यकता आज भी है। ग़ालिबका सम्पूर्ण काव्य भी हिन्दीमें नहीं निकल पाया है।

इस पुस्तकमें ग़ालिबके जीवन, व्यक्तित्व, काव्य तथा उसकी मानसिक पृष्ठभूमिके साथ उनके काव्यके चुने हुए अंश दिये गये हैं। चुनाव करते समय उनके दीवानेतर काव्यका भी ध्यान रखा गया है। चेष्टा की गयी है कि ग़ालिबको तथा उनके काव्यको सर्वांगीण दृष्टिसे देखने-परखनेमें हम पाठकोंके लिए कुछ उपयोगी हो सकें।

बस इतना ही।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

कृतज्ञता-ज्ञापन

पुस्तक लिखनेमें निम्नलिखित पुस्तकों एवं पत्रिकाओंसे सहायता ली गयी है। लेखक इनके रचयिताओंके प्रति आभार प्रकट करता है।

१ अहवाले ग़ालिब	मुख़्तारउद्दीन अहमद
२ ज़िक्रे ग़ालिब	मालिकराम
३ यादगारे ग़ालिब	हाली
४ ग़ालिब नामा	मुहम्मद इकराम
५ 'ग़ालिब' लाइफ़ एण्ड क्रिटिकल एप्रीसियेशन आफ़ हिज उर्दू पोएट्री	सय्यद अब्दुल लतीफ़
६ नक़्दे ग़ालिब	मुख़्तारउद्दीन अहमद
७ फ़िलसफ़ा कलामे ग़ालिब	शौकत सब्ज़वारी
८ नक़्शे आज़ाद	गुलाम रसूल मेहर
९ महासिन कलामे ग़ालिब	अब्दुर्रहमान बिजनौरी
१ ग़ालिबकी शायरी	मिर्ज़ा अस्करी
११ उर्दू शायरीपर एक नज़र	कलीमउद्दीन अहमद
१२ ग़ालिब	गुलाम रसूल मेहर
१३ अरमुग़ाने ग़ालिब	इकराम
१४ इन्तख़ाबे ग़ालिब	मुमताज़ हुसेन
१५ उकाम्त-ए ग़ालिब	मालिक राम
१६ दीवाने ग़ालिब	मालिक राम
१७ दीवाने ग़ालिब	हमीदउद्दीन नैयर
१८ दीवाने ग़ालिब	बेहू इलाहाबादी
१९ दीवाने ग़ालिब	आग़ा मुहम्मद ताहिर
२ दीवाने ग़ालिब मय शरह	नज़्म तबातबाई
२१ मरातुल्ग़ालिब	बेख़ुद देहलवी
२२ दीवाने ग़ालिब मय शरह	जोश मलसियानी
२१ बयाने ग़ालिब	आग़ा मुहम्मद बाक़र

२४	मोमिन व ग़ालिब	मजीद यार जंग
२५	मुताअए ग़ालिब	असर लखनवी
२६	शरह कलामे ग़ालिब	आसी
२७	सरगुज़श्ते ग़ालिब	सय्यद मुहीउद्दीन क़ादरी
२८	रूहे ग़ालिब	सय्यद मुहीउद्दीन
२९	दीवाने ग़ालिब उर्दू	इम्तियाज़ अली अर्शी
३०	दीवाने ग़ालिब	सरदार जाफ़री
३१	दीवाने ग़ालिब मुसव्विर	चग़ताई
३२	उर्दू-ए मुअल्ला	ग़ालिब
३३	ऊदे हिन्दी	ग़ालिब
३४	अक्सी नुस्ख़े ग़ालिब	मिर्ज़ा अस्करी
३५	नादिराते ग़ालिब	आफ़ाक़ हुसेन आफ़ाक़
३६	मकातीबे ग़ालिब	इम्तियाज़ अली अर्शी
३७	आबे हयात	आज़ाद
३८	लाल क़िलेकी एक झलक	नासिर नज़ीर 'फ़िराक़'
३९	देहलीका आख़री साँस	हसन निज़ामी
४०	ग़दर देहलीकी सुबह शाम	हसन निज़ामी

हिन्दी पुस्तकें

४१	ग़ालिब	दयाकृष्ण गंभूर
४२	दीवाने ग़ालिब	मुग़नी अमरोहवी एवं नूरनबी अब्बासी
४३	ग़ालिबकी कविता	कृष्णदेव प्रसाद गौड़
४४	महाकवि ग़ालिबकी ग़ज़लें	रामानुज लाल श्रीवास्तव

पत्र-पत्रिकाएँ :

नुक़ूश लाहौरके विशेषांक
आजकलके विशेषांक एवं सामान्य अंक
नया दौरके कई अंक

—श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-तालिका

जीवन-भाग [१७—२०१]

समीक्षा-भाग [२०५–२५७]

व्याख्या-भाग [२५९–३६५]

काव्य-भाग [३६७–४७६]

परिशिष्ट-भाग [४७७–५११]

जीवन-भाग

श्रीमान फतेलालजी भीखचन्दजी चोरडिया
जयपुर वालों की ओर से भेंट॥

ग़ालिब जीवन-रेखा

उर्दू साहित्य विशेषतः काव्य के अभ्युदयमें दिल्ली और उसके बाद लखनऊका स्थान माना जाता है। उर्दू पैदा तो दिल्लीमें ही हुई थी पर बचपन उसका दक्षिणमें बीता होश सँभालनेपर वह फिर दिल्ली आई और यहीं ब्याही भी गयी।

उर्दू और दिल्ली

उसका मायका चाहे दिल्लीको मानें या दक्षिणको उसकी ससुराल तो दिल्ली ही थी और है। हाँ तरुणाईकी अल्हड़ उमंगोंसे भरी रातें उसकी लखनऊमें भी बीतीं—यौवनकी एक लम्बी रात जो अठखेलियों चोंचलों नखरों और मोहक हाव-भावसे पूर्ण है जिसमें यौवनकी वह ओज है जिसपर शत-शत प्राण निछावर उसमें वह नशा है जिसके चरणोंमें दिल सिजदा करता है और जिसमें अगणित आलिङ्गनोंका स्पर्श है। लखनऊ जो भी हो पर चूँकि प्राण दिल्लीमें ही बसते रहे, उसका कण्ठ वहीं फूटा। मुग़लोंकी दिल्ली शक्तिहीन दिल्ली षड्यन्त्रोंका केन्द्र दिल्ली बार-बार लुटी हुई दिल्ली जवांदिला और मुर्दादिला दिल्लीके प्रति सिपाही शेखको फकीरी पर्यटकी लुटेरे सेनापतियोंका आकर्षण सदा ही बना रहा और आज भी बना है। मजारोंकी भूमि अगणित राज्योंका यह श्मशान दिल्ली जहाँ जवानी और मृत्यु अठखेलियाँ किये खेलती रही है और खेलती है कला और काव्यके लिए भी उपजाऊ भूमि रही है।

यों हम देखते हैं कि रेख़ता या उर्दूका बचपन चाहे दक्षिणमें बीता हो पर उसका विकास और लालन-पोषण दिल्लीमें हुआ। यह अल्हड़ दिल्लीकी गलियोंमें घूमती फिरी जामा मस्जिदकी सीढ़ियोंपर सोई,

महफ़िलोंमें उसके स्वरालाप गूँजे। बागोंमें वह लाला व गुलसे उसकी नर्गिस को आँखें दिखाती फिरी। मस्जिदोंमें उसकी धूम उसने जाम पिये-पिलाये और देखते-देखते सौन्दर्य और जवानी उसमें ऐसी फूट पड़ी कि या अल्लाह! फिर तो उसने अपने आँचलमें लखनऊको भर लिया और दिल्लीसे गुज़री तो हर ही दीवाने पैदा कर दिये शत-शत प्राण उसपर निछावर हो गये। मीर, सौदा और नासिख मोमिन मीर दर्द और ज़ौक और ग़ालिबने उसे क्या-क्या दुलारे दिये कि उसका कण्ठ यौवनकी मस्तीमें फूटा तो फूटा और आज वह करोड़ोंके दिल और दिमाग़पर छा गयी है।

उर्दू का यौवन

जिन कवियोंके कारण उर्दू अमर हुई और उसमें 'बहारे बेख़िज़ाँ' आई उनमें मीर और ग़ालिब सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। मीरने उसे घुला कर मृदुता सरलता प्रेमकी तल्लीनता और अनुभूति दी तो ग़ालिबने उसे गहराई, बातको सूक्ष्म बनाकर कहनेका ढंग आलोचना नवीनता और अलंकरण दिये।

आश्चर्य तो यह है कि दिल्ली (उस समय शाहजहानाबाद) में उर्दू फूली-फली पर जिन दो सर्वोत्कृष्ट कवियों—मीर और ग़ालिब—ने उर्दू काव्यको सर्वोत्तम निधियाँ प्रदान कीं वे दिल्ली के नहीं अकबराबाद (आगरा) के थे। यह ठीक है कि उनका अभ्युदय दिल्लीमें हुआ उनकी संस्कृति दिल्लीकी थी पर उनको जन्म देनेका श्रेय तो अकबराबाद (आगरा) को ही है।

आगराकी देन

ईरानके इतिहासमें जमशेदका नाम प्रसिद्ध है। यह तहमूरसके बाद सिंहासनासीन हुआ था। पर्व नौरोज़का आरम्भ इसीने किया था जिसे आज भी हमारे देशमें पारसी लोग मनाते हैं। कहते हैं इसीने शराबको या अंगूरीको जन्म दिया था। फ़ारसी एवं उर्दू काव्यमें 'जामे-जम' (जो जामे जमशेद'का

वंश-परम्परा

संक्षिप्त रूप है)* अमर हो गया है। इससे इतना तो मालूम पड़ता ही है कि यह मदिराका उपासक था और डटकर पीता-पिलाता था। जमशेदके अन्तिम दिनोंमें बहुतसे लोग उसके शासन एवं प्रबन्धसे असन्तुष्ट हो गये थे। इन बागियोंका नेता ज़ुहाक था जिसने जमशेदको आरेसे चिरवा दिया था पर वह स्वयं भी इतना प्रजा-पीड़क निकला कि सिंहासनसे उतार दिया गया। उसके बाद जमशेदका पोता फरीदूँ गद्दीपर बैठा जिसने पहली बार अग्नि-मन्दिरका निर्माण कराया। यही फरीदूँ गालिब वंशका आदि पुरुष था।

फरीदूँका राज्य उसके तीन बेटों एरज, तूर और सलमम बँट गया। एरजको ईरानका मध्य भाग, तूरको पूर्वी तथा सलमको पश्चिमी क्षेत्र मिले। चूँकि एरजको प्रमुख भाग मिला था इसलिए अन्य दोनों भाई उससे असन्तुष्ट थे। उन्होंने मिलकर षड्यन्त्र किया और उसे मरवा डाला पर बादमें एरजके पुत्र मनोचहरने उनसे ऐसा बदला लिया कि वे तुर्किस्तान भाग गये और वहाँ तूरान नामका एक नया राज्य कायम किया। तूर-वंश और ईरानियोंमें बहुत दिनों तक युद्ध होते रहे। तूरानियोंके उत्थान पतनका क्रम चलता रहा। बल्जुक ऐबकने खुरासान इराक इत्यादिमें सैलजूक राज्यकी नींव डाली। इस राज-वंशमें तोगरलबेग (१ १७–१०६३ ई) अल्प अरसलान (१ ६३–१ ७२ ई) तथा मलिकशाह (१ ७२–१ ९२ ई) इत्यादि हुए जिनके समयमें तूसी एवं उमर

* जामेजम — कहते हैं जमशेदने एक ऐसा जाम (प्याला) बनवाया था जिससे संसारकी समस्त वस्तुओं और घटनाओंका ज्ञान हो जाता था। जान पड़ता है इस प्यालेमें कोई ऐसी चीज़ दिखाई जाती होगी जिसे पीनेपर तरह-तरहके काल्पनिक दृश्य दीखने लगते होंगे। जामेजमके लिए जामे जमशेद जामे जहाँनुमाँ जामे जहाँबी इत्यादि शब्द भी प्रच लित हैं।

सल्जूकोंके कारण फ़ारसी काव्यका उत्कर्ष हुआ। मलिकशाहके दो बेटे थे। छोटेका नाम बर्कियारुक (१ ९४–११ ४ ई०) था। इसीकी वंश-परम्परामें 'ग़ालिब' हुए।

जब इन लोगोंका पतन हुआ खानदान तितर-बितर हो गया। कोई किस्मत आज़माने इधर-उधर चले गये। कुछने सैनिक सेवा की ओर ध्यान दिया। इस वर्गमें एक थे तर्समख़ाँ जो समरक़न्दमें रहने लगे थे। यही ग़ालिबके परदादा थे।

तर्समख़ाँके पुत्र क़ौक़ान बेगख़ाँ शाहआलमके ज़मानेमें अपने बापसे झगड़कर हिन्दुस्तान चले आये। उनकी मातृभाषा तुर्की थी। हिन्दुस्तानीमें बड़ी कठिनाईसे बस टूटे-फूटे शब्द बोल पाते थे।

दादा और पिता

यह क़ौक़ानबेग ग़ालिबके दादा थे। यह कुछ दिन लाहौर रहे, फिर दिल्ली चले आये और शाहआलमकी नौकरीमें लग गये। ५ घोड़े भेरी और पताका इन्हें मिली और पहासूका परगना रिसाले और अपने खर्चके लिए इन्हें मिल गया। क़ौक़ानबेगके चार बेटे और तीन बेटियाँ थीं। बेटोंमें अब्दुल्लाबेग और नसरुल्लाबेगका वर्णन मिलता है। यही अब्दुल्लाबेग ग़ालिबके पिता थे।

अब्दुल्लाबेगका जन्म दिल्लीमें ही हुआ था। जबतक पिता जीवित रहे मजेसे कटी पर उनके मरते ही पहासूकी जागीर हाथसे निकल गयी।

ग़ालिबकी रचनाएँ—कुल्लियाते नस्र और उर्दू-ए-मोअल्ला—देखनेसे मालूम होता है कि उनके बाप अब्दुल्लाबेगख़ाँ जिन्हें मिर्ज़ा दूल्हा भी कहा जाता था पहिले लखनऊ जाकर नवाब आसफ़ुद्दौलाकी सेवामें नियुक्त हुए। कुछ ही दिनों बाद वहाँसे हैदराबाद चले गये और नवाब निज़ाम अलीख़ाँकी सेवा की। वहाँ ३   सवारोंके रिसालेके अफ़सर रहे। वहाँ भी ज़्यादा दिन नहीं टिके और अलवर पहुँचे तथा राजा बख़्तावर सिंहकी नौकरीमें रहे। १८ २ में वहीं गढ़ीकी लड़ाईमें इनकी मृत्यु हो गयी। पर बापकी मृत्युके बाद भी केवल असदुल्लाख़ाँ (ग़ालिब) तथा उनके

छोटे भाईको मिलता रहा। ताल्दा नामका एक गाँव भी जागीरमें मिला। इसप्रकार इनका वंश-वृक्ष यों बनता है—

रुस्तमख़ाँ
|
क़ौक़नबेगख़ाँ
|
अब्दुल्लाबेगख़ाँ — नसरुल्लाबेगख़ाँ — पुत्र — पुत्र — पुत्री — पुत्री — पुत्री
|
(अब्दुल्लाबेगख़ाँ:) असदउल्लाबेगख़ाँ (असद एवं ग़ालिब) — मिर्ज़ा यूसुफ़ — पुत्री ख़ानम

अब्दुल्लाबेगकी शादी आगरा (अकबराबाद) के एक प्रतिष्ठित कुलमें ख़्वाजा ग़ुलामहुसेनख़ाँ कमीदानकी बेटी इज़्ज़तउन्निसाके साथ हुई थी। ग़ुलामहुसेनख़ाँकी आगरामें काफ़ी जायदाद थी। वह एक फ़ौजी अफ़सर थे। इस विवाहसे अब्दुल्लाबेगको तीन सन्तानें हुईं—मिर्ज़ा असदउल्लाबेगख़ाँ मिर्ज़ा यूसुफ़ और सबसे बड़ी ख़ानम।

ग़ालिबका जन्म और बचपन

मिर्ज़ा असदउल्लाख़ाँका जन्म ननिहाल आगरामें ही २७ दिसम्बर १७९७ ई० को रातके समय हुआ। चूँकि पिता फ़ौजी नौकरीमें इधर उधर घूमते रहे इसलिए ज़्यादातर इनका पालन पोषण ननिहालमें ही हुआ। जब यह पाँच साल के थे तभी पिताका देहावसान हो गया। पिताके बाद चचा नसरुल्लाबेगख़ाँने इन्हें बड़े प्यारसे पाला। नसरुल्लाबेग मराठोंकी ओरसे आगराके सूबेदार थे पर जब लार्ड लेकने मराठोंको हराकर आगरा पर अधिकार कर लिया तब यह पद भी टूट गया और इसकी जगह एक कमिश्नरकी नियुक्ति हुई। किन्तु नसरुल्लाबेगख़ाँके साले लोहारूके नवाब फ़ख़रुद्दौला अहमदबख़्शख़ाँकी लार्ड लेकसे मित्रता थी। उनकी

सहायतासे नसरुल्लाबेग अंग्रेजी सेनामें ४०० सवारोंके रिसालदार नियुक्त हो गये। रिसाले तथा इनके भरण-पोषणके लिए १७ रु० मासिक तय हुई। इसके बाद मिर्ज़ाने स्वयं लड़कर भरतपुरके निकट सौंख और सोंसाके जो परगने होल्करके सिपाहियोंसे छीन लिये जो बादमें सदाके लिए इन्हें दे दिये गये। उस समय सिर्फ इन परगनोंसे ही लाख डेढ़ लाखकी सालाना आमदनी थी।

पर एक ही साल बाद चचाकी मृत्यु हो गयी।* इसलिए लॉर्ड लेक द्वारा नवाब अहमदबख्शखाँको फ़ीरोज़पुर झिरकाका इलाका पचीस हज़ार सालाना कर पर मिला हुआ था। नसरुल्लाखाँकी मृत्युके बाद उन्होंने यह प्रबन्ध करा लिया कि पचीस हज़ारका कर माफ़ कर दिया जाय। इसके बदले ५ सवारोंका एक रिसाला रखूँ जिसपर पन्द्रह हज़ार सालाना खर्च होगा और जो आवश्यकता पड़नेपर अंग्रेज़ सरकारकी सेवाके लिए भेजा जायगा। शेष १ हज़ार नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोंको वृत्ति-रूपमें दिया जाय।† यह शर्त मान ली गयी।

---

*किसी लड़ाईमें लड़ते हुए हाथीसे गिरकर १८ ६ में इनका देहावसान हुआ था।

† न जाने कैसे इसके एक मास बाद ही ७ जून १८ ६ ई० को पुष्ट रूपसे नवाब अहमदबख्श खाँने अंग्रेज़ सरकारसे एक दूसरा आज्ञापत्र प्राप्त कर लिया जिसमें लिखा था कि नसरुल्लाबेगके आश्रितोंको पाँच हज़ार सालाना वेतन निम्नलिखित रूपमें दी जाय—

१ ख़्वाजा हाजी (जो ५ सवारोंके अफ़सर थे)—दो हज़ार सालाना।

२ नसरुल्लाबेगकी माँ और तीन बहिनें—डेढ़ हज़ार सालाना।

३ मीरज़ा नौशा और मीरज़ा यूसुफ़ (नसरुल्लाके भतीजे) को डेढ़ हज़ार सालाना इस प्रकार ! हज़ारके ५ हज़ार हुए और ५ हज़ारमें भी सिर्फ ७५ -७५ सालाना ग़ालिब और उनके छोटे भाईको मिले।

यह ठीक है कि बापकी मृत्युके बाद चचाने इनका पालन किया पर शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गयी और यह अपनी ननिहाल आ गये। पिता स्वयं घर-जमाईकी तरह, सदा ससुरालमें रहे। वहीं उनकी सन्तानोंका भी पालन-पोषण हुआ। ननिहाल खुशहाल था। इसलिए ग़ालिबका बचपन ऐशोइशरत बड़ी मौजसे और बड़े आरामसे बीता। उन लोगोंके पास काफ़ी जायदाद थी। ग़ालिब खुद अपने एक पत्रमें 'मतीउल अखबार' प्रेसके मालिक मुंशी शिवनारायणको जिनके दादाके साथ ग़ालिबके नानाकी गहरी दोस्ती थी लिखते हैं —

'हमारी बड़ी हवेली वह है जो अब लक्खीचन्द सेठने मोल ली है। इसीके दरवाज़ेकी संगीन बारहदरीपर मेरी नशस्त थी।§ और पास उसीके एक खटियावाली हवेली और सलीमशाहके तकियाके पास दूसरी हवेली और काले महलसे लगी हुई एक और हवेली और इससे आगे बढ़कर एक कटरा कि वह गड़रियोंवाला' मशहूर था और एक कटरा कि वह 'कश्मीरनवाला' कहलाता था इस कटरेके एक कोठे पर मैं पतङ्ग उड़ाता था और राजा बलवान सिंहसे पतङ्ग लड़ा करते थे।

---

§ 'वह बड़ी हवेली'..... "अब भी पीपलमण्डी आगरामें मौजूद है। इसीका नाम 'काला (कला?) महल' है। यह निहायत आलीशान इमारत है। यह किसी ज़मानेमें राजा गजसिंहकी हवेली कहलाती थी। राजा गजसिंह जोधपुरके राजा सूरजसिंहके बेटे थे और जहांगीरके अहदे जहांगीरमें इसी मकानमें रहते थे। मेरा ख़्याल है कि मिर्ज़ाकी पैदाइश इसी मकानमें हुई होगी। आजकल (१९१८ ई०) यह इमारत एक हिन्दू सेठकी मिल्कियत है और इसमें लड़कियोंका मदरसा है।"—'ज़िक्रे ग़ालिब' (मालिकराम) नवीन संस्करण पृष्ठ २१।

मतलब ननिहालमें मजेसे गुजरती थी। आराम ही आराम था। एक ओर खुशहाल परन्तु पतनशील उच्च मध्यमवर्गकी जीवन-विधिके अनुसार उन्हें पतङ्ग, शतरञ्ज और जुएकी आदत लगी दूसरी ओर उच्चकोटिके बुजुर्गोंकी सोहबतका लाभ मिला। इनकी माँ स्वयं शिक्षिता थीं पर ग़ालिबको नियमित शिक्षा कुछ ज्यादा नहीं मिल सकी। हाँ ज्योतिष, तर्क, दर्शन, सङ्गीत एवं रहस्यवाद इत्यादिसे इनका कुछ न कुछ परिचय होता गया। फ़ारसीकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने आगराके उस समयके प्रतिष्ठित विद्वान् मौलवी मोहम्मद मोअज़्ज़मसे प्राप्त की। इनकी ग्रहण शक्ति इतनी तीव्र थी कि बहुत जल्द यह ज़हूरी जैसे फ़ारसी कवियोंका अध्ययन अपने आप करने लगे बल्कि फ़ारसीमें ग़ज़लें भी लिखने लगे।

शिक्षा

इसी ज़माने (१८१ –१८११ ई) में मुल्ला अब्दुस्समद ईरानसे घूमते-फिरते आगरा आये और इन्हींके यहाँ दो साल तक रहे। यह ईरानके एक प्रतिष्ठित एवं वैभवसम्पन्न व्यक्ति थे और यज़्दके रहनेवाले थे। पहिले ज़रतुश्तके अनुयायी थे पर बादमें इस्लामको स्वीकार कर लिया था। इनका पुराना नाम हुरमुज़्द था। फ़ारसी तो इनकी घुट्टीमें थी। अरबीका भी इन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। इस समय मिर्ज़ा १४ सालके थे और फ़ारसीमें इन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। जब मुल्ला अब्दुस्समद यहाँ आये तो उनसे दो वर्ष तक मिर्ज़ाने फ़ारसी भाषा एवं काव्यकी बारीकियोंका ज्ञान प्राप्त किया और उसमें ऐसे पारङ्गत हो गये जैसे खुद ईरानी हों। अब्दुस्समद इनकी प्रतिभासे चकित थे और इन्होंने अपनी सारी विद्या इसमें उँडेल दी। वह इनको बहुत चाहते थे। जब वह स्वदेश लौट गये तब भी दोनोंका पत्र-व्यवहार जारी रहा। एक बार गुरुने शिष्यको एक पत्रमें लिखा— ऐ अज़ीज़! क्या कहूँ? कि

अब्दुस्समद ईरानीका प्रभाव

बाईं हमः आवारेहा मगह गाह ब ख़ातिर मी गुज़री। * इससे स्पष्ट है कि मुल्ला अब्दुस्समद अपने शिष्यको बहुत प्यार करते थे।

कभी अब्दुल वदूद तथा एक-दो और विद्वानोंने अब्दुस्समदको एक कल्पित व्यक्ति बताया है। कहा जाता है कि मिर्ज़ासे स्वयं भी एकाध बार सुना गया कि 'अब्दुस्समद' एक फ़र्ज़ी नाम है। चूँकि मुझे लोग बे उस्ताद कहते थे उनका मुँह बन्द करनेको मैंने एक फ़र्ज़ी उस्ताद गढ़ लिया है।§ पर इस तरहकी बातें केवल अनुमान और कल्पनापर आधारित हैं। अपने शिक्षणके सम्बन्धमें स्वयं मिर्ज़ाने एक पत्रमें लिखा है—

'मैंने अय्यामे दबिस्तां नशीनीमें[1] 'शरह मिअत-आमिल' तक पढ़ा। बाद इसके लहवो लईब[2] और आगे बढ़कर फ़िस्क़ व फ़िजूर[3] ऐशो इशरतमें मुनहमिक[4] हो गया। फ़ारसी ज़बानसे लगाव और शेरो-सुख़नका ज़ौक़ फ़ितरी व तबई[5] था। नागाह एक शख़्स कि सासाने पंजुमकी नस्लमें से"'मन्तिक़ व फ़िलसफ़ामें[6] मौलवी फ़ज़ल हक़ मरहूमका नज़ीर मोमिन[7] मूहिद व सूफ़ी-साफ़ी था मेरे शहरमें वारिद[9] हुआ और लताएफ़े[10] फ़ारसी—और ग़वामज़े[11] फ़ारसी आमेख़्ता ब अरबी उससे मेरे हल हुए। सोना कसौटीपर चढ़ गया। ज़ेहन माऊज न था। ज़बाने दरीसे पैवन्द अज़ली और उस्ताद बेमुबालग़ा था। हक़ीक़त इस ज़बानकी दिलनशीन व ख़ातिरनिशान[12] हो गयी। ×

---

* 'यादगारे ग़ालिब' (हाली)—इलाहाबादी संस्करण पृष्ठ १४–१५।

§ 'यादगारे ग़ालिब' (हाली)—इलाहाबादी संस्करण पृष्ठ १३।

१ पाठशालामें पढ़नेके दिनोंमें २ खेल-कूद ३ दुराचरण ४ तल्लीन ५. प्राकृतिक स्वाभाविक ६ तर्कशास्त्र व दर्शन ७ धर्मात्मा ८ सन्त ९. प्रविष्ट, १० विचित्रताएँ ११ समीक्षा १२. हृदयमें बैठना।

× यह इशारा मुल्ला अब्दुस्समदके लिए ही है।

पर इनमें उच्च प्रेरणाएँ जागरित करनेका काम इस शिक्षणसे भी ज़्यादा उस वातावरणने किया जो इनके इर्द-गिर्द था। जिस मुहल्लेमें यह रहते थे वह (गुलाबख़ाना) उस ज़मानेमें फ़ारसी भाषाके शिक्षणका एक उच्च केन्द्र था। इनके भाष्यकार मुल्ला वली मुहम्मद उनके बेटे शम्सुल हुदा मौ मरसीदिया आज़मकी आज़म तथा मौ मुहम्मद कामिल वग़ैरा फ़ारसीके एक-से-एक विद्वान् वहाँ रहते थे। वातावरणमें फ़ारसीयत भरी थी इसलिए यह उससे प्रभावित न होते यह कैसे सम्भव था?

बौद्धिक वातावरण

पर जहाँ एक ओर यह तालीम-तर्बियत थी वहाँ ऐशो-इशरतकी महफ़िलें भी इनके इर्द-गिर्द बिखरी हुई थीं। दुलारे थे पैसे-रुपयेकी कमी न थी बाप एवं चचाके मर जानेसे कोई लगाम रखनेवाला न था। किशोरावस्था उमंगमें उमड़ी यार-दोस्तोंके मजमे खाने-पीने शतरंज पतंगबाज़ी शौक़ग़ोम्माइ उनका जमघट। आदतें बिगड़ गयीं। 'गोरे सौन्दर्य परीचेहरों' ने आकर्षित किया। हुस्नके अफ़सानोंमें मन उलझा नज़्मुखियोंने दिलको खींचा। ऐशो-इशरतका बाज़ार गर्म हुआ। २४–२५ साल तक खूब रङ्गरलियाँ कीं पर बादमें उच्च प्रेरणाओंने इन्हें ऊपर उठनेको बाध्य किया। ज़्यादातर बुरी आदतें छूट ही गयीं पर मदिरा-पानकी जो लत लगी सो मरते दम तक न छूटी।

तस्वीरका दूसरा रुख़

इनकी काव्यगत प्रेरणाएँ स्वाभाविक थीं। बचपनसे ही इन्हें शेरो-शायरीकी लत लगी। इश्क़ने उसे उभारा—जो वह इश्क़ बहुत छिछला और बाज़ारू था। जब यह मोहम्मद मोअज्ज़म-के मकतबमें पढ़ते थे और १०–११ सालके थे तभीसे इन्होंने शेर कहना शुरू कर दिया था। शुरूमें बेदिल एवं शौकतके रङ्गमें कहते थे। बेदिलकी छाप इनपर बचपनसे ही पड़ी। २५ सालकी

काव्यकी शुभ धारा

उसमें दो हजार शेरोंका एक दीवान तैयार हो गया। इसमें वही घूमा घाटी वही क्षीण भावनाएँ वही पिटे-पिटाये मज़मून थे। एकबार उनके किसी हितैषीने इनके कुछ शेर मीर तक़ी 'मीर'को सुनाये। सुनकर 'मीर'ने कहा—'अगर इस लड़केको कोई कामिल[1] उस्ताद मिल गया और उसने इसको सीधे रास्तेपर डाल दिया तो लाजवाब शायर बन जायगा वर्ना महमिल[2] बकने लगेगा। 'मीर'की भविष्यवाणी पूरी हुई। सचमु यह महमिल बकने लगे थे पर अन्तःप्रेरणा एवं बुज़ुर्गोंकी कृपासे उस स्तरां ऊपर उठ गये। 'मीर'की मृत्युके समय ग़ालिब केवल ११ वर्षके थे और दो ही तीन साल पहिले उन्होंने शेर कहने शुरू किये थे। प्रारम्भमें इस छोकरे कविकी गज़ल इतनी दूर लखनऊमें 'बुग़ाए-सख़ुन' 'मीर' सामने पड़ी गयी और 'मीर'ने जो बड़ो-बड़ो को ख़ातिरमें न लाते इसकी सुप्त प्रतिभाको देखकर इसकी रचनाओंपर सम्मति दी इसस ज्ञात पड़ता है कि प्रारम्भसे ही इनमें उच्च कविके बीज थे।

जब यह सिर्फ़ तेरह सालके थे इनका विवाह लोहारूके नवाब अहमदबख़्श ख़ाँ (जिनकी बहिनसे इनके चचासाहब ब्याह हुआ था) के छोटे भाई मि

विवाह

इलाहीबख़्श ख़ाँ 'मारूफ़'की लड़की उमराव बेगमके साथ ९ अगस्त १८१ ई० को सम्

हुआ था। उमराव बेगम ११ सालकी थीं। इस तरह लोहारू राजवं इनका सम्बन्ध और दृढ़ हो गया। पहिले भी यह बीच-बीचमें दि आते रहते थे पर शादीके २–३ साल बाद तो दिल्लीके ही हो गये। स्वयं 'उर्दू-ए-मोअल्ला' (पृ० १८१ पर एक पत्र) में इस घटनाका ज़ि करते हुए लिखते हैं —

'७ रजब १२२५ हिजरीको मेरे वास्ते हुक्म दवामे हब्स[3] सादि

---

१ योग्य समय २. निरर्थक ३ स्थायी क़ैद ४ जारी।

हुआ। एक बेड़ी (यानी बीबी) मेरे पाँवमें डाल दी और दिल्ली शहरको जिन्दान[1] मुकर्रर किया और मुझे इस जिन्दामें डाल दिया।

मुख्तसर अगस्तमर १८१ –११ ई०में अकबराबाद आये थे और दो वर्षके विवाहके बाद असदउल्ला खाँ (ग़ालिब) पत्नीके साथ आगरासे दिल्ली गये। दिल्लीमें यद्यपि यह अन्त तक किराये पर रहे पर इतना तो निश्चित है कि ससुरालकी तुलनामें इनकी अपनी सामाजिक स्थिति बहुत हल्की थी। इनके ससुर इलाहीबख्श खाँको राजकुमारोंका ऐश्वर्य प्राप्त था। यौवन-कालमें इलाहीबख्शकी जीवन-विधिको देखकर लोग उन्हें 'शहज़ादए गुलफ़ाम' कहा करते थे। इससे अन्दाज़ लगाया जा सकता है कि उनकी बेटीका पालन-पोषण किस लाड़-प्यारके साथ हुआ होगा। असदउल्ला खाँ शक्ल-सूरतसे बड़ा आकर्षक व्यक्तित्व रखते थे उनके बाप दादे फ़ौजमें उच्चाधिकारी रह चुके थे इसलिए ससुरको आशा रही होगी कि असदउल्ला भी आला रुतबे तक पहुँचेंगे एवं बेटी ससुरालमें सुखी रहेगी पर यह न होना था न हुआ। आखिर तक यह फेरे-चाकरीमें पड़े रहे और उमराव बेगम बापके घर नाज़-प्यारके बीच पली लड़कीको ससुरालमें वे सब सुख सपने हो गये।

जबकि ससुर इलाहीबख्श खाँ न केवल वैभवशाली थे वरं चरित्रवान्, धर्मनिष्ठ तथा अच्छे कवि भी थे। यह ज़ौक़के शिष्योंमें थे। ससुरालका वंश-वृक्ष देखनेसे ही उसकी श्रेष्ठता एवं वैभवका पता चलता है। मौ- मुहम्मद अकरामने 'आसारे-ग़ालिब' में इनकी ससुरालका निम्नलिखित वंशवृक्ष दिया है —

---

१ कारागार।

- ख़्वाजा क़मरुद्दीनख़ाँ
  - आलमजान
  - आरिफ़जान
    - नवाब अहमदबख़्शख़ाँ
      - बहूख़ानमसे
        - शम्सुद्दीन अहमद
        - नवाब बेगम (ज़ैनुलआब्दीनख़ाँ 'आरिफ़' से विवाहित)
      - बेगमजानसे
        - अमीनुद्दीन अहमद
        - ज़ियाउद्दीन अहमद
    - पुत्री (ग़ालिबके चचा नसरुल्लाबेग से विवाहित)
    - इलाहीबख़्शख़ाँ 'मारूफ़' (ग़ालिबके ससुर)
      - उमराव बेगम (ग़ालिबकी पत्नी)
      - बुनियादी बेगम (नवाब ग़ुलामहुसैनसे विवाहित)
    - नबीबख़्श
      - असग़र अलीख़ाँ
  - क़ासिमजान
    - कुदरतुल्ला बेग
      - मुहम्मद हुसैन
        - ज़ियाउद्दीन अहमदख़ाँकी पत्नी
      - मुईनुद्दीन
    - मुहम्मद बख़्श
      - फ़त्हउल्ला बेग
    - फ़ैज़उल्लाख़ाँ
      - नवाब ग़ुलामहुसैनख़ाँ 'मसरूर'
        - ज़ैनुल आब्दीन 'आरिफ़'
          - बाक़र अलीख़ाँ
          - हुसैन अलीख़ाँ
        - हैदरहुसैन

विवाहके दो-तीन साल बाद मिर्ज़ा स्थायी रूपसे दिल्ली आ गये और उनके जीवनका अधिकांश भाग दिल्लीमें ही गुज़रा। ग़ालिबके पिताकी अपेक्षा उनके चाचाकी हालत कहीं अच्छी थी और उनका सम्मान भी अधिक था। पिताका तो अपना घर भी न था वह जन्म भर इधर-उधर मारे-मारे फिरते रहे जबतक रहे घर-जमाई रहे। घर-जमाईका ससुरालमें प्रधान स्थान नहीं होता क्योंकि उसकी सारी स्थिति अपनी पत्नीसे पायी हुई स्थिति होती है। मिर्ज़ाका बचपन ननिहालमें आरामसे भले बीता हो पर बापके मरनेके बाद उनके-जैसे भावुक बच्चेपर अपनी यतीमीका भी असर पड़ा होगा उन्होंने कभी यह भी ख़याल किया होगा कि मेरा इसमें क्या है। चाचाकी मृत्युके बाद ये विचार और प्रबल एवं कष्टजनक हुए होंगे। यतीमीके कारण इनका ठीक राहसे भटक जाना और कजअदाई करना स्वाभाविक-सा रहा होगा। दिल्ली आनेका भी कारण यही रहा होगा कि यहाँ कुछ अपना बना सकूँगा। दिल्ली आनेपर कुछ समय तक तो भी कभी-कभार इनकी सहायता करती रहीं पर मिर्ज़ाके असंख्य पत्रोंमें कहीं भी मामा वग़ैरहसे किसी प्रकारकी मदद मिलनेका उल्लेख नहीं है। इसलिए जान पड़ता है, धीरे-धीरे इनका सम्बन्ध ननिहालसे बिलकुल ख़त्म हो गया था।

आगरा और दिल्लीका असर

दिल्लीमें ससुर तथा उनके प्रतिष्ठित साथियों एवं मित्रोंके काव्य प्रेमका इनपर अच्छा असर हुआ। इलाहीबख्शख़ाँ पवित्र एवं रहस्यवादी प्रेमसे पूर्ण काव्य-रचना करते थे। वह पवित्र विचारोंके आदमी थे। उनके यहाँ सूफ़ियों तथा शायरोंका जमघट रहता था। निश्चय ही ग़ालिबपर इन गोष्ठियोंका अच्छा असर पड़ा होगा। यहाँ उन्हें तसव्वुफ़का परिचय मिला होगा और धीरे-धीरे वह जन्मभूमि आगरामें बीते बचपन तथा बादमें किशोरावस्थामें दिल्लीमें बीते दिनोंके बुरे प्रभावोंसे मुक्त हुए होंगे। दिल्ली आनेपर भी शुरू-शुरूमें तो मिर्ज़ाका वही तर्ज़ रहा पर बादमें वह सँभल गये।

कहा जाता है कि मनुष्यकी कृतियाँ उसके अन्तरका प्रतीक होती हैं। मनुष्य जैसा अन्तरसे होता है, उसीके अनुकूल वह अपनी अभिव्यक्ति कर पाता है। चाहे कैसा ही भ्रामक परदा हो अन्तरकी झलक कुछ न कुछ परदेसे छनकर आ ही जाती है। इनके प्रारम्भिक काव्यके चन्द नमूने लीजिए।

प्रारम्भिक काव्य

[1]नियाज़े-इश्क़, ख़िरमनसोज़ असबाबे-हविस बेहतर।
जो हो जावें निसारे-बर्क़[2] मुश्ते-ख़ारा-ख़स बेहतर।

×　　×　　×

दमता हूँ उसे भी जिसकी तमन्ना मुझको।
जाम बेदारी[3]में है ख़्वाबे ज़ुलेख़ा मुझको।

×　　×　　×

हँसते हैं देख-देखके सब नातवाँ[4] मुझे।
यह रंगे-ज़र्द[5] है चमने-ज़ाफ़राँ[6] मुझे।

×　　×　　×

देख वह बर्क़े[7]-तबस्सुम बस कि दिल बेताब है।
दीदए[8] गिरियाँ मेरा फ़व्वारए-सीमाब[9] है।
ख़ामख़ा दरबारए मैख़ाना बाला मैफ़रोश,
अब शिकस्ते-तोबा[10] मयख़्वारोंका फ़तहुल्बाब है।

×　　×　　×

१ प्रेमका परिचय २ विद्युत् पर न्योछावर, ३ जागरण ४ दुर्बल ५. पीत रंग ६ केसरका उद्यान ७ मुसकराहटकी बिजली ८ रुदनशील नयन ९. पारद १० न पीनेकी प्रतिज्ञाका उल्लंघन।

इक गर्म आह की तो हज़ारोंके घर जले।
रखते हैं इश्क़में ये असर हम जिगरजले।
परवानेका न ग़म हो तो फिर किसलिए 'असद'
हर रात शमअ शामसे ले तासहर जले।

× × ×

ज़ुल्मे दिल तुमने बुलाया है कि जी जाने है।
ऐसे हँसतेको रुलाया है कि जी जाने है।

× × ×

सबा लगा वो तमाँचा तरफ़से बुलबुलके
कि रूए-गुंचए-गुल[1] सूए-आशियाँ[2] फिर जाय।

ऊपर जो शेर दिये गये हैं उनमें एक संवेदना रसवीक्षता तो है पर उनकी अपेक्षा उनमें एक छटपटाहट, बेचैनी ख़यालोंके उड़ते हुए सपनोंकी छाया और कृत्रिम कल्पनाओंकी उछल-कूद अधिक है। कोई मौलिक भावना नहीं कोई उथल-पुथल कर देनेवाली प्रेरणा नहीं। हाँ इतना है कि बचपन से ही इनमें कवि-प्रतिभाके बीज दिखायी पड़ते हैं। ७-८ साल की उम्रमें वह उर्दू (रेख़्ती) तथा ११-१२ सालमें फ़ारसीमें कविता करने लगे थे।

फ़ज़लहक़ खैराबादीका प्रभाव

जैसा मैं पहिले लिख चुका हूँ दिल्ली आनेपर भी बहुत दिनों तक यह अपने उसी आगराके रंगमें रहे। ऐशो-इशरत दिल्लीकी सैरेबाज़ी और समय रईसज़ादोंकी तरह रास रंग या फ़िज़ूलके कामोंमें बिताना। पर इनके हाथों उर्दूका उत्कर्ष होना था। संयोगवश इनकी मुलाक़ात मौलवी फ़ज़लहक़ खैराबादीसे हो गयी। धीरे-धीरे दोनोंमें गहरी मित्रता और घनिष्ठता हो गयी। मौ० फ़ज़लहक़ साहित्य एवं धर्मके गहरे अध्येता

१ पुष्प-कलिकाका मुख २ घोंसलेकी ओर।

तो थे ही काव्यके भी अच्छे पारखी थे। इस ज़मानेकी दिल्ली यद्यपि राजनीतिक दृष्टिसे बेदम बेजान थी पर वहाँ कुछ ऐसे विचारक एकत्र हो गये थे जो समझते थे कि धार्मिक मतानुगतिकता ही हमारे पतनका मुख्य कारण है। वे स्वतन्त्र विचारकी प्रेरणा देते थे। ऐसे लोगोंमें शाह इस्माइल तथा सय्यद अहमद बरेलवी मुख्य थे। सर सय्यद अहमदख़ाँने इनके स्वतन्त्र विचारके इस आन्दोलनकी तुलना लूथरके 'रिफ़ार्मेशन' आन्दोलनसे की है। इनके विरुद्ध पुरानी परम्पराके विद्वानोंका दल था जिसके नेता मौ फ़ज़लहक़ ख़ैराबादी और शाह नसीर थे। मौ फ़ज़लहक़ने अपने जीवन और आचरणसे ग़ालिबपर बहुत प्रभाव डाला। ग़ालिब उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे पर ग़ालिबके विचार एवं चिन्तना नवीन आन्दोलनके अनुकूल थी। तत्सवर्ग शाह इस्माइलका अनुयायी था और ग़ालिब तथा मोमिन दोनों इस सुधार एवं स्वतन्त्र चेतनाके पक्षपाती थे।

बहरहाल विचार-वैभिन्न्य होते हुए भी फ़ज़लहक़ने अपने घनिष्ठ संसर्ग एवं आचरणसे ग़ालिबपर गहरा असर डाला। ग़ालिब इन्हें बहुत मानते थे इनका सम्मान तथा इनकी पवित्रता एवं काव्यानुभूतिका समादर करते थे। इनकी मित्रताने वह काम किया जो पहिले किसीसे न हुआ था। फ़ज़लहक़ने इनके काव्यको नये रास्तेपर मोड़ा पुराने एवं निरर्थक काव्यक संयोजनपर बाध्य किया। इनके और एक दूसरे मित्र मिर्ज़ाख़ानी कोत-वालके अनुरोधपर ही ग़ालिबने अपनी पुरानी ग़ज़लोंके निस्सार भागको काटकर निकाल दिया था तथा काट-छाँटकर एक छोटा दीवान बनाया जो आज इतना लोकप्रिय है।

मौ फ़ज़लहक़ने ग़ालिबके व्यक्तित्वको एक नई मोड़ दी तथा काव्यमें भी एक नई मोड़ लानेमें सफल हुए। बात यह है कि जब असद

काव्यपर आक्षेप

(ग़ालिबका पूर्व कवि-नाम) ने ग़ज़लें सुनानी शुरू की तो इनके शेरोंकी क्लिष्टतापर बड़ा गुस्सा उठा लोगोंने बड़ी आलोचना की पर अपने इन्में यह रत आन-

तियोंकी परवाह न करते थे। इन छिद्रान्वेषकोंको ही लक्ष्य कर उन्होंने आगरामें एक रुबाई कही थी—

> मुश्किल है ज़िबस[1] कलाम मेरा ऐ दिल।
> होते हैं मलूल[2] इसको सुनके आक़िल।*
> आसान कहनेकी करते हैं फ़र्माइश,
> गोयम मुश्किल वगर्नी गोयम मुश्किल।[3]

पर न केवल आगरामें बल्कि दिल्लीमें भी ये आक्षेप जारी रहे। वह कोई विचित्रता अद्भुतता लानेको ही काव्योत्कर्ष समझते थे। इससे उनका काव्य दुरूह हो जाता था। लोग उनके काव्यको बेमानी और मुहमिल बताते थे। मुशायरोंमें गोष्ठियोंमें जलसोंमें महफ़िलोंमें इनकी 'मुश्किल-गोई' (काव्य-कठिनता) के चर्चे होते थे। लोग कहते— अच्छा तो कहते हैं पर भई बहुत मुश्किल कहते हैं। कुछने कहा—'क्या मतलब क्या कुछ मुहमिल बकते हैं। लोगोंकी भावनाको किसीने शेरोंमें भी प्रकट किया—

> अगर अपना कहा तुम आपही समझे तो क्या समझे
> मज़ा कहनेका जब है एक कहे और दूसरा समझे।
> कलामे-मीर समझे और ज़बाने-मीरज़ा समझे।
> मगर इनका कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे।

---

१ बहुत २ खिन्न।

* बादमें इसे बदलकर यों कर दिया—

सुन-सुनके उसे सुख़नवराने कामिल।

३ अर्थात् आसान कहता हूँ तो मेरे लिए कठिनाई है और अगर नहीं कहता हूँ तो भी कठिनाई है

एक मज़ेकी बात है कि मौ० अब्दुल क़ादिर रामपुरीने जो बड़े हास्य-प्रिय थे मिर्ज़ासे किसी मौक़ेपर कहा कि आपका एक उर्दू शेर समझमें नहीं आता और उसी समय दो मिसरे ख़ुद मौज़ू करके मिर्ज़ाके सामने पढ़े—

पहले तो रोग़ने-गुल भैंसके अण्डेसे निकाल।
फिर दवा जितनी है कुल भैंसके अण्डेसे निकाल॥

मिर्ज़ा सुनकर सख़्त हैरान हुए और कहा यह मेरा शेर नहीं। मौ० अब्दुल क़ादिरने कहा कि मैंने ख़ुद आपके दीवानमें देखा है और दीवान हो तो मैं दिखा सकता हूँ। आख़िर मिर्ज़ाको मालूम हुआ कि मुझपर इस पैरायेमें एतराज़ करते हैं।*

लोगोंके आक्षेपपर चिढ़कर कहा था—

न सताइशकी[1] तमन्ना न सिलेकी[2] पर्वा
गर नहीं हैं मेरे अशआरमें मानी न सही।

जैसा लिखा जा चुका है बादमें मौ० फ़ज़्लहक़की मित्रता एवं सलाहसे इन्होंने न केवल अपने पुराने दीवानका संशोधन एवं चयन किया वरं आगेके लिए भी अपनी राह बदल दी यद्यपि अपनी मौलिकता क़ायम रखी। न केवल काव्यमें वरं जीवनमें भी परिष्कार हुआ। शराब तो न छूटी पर लफ़ंगई छूट गयी।

अर्थ-कष्टका आरम्भ

पर विवाहके बाद इनकी आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ती ही गयीं। आगरामें ननिहालमें इनके दिन आराम व आसाइशसे बीतते थे। 'शाहिद व साग़र व शराब व शकर व नग़मे सरूद' की तृप्तिके लिए कोई कठिनाई न थी। दिल्लीमें भी कुछ दिनों यही रङ्ग रहा। साढ़े सात सौ सालाना पेंशन नवाब

---

* यादगारे-ग़ालिब

१ प्रशंसा २ पुरस्कार।

अहमद बख्शके यहाँसे मिलती थी। वह यों भी कुछ न कुछ देते रहते थे। माँके यहाँसे भी कभी-कभी कुछ आ जाता था। ससुरालसे भी कुछ मिल जाता था। इस तरह मजेमें गुजरती थी। पर शीघ्र ही पासा पलट गया।

१८२२ ई० में बृटिश सरकार एवं अलवर दरबारकी स्वीकृतिसे नवाब अहमदबख्श खाँने अपनी जायदादका बँटवारा यों किया कि उनके बाद फ़िरोजपुर झुर्काकी गद्दीपर उनके बड़े लड़के शम्सुद्दीन अहमद खाँ बैठें तथा लोहारूकी जागीर उनके दोनों छोटे बेटों अमीनुद्दीन अहमद खाँ और ज़ियाउद्दीन अहमद खाँको मिले। शम्सुद्दीन अहमदकी माँ मेवातिन थीं और अन्य दोनोंकी बेगमजान। स्वभावतः दोनों औरतोंमें प्रतिद्वंदिता थी और भाइयोंके दो गिरोह बन गये थे। आपसमें पटती न थी। बादमें झगड़ा न हो इस भयसे नवाब अहमदबख्श खाँने अपने जीवन-कालमें ही इस बँटवारेको कार्यान्वित कर दिया और स्वयं एकान्तवास करने लगे। इस प्रकार शम्सुद्दीन अहमद खाँ फ़िरोजपुर झुर्काके नवाब हो गये और दूसरे दोनों भाइयोंको लोहारूका इलाका मिल गया।

गालिबकी मुसीबतें

इस बँटवारेसे गालिब भी प्रभावित हुए। भविष्यके लिए उनकी पेंशन नवाब शम्सुद्दीन अहमद खाँसे सम्बद्ध हो गयी जबकि इनका सम्बन्ध अन्य दो भाइयोंसे अधिक मित्रतापूर्ण था। इसलिए उनकी पेंशनमें तरह-तरहके रोड़े अटकाये गये और एप्रिल १८३१ में वह बिल्कुल बन्द कर दी गयी। यद्यपि १८३५ में नवाब शम्सुद्दीनकी गिरफ्तारीके बाद पुनः जारी हुई और १८३७ में चार वर्षका बकाया पूरेका पूरा मिला। पर बीचमें सारी व्यवस्था भङ्ग हो जानेसे बड़ा कष्ट हुआ। कर्ज बढ़ा। फिर नवाब अहमदबख्श खाँ बीच बीचमें जो कुछ देते रहते थे वह भी बन्द हो गया क्योंकि वह बिल्कुल एकान्तवासी हो गये थे और किसी मामलेमें दखल नहीं देते थे। गालिब की यह हालत देख महाजनोंने भी अपने रुपये माँगना शुरू किया।

उमरावोंसे इनका नाता ख़त्म हो गया। इधर यह हाल था उधर ग़ालिबके छोटे भाई मिर्ज़ा यूसुफ़ भरी जवानी—२८ बरसकी आयुमें पागल हो गये। चारों ओरसे कठिनाइयाँ एवं मुसीबतें एक साथ उठ खड़ी हुईं और ज़िन्दगी दूभर हो गयी।

इधर यह अभाव एवं अन्य विपत्तियाँ उधर ग़रीबीमें भी अमीरी शान। ससुरालके कारण मिर्ज़ाका परिचय दिल्लीके सबसे अधिक प्रतिष्ठित समाजमें हो गया था। बड़ों-बड़ोंसे उनका मिलना-जुलना और मित्रता थी। उधर साढ़े बासठ रुपये मासिककी आय इधर ससुरालका वैभवपूर्ण जीवन। मिर्ज़ा आनबानके आदमी वह अपनी पत्नीके मायकेमें किसीके आगे सिर नीचा न होने देते थे। शेरो-शायरीके कारण भी इनकी प्रतिष्ठा थी। इसलिए थोड़ी आमदनीमें ऊपरी शानो-शौकत क़ायम रखना और मुश्किल हो रहा था। ससुरालकी रियासतमें-से पेंशनका जो इन्तज़ाम था उसमेंसे ख़्वाजा हाजी नामक एक और व्यक्तिका भी हिस्सा था। यह ख़्वाजा हाजी या इनके पिता ख़्वाजा क़ुतुबउद्दीन ग़ालिबके दादा क़ौक़ानबेग ख़ाँके साथ ही हिन्दुस्तान आये थे। कई लोगोंने इन्हें ग़ालिबके ही वंशका बताया है। उनका कहना है कि वह ग़ालिबके पूर्व पुरुष तरसम ख़ाँके छोटे भाई रुस्तम ख़ाँके वंशमें थे। इस विषयमें कुछ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। ख़ुद ग़ालिबका कहना तो यह था कि ख़्वाजा हाजीका बाप मेरे दादा क़ौक़ानबेग ख़ाँका साईस था और उसकी औलाद तीन पुश्तसे हमारी नमकख़्वार है। पर सम्भव है ग़ालिबने जान-बूझकर ऐसा लिखा हो। इतना तो तय है कि दोनों सम्बन्धी थे क्योंकि जिस मिर्ज़ा जीवनबेगके पुत्र मिर्ज़ा अकबरबेगसे ग़ालिबकी बहिन (मिर्ज़ा नसरुल्लाबेगकी भतीजी) छोटी ख़ानम ब्याही थीं उन्हीं जीवनबेगकी कन्या अमीरुन्निसा बेगमसे ख़्वाजा हाजीकी शादी हुई थी। ख़्वाजा हाजी मिर्ज़ा नसरुल्लाबेग ख़ाँके अधीन उनके ४ सवारोंके रिसालेमें एक अफ़सर थे। बादमें जब यह रिसाला टूटा तो उसमेंसे पचास सवार नवाब अहमदबख़्श ख़ाँको दिये गये थे

(जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है)। ख्वाजा हाजी इसी प्रकार सवारोंके रिसालेके अफ़सर बना दिये गये थे। मतलब यह कि जब मिर्ज़ा नसरुल्लाबेग खाँके परिवार एवं आश्रितोंके लिए पाँच हज़ार वार्षिक पेंशन तय हुई तो उसमेंसे दो हज़ार ख्वाजा हाजीको देनेकी व्यवस्था नवाब अहमदबख्शने कर दी थी। १८२६ ई० में ख्वाजा हाजीकी मृत्यु हो गयी। ग़ालिब ख्वाजा हाजीके पेंशन लेनेके विरोधी थे पर यह सोचकर चुप हो गये थे कि पेंशन हाजीकी ज़िन्दगी भरके लिए ही है और उसकी मृत्युपर हमें लौट आयगी पर वैसा नहीं हुआ। हाजीका हिस्सा उसके दोनों बेटों शम्सुद्दीन खाँ (उर्फ़ ख्वाजा जान) और बन्दरहीनखाँ (उर्फ़ ख्वाजा अमान) के नाम कर दिया गया। इससे यह और चिढ़ गये। उन्होंने विरोध भी किया पर उसका कोई परिणाम न हुआ। तब उन्होंने कलकत्ता जाकर इस निर्णयके विरुद्ध गवर्नर जेनरल-इन-कौंसिलसे अपील करनेका निश्चय किया।

झगड़ेका मूल

इस झगड़ेका मूल रूप यह था कि नवाब अहमदबख्शके तीन पुत्र थे—नवाब अमीनुद्दीन तथा नवाब ज़ियाउद्दीन और इन दोनोंके सौतेले भाई और उर्दूके प्रसिद्ध कवि 'दाग़' के जनक नवाब शम्सुद्दीन।* अहमदबख्श शम्सुद्दीनको ज़्यादा मानते थे और उन्होंने महाराज अलवर तथा बृटिश सरकारकी स्वीकृतिसे

---

* मुरक्का अलवरसे मालूम होता है कि शम्सुद्दीन खाँ नवाब अहमद बख्शके औरस पुत्र नहीं थे। अलवरके महाराज बख्तावरसिंहके पास एक तवायफ़ थी—मूघी। उसकी दूरकी बहिन मुदीसे नवाब अहमदबख्शका सम्बन्ध हो गया। इस प्रकार यह उनकी रखैल थी। इससे चार बच्चे हुए थे—शम्सुद्दीन अहमद इब्राहीम अली नवाब बेगम और जहाँगीरा बेगम। नवाब बेगमका विवाह ज़ैनुलआब्दीन खाँ आरिफ़' से हुआ था। जहाँगीरा बेगम एक ईरानी मुहम्मद आज़मसे ब्याही गयी। बादमें नवाब अहमदबख्शने

उन्हींको अपना उत्तराधिकारी माना था। किन्तु इस निर्णयसे दूसरे दो भाई स्वभावत नाराज थे। मामला बड़ा होनेके डरसे अहमदबख्शखाँने शम्सुद्दीन खाँको इस बातपर राजी किया कि पर्गना लोहारू कुछ शर्तोंके साथ दूसरे दोनों भाइयोंको दे दें। १८२२ में यही हुआ था जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है। शेष जागीरका प्रबन्ध शम्सुद्दीनखाँने अपने हाथोंमें ले लिया।

पर एक और कठिनाई थी। ग़ालिबके चचा नसरुल्ला बेग खाँकी जागीर भी नवाब अहमदबख्शकी जागीरमें शामिल हो गयी थी।* इस

मुअज्ज़म नियाज़ मुहम्मद बेगकी कन्या बूबू बेगमसे नियमानुसार विवाह किया जिससे चार सन्तानें हुईं—अमीनउद्दीन अहमद, ज़ियाउद्दीन अहमद, माहे अज़ बेगम और बादशाह बेगम। इस प्रकार शम्सुद्दीनको जायदाद मिलना ही अनियमित था पर नवाब उन्हें ही सबसे ज्यादा चाहते थे। झगड़ेका मूल यही था।

* पहिले हम बता चुके हैं कि मिर्ज़ा नसरुल्लाखाँको दो परगने दिये गये थे। बादमें वे भी फ़ीरोज़पुर सुपुर्द में मिला दिये गये और तय पाया था कि नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोंको दस हज़ार सालाना पेंशन दी जायगी। किन्तु यह रकम चुपके घटाकर ५ हज़ार कर दी गयी और इसमें ख्वाजा हाजीका खानदान भी शामिल कर लिया गया एवं उसे दो हज़ार वार्षिक वृत्ति दी गयी। शेष तीन हज़ारमेंसे ग़ालिबके हिस्सेमें ७५० रु० सालाना आये।

ग़ालिबके चचा नसरुल्लाखाँ १८ ६ में मरे थे। उनके मरनेपर ख्वाजा हाजीने जायदादमें हिस्सा पानेका दावा किया। नवाब अहमदबख्शने स्वयं उसकी ओरसे गवाही दी और यह जागीर हाजीको इस शर्तपर दे दी गयी कि उसीसे नसरुल्लाखाँके आश्रितोंकी भी मदद की जाय। नवाब अहमद बख्शने हाजीको समझाया कि तुम्हारा इलाका मेरे इलाकेसे मिला हुआ है

अभ्यावसे मिर्ज़ा दुखी थे। नवाब अहमदबख्शखाँने नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोंके भरण-पोषणके लिए वृत्ति देनेका वादा किया था। नसरुल्लाखाँके कोई सन्तान न थी इसलिए स्वाभाविक उत्तराधिकार ग़ालिब तथा उनके छोटे भाई मिर्ज़ा यूसुफ तथा उनकी माँ बहिनोंको मिलना चाहिए था। नसरुल्लाखाँके उत्तराधिकारियोंके लिए पुरुमें दस हज़ार सालाना पेंशन नियत हुई थी। किन्तु नवाब अहमदबख्श सिर्फ़ ३ हज़ार देते थे जिसमेंसे मिर्ज़ाके हिस्सेमें केवल साढ़े सात सौ आता था। आरम्भमें तो अहमदबख्शसे इनके सम्बन्ध बहुत अच्छे थे और वह समय-समयपर इन्हें और भी आर्थिक सहायता देते रहते थे। इसलिए मामलेने तूल नहीं पकड़ा पर १८२६ ई० में ग़ालिबके श्वसुर एवं नवाब अहमदबख्शखाँके छोटे भाई इलाहीबख्शखाँकी मृत्यु हो गयी। स्वभावतः पुराने सम्बन्धोंमें कड़वाहट आ गयी। इस समय ग़ालिब २९ वर्षके थे। उनकी ज़िन्दगी ऐशो-इशरतमें बीती थी। लोग नवाबके साथ इनके सम्बन्धके कारण क़र्ज़ भी आसानीसे दे देते थे पर अब जब वृत्तिमें कमी कर दी गयी और नवाबसे वह सुन्दर सम्बन्ध भी न रह गये तो क़र्ज़दाताओंने स्वभावतः रुपये माँगना शुरू कर दिया। ग़ालिबको अन्दरूनी बातें मालूम न थीं और वह यही समझे बैठे थे कि सरकारने जो पर्चे दिये थे वे दस हज़ार सालानाके थे और सिर्फ़ उनके चचाको दिये गये थे। इसलिए जब हाजीके लड़कोंको वारिस बनाया गया तो उन्होंने उसका विरोध किया। नवाब अहमदबख्शको समझानेके लिए वह ख़ुद फ़ीरोज़पुर-झिर्का गये। वहाँ जानेपर मालूम हुआ कि नवाब साहब अलवर गये हुए हैं। उन्हें वहाँ कुछ दिन टिकना पड़ा। जब नवाब लौटे

इसलिए तुमको मालगुज़ारी वसूल करनेमें कठिनाई होती है। इसे मेरे सुपुर्द करो। आमदनी तुम्हें भेजता रहूँगा। इसी समय तय हुआ कि दो हज़ार सालाना हाजीको और १ नसरुल्लाखाँके अन्य आश्रितोंकी फ़िक्र करेगा।

तब उन्होंने सारी बातें सही पर नवाबने व्यवस्थामें कोई परिवर्तन करनेसे इनकार कर दिया। तब वह निराश लौटे और उन्होंने बृटिश सरकारसे अपील करनेका निश्चय किया जिसकी चर्चा हम पहिले कर चुके हैं।

असल बात यह थी कि नसरुल्ला बेगकी मृत्युके बाद उनकी जागीर (सोंख और सोंसा) अंग्रेजोंने ले ली थी। बादमें यह २५ हजार सालानापर अहमदबख्शको दे दी गयी थी। ४ मई १८ ६ को लार्ड लेकने अहमदबख्शखांसे मिलनेवाली २५ हजार वार्षिककी मालगुजारी इस शर्तपर माफ कर दी थी कि वह दस हजार सालाना नसरुल्लाबेगके आश्रितोंको दें। पर इसके चन्द दिनों बाद ही ७ जून १८ ६ को नवाब अहमदबख्शखाने लार्ड लेकसे मिल-मिलाकर इसमें गुपचुप परिवर्तन करा लिया था कि सिर्फ हजार सालाना ही नसरुल्लाबेगके आश्रितोंको दिये जायें और इसमें ख्वाजा हाजी भी शामिल रहेगा। इस गुप्त परिवर्तन एवं संशोधनका ज्ञान ग़ालिबको नहीं था। इसलिए उन्होंने फ़ीरोजपुर-झुरकेके शासकपर दावा दायर कर दिया कि उन्होंने एक तो आदेशके विरुद्ध पेंशन आधी कर दी फिर उस आधीमें भी ख्वाजाहाजीको शामिल कर लिया।

मिर्जाका विश्वास था कि उनके कलकत्ता जाने और गवर्नर जेनरल तथा अन्य उच्चाधिकारियोंसे मिलनेसे मुकदमेपर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

कलकत्ता जानेका निश्चय उस जमानेमें जब यात्राके साधन इतने सुलभ न थे स्थिति बहुत विकट होने पर ही इस लम्बी यात्राका निश्चय किया गया। अगस्त १८२६ के लगभग वह देहलीसे कलकत्ता जानेके लिए रवाना हुए। लखनऊके काव्यप्रेमी एवं विद्वज्जन बहुत समयसे इन्हें वहां बुला रहे थे। पर मौका न मिलता था। अब जो कलकत्ताके लिए निकले तो कानपुरसे लखनऊ होते हुए वहीं जाना तय किया। लखनऊ वालोंने उनका हार्दिक स्वागत किया उन्हें सिर आँखोंपर बिठाया। निम्नलिखित पत्रोंमें उन्होंने लखनऊका जिक्र किया है—

याँ पहुँचकर जो ग़श आता पैहम[1] है हमको।
सद रहे[2] आहंगे-ज़मीं[3] बोसे[4] क़दम है हमको।

लखनऊ आनेका बाइस[5] नहीं खुलता यानी,
हविसे-सैरो-तमाशा[6] सो वह कम है हमको।

ताक़ते रंजे सफ़र ही नहीं पाते इतना,
हिज्रे याराने वतन का भी अलम[7] है हमको।

मक़्तए सिलसिलए शौक़[8] नहीं है यह शहर,
अज़्मे सैर नजफ़[9] व तूफ़े-हरम[10] है हमको।

लिये जाती है कहीं एक तवक़्क़ो ग़ालिब★
जादए राह[11] कशिशे[12] काफ़े करम[13] है हमको।

जब मिर्ज़ा लखनऊ पहुँचे तो उन दिनों ग़ाज़ीउद्दीन हैदर अवधके बादशाह थे। वह ऐशोइशरतमें डूबे हुए इन्सान थे यद्यपि उन्हें भी शेरो-

---

१ लगातार, २ सद सैकड़ों ३ संसारके इरादे ४ चरणचुम्बी ५ कारण ६ भ्रमणके मित्रोंके विनोद ७ दुःख ८ उत्कण्ठाकी शृंखलाको विच्छिन्न करनेवाला ९ नजफ़ (अरबका प्रसिद्ध नगर जहाँ हज़रत अलीका मज़ार है) की सैरका इरादा १० काबाकी परिक्रमा ११ मार्ग १२ खींच १३ कृपा-पुंज (अत्यधिक कृपा) का आकर्षण।

★पहिले यह पाठान्तर था (बादमें बदल दिया)—

लाई है मोतमिदुद्दौला बहादुरकी उम्मीद।

शायरीसे कुछ-न-कुछ दिलचस्पी थी। §शासनका काम मुख्यतः नायब सल्तनत मोतमुद्दौला सय्यद मुहम्मद ख़ाँ देखते थे जो लखनऊके इतिहासमें 'आग़ा मीर' के नामसे मशहूर हैं। अबतक 'आग़ा

लखनऊमें

मीरकी ड्योढ़ी' मुहल्ला लखनऊमें ज्योंका त्यों क़ायम है। उस समय आग़ामीरमें ही शासनकी सब शक्ति केन्द्रित थी। वह सफ़ेद स्याह जो चाहते थे करते थे। यह आदमी शुरूमें एक ख़ानसामा-के रूपमें नौकर हुआ था किन्तु शीघ्र ही नवाब बेगम और रेज़ीडेण्टको ऐसा ख़ुश कर लिया कि वे इसके लिए सब कुछ करनेको तैयार रहते थे। उन्हींकी मददसे वह इस पदपर पहुँच गया था। बिना इसकी सहायताके बादशाह तक पहुँच न हो सकती थी।

ग़ालिबके कुछ हितैषियोंने आग़ामीर तक ख़बर पहुँचाई कि ग़ालिब लखनऊमें मौजूद हैं। आग़ामीरने कहलाया कि उन्हें मिर्ज़ासे मुलाक़ातसे ख़ुशी होगी। मिलनेकी बात तय हुई परन्तु मिर्ज़ाने यह इच्छा प्रकट की कि मेरे पहुँचनेपर आग़ामीर खड़े होकर मेरा स्वागत करें और मुझे नज़र-नज़र पेश करनेसे बरी रखा जाय। आग़ामीरने इन शर्तोंको स्वीकार न किया इसलिए मुलाक़ात न हो सकी। ग़ालिब लखनऊमें लगभग पाँच महीने रहे और आख़िर २७ जून १८२७ शुक्रवारको कलकत्ताके लिए रवाना हुए। अभी सफ़रमें ही थे कि ग़ाज़ीउद्दीन हैदरका देहावसान हो गया और उनकी जगह नसीरुद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे। बहरहाल आग़ामीरसे भेंट न होनेके कारण जो फ़ारसी क़सीदा ग़ालिबने दिल्लीसे लखनऊ आते तथा अपनी

---

§ इन्होंने 'नासिख़' को 'मलिकुश्शुअरा' की उपाधि देकर अपने दरबार में रखना चाहा था पर नासिख़ने यह कहकर खिताब वापिस कर दिया कि ग़ाज़ीउद्दीनको न तो देहलीके बादशाहोंका मर्तबा हासिल है न बृटिश सरकारका ही बल एवं सम्मान प्राप्त है मैं उनका दरबारी शायर होकर क्या करूँगा।

मुर्शिदाबादमें विलम्ब करते हुए किया था वह अमलके बादशाहके सामने पेश न हो सका और नसीरुद्दीन हैदरके गद्दीपर बैठनेके सात-आठ साल बाद नायब सल्तनत रौशन उद्दौला एवं मुंशी मुहम्मद हसनके माध्यमसे दरबार तक पहुँचा और वहाँ पढ़ा गया। वहाँसे शायरको पाँच हजार रुपये इनाम देनेका हुक्म हुआ पर इसमेंसे एक फूटी कौड़ी भी गालिबको न मिली। 'गालिब' के कथनानुसार तीन हजार रौशनउद्दौलाने और दो हजार मुहम्मद हसनने हड़प किये।

लखनऊसे कलकत्ता जाते हुए वह कानपुर, बाँदा, बनारस तथा मुर्शिदाबाद ठहरे। लखनऊसे ६ दिन चलकर कानपुर पहुँचे। वहाँसे बाँदा गये। बाँदामें मौलवी मुहम्मदअली सदर अमीन

मार्ग स्थानोंकी यात्रा

ने इनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया इन्हें हर तरहका आराम दिया और कलकत्ताके प्रतिष्ठित एवं प्रभावशाली आदमियोंके नाम पत्र भी दिये। बाँदामें ही इन्होंने वह मसनवी लिखी थी जिसका निम्नलिखित शेर मशहूर है—

सवादइसगर है शाहिद[1] इस सफर[2] जिस गारो-रिजवाँ[3] का।
व एक गुलदस्ता है इन बेखुदोंके ताके-नसियाँ[4] का।

यात्रामें कठिनाइयाँ भी आई होंगी निराशा भी हुई होगी। यात्राकाल की गजलोंमें इसकी भी ध्वनि है—

थी वतनमें शान क्या 'गालिब' कि हो गुरबत[5] में कद्र,
बेतकल्लुफ हूँ वह मुश्ते-खस कि गुलखन[6] में नहीं।

× × ×

१ प्रदर्शक २ विरक्त ईश्वर स्तव करनेवाला ३ स्वर्गोद्यान ४ विस्मृतिका ताक ५ परदेश-निवास ६ भट्टी भाड़।

न गाश्वद् क़द्‌रत बहे आसियाने।
सर शाख़े गुले दर गुलसिताने।
मगरातिर दारम पेनक गुल अर्मीने।
बहार आइ सवादे विसनसीने।
कि मी आयद् बदस्त आगाहे आफ़िश।
जहाँ आबाद अज़ बहे सवाफ़िश।

गालीबमें कहते हैं कि हे प्रभु! बनारसको बुरी नज़रसे बचाना।
यह नन्दित स्वर्ग है यह भरा-पूरा स्वर्ग है—

तआलिल्लाह बनारस चश्मे बददूर।
बहिश्ते खुर्रमो फ़िरदौस मामूर।

बनारस उनको इतना अच्छा लगा कि ज़िन्दगी-भर उसे नहीं भूल पाये। ४ साल बाद भी एक पत्रमें लिखते हैं कि अगर मैं जवानीमें वहाँ जाता तो वहीं बस जाता। बनारसकी गंगा एवं प्रभातने उन्हें मोह लिया था। इसका बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन उन्होंने किया है। वहाँकी उपासना पूजा, घण्टाध्वनि मूर्तियाँ—मानवी और दैवी दोनों—सबके प्रति उनमें आकर्षण उत्पन्न हो गया था। काशीके बारेमें वह कहते हैं—

बनारसकी गंगा एवं प्रभात

इबादतख़ानए नाक़ूसियाँ अस्त।
हमाना काबए हिन्दोस्ताँ अस्त।

'यह शंखवालोंका उपासनास्थान है। निश्चय ही यह हिन्दुस्तानका काबा है।'

वहाँकी सुन्दरियोंके रूप-सौन्दर्य चाल-ढाल मस्ती इत्यादिका वर्णन करते हुए कहते हैं—

फ़साद शोरिश दर क़ामते नाज़ ।
ज़ माही सद रिश्ता दर सीना बेताब ।
ज़साबे जल्वा हा बेताब गश्त ।
गुहर हा दर सदफ़ हा आब गश्त ।
जबस अर्ज़े तमन्ना मी कुनद गंग ।
ज़ मौजे बादहा पा मी कुनद गंग ।

अर्थात्—

यहाँके बुतोंकी आत्मा नूरके प्रवाहके समान है। वह सरापा (ऊपरसे नीचे तक आमूल चूल) नूर है। उसपर चश्मेबद (बुरी नज़र) न पड़े। ये क्षीणकटि (पतली कमर) पर बलवान हृदय वाली हैं। ऊपरसे नादान-सी दिखती हैं पर अपने कार्यमें चतुर हैं। इनकी मुस्कान ऐसी है कि हर दिलको वशमें कर लेती है और इनके मुखने चैती गुलाबको लजाते हैं। अपनी चालमें पाँवासे गुलाबके फूलोंको मसलती चलती हैं। अपनी ज्वाला-सी जलनेवाली कान्ति (चमक) से अग्नी पूजा करनेवालों (अग्निपरस्तों) और ब्राह्मणोंकी वाक्शक्तिको पराभूत करनेवाली है (अर्थात् सभी उनकी कान्तिसे स्तब्ध एवं मौन हो जाते हैं)। उनका जल-विहार मुक्ता-तरङ्गोंसे भी सुन्दर है। उनका भाव प्रेमीके रक्तसे भी अधिक उष्ण है। गङ्गा तटपर ये क्या आ गयीं एक गुलिस्तां-पुष्पोद्यान-सा आ गया उनके मुख ऐसे लगते हैं मानो गङ्गा-तटपर दीपक जल उठे हों। उनके जलविहार एवं स्नानकी क्रिया लहरोंको आलस्यका निमन्त्रण देती है। ये मृदुल शरीर-यष्टिवाली सुलोचनाएँ दिलोंकी पंक्तियोंपर अपनी बरौनियोंके तीर चलाती हैं। अपनी मस्तीसे इन्होंने तरङ्गोंको चुप कर दिया है। उनके सौन्दर्यसे जल स्तब्ध—स्थिर—हो गया है। फिर देखो इन्होंने पानीके अन्तरमें हलचल पैदा कर दी और सीनोंमें सैकड़ों दिल मछलियोंकी भाँति

तड़प उठे। अपने सौन्दर्यकी दीप्तिसे बेचैन होकर वे पानीमें चली गयीं और ऐसी चमकती हैं जैसे सीपमें मोती चुने हों। उन्हें देख गङ्गा भी अपने दिलमें यही तमन्ना रखती है कि आओ मेरी लहरोंमें स्नान करो जिन्हें मैंने तुम्हारे लिए सुसज्जित किया है।

कलकत्ता

बनारससे नौका-द्वारा ही कलकत्ता जानेकी उनकी इच्छा थी पर उसमें व्यय बहुत अधिक था इसलिए घोड़ेपर रवाना हुए और पटना एवं मुर्शिदाबाद होते हुए २० फरवरी १८२८ को कलकत्ता पहुँचे। यहाँ उन्होंने शिमला बाजारमें* मिर्ज़ा अली सौदागरकी हवेलीमें एक बड़ा मकान (१०) मासिक किरायेपर लिया। पर इनके कलकत्ता पहुँचनेके पूर्व ही नवाब अहमदबख्श ख़ाँकी

---

* स्व० मौलाना अबुलकलाम आज़ादने इसपर प्रकाश डाला है कि यह मुहल्ला कहाँ था और इसका नाम शिमला बाजार क्यों पड़ा। सम्भवतः लार्ड एमहर्स्ट पहिले गवर्नर-जेनरल थे जो शिमला गये। तबसे यह प्रथा चल पड़ी कि यदि अनिवार्य नहीं तो हर दूसरे साल वे गर्मियाँ शिमलेमें बिताते थे। तब रेल नहीं थी। इलाहाबाद-कानपुर तक यात्रा प्रायः नौका द्वारा होती थी। उसके बाद पालकी गाड़ी और घोड़ेपर। यह यात्रा जिस राजसिक ठाट-बाट एवं सामानके साथ होती थी उसका वर्णन उस कालके कई इतिहासकारोंने किया है। एक पूरा नगर कलकत्तासे शिमला तक और शिमलासे कलकत्ता तक गतिमान रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि मजदूरों एवं मुलाज़िमोंका एक बड़ा गिरोह कलकत्तामें केवल इस सफरके लिए रहने लगा और इसके मुहल्लेका नाम शिमला बाजार पड़ गया। यह चितपुर रोडके उस हिस्सेमें था जो बादको बैठक तल्लाके नामसे प्रसिद्ध हुआ। जान पड़ता है, यहीं मिर्ज़ा ग़ालिब ठहरे थे। अब यह हिस्सा बिल्कुल बदल गया है। पुराने मकानोंके नाम-निशान बाक़ी नहीं।

—नक़्शे आज़ाद (गुलाम रसूल मेहर) पृष्ठ १०१

मृत्यु हो गयी इसलिए अब झगड़ा उनके वारिस नवाब शम्सुद्दीनसे शुरू हुआ।

जब मिर्ज़ा अनेक कठिनाइयाँ झेलनेके बाद कलकत्ता पहुँचे तो उन्हें गवर्नर-जेनरल-इन-कौंसिलका जवाब मिला कि पहिले यह मुकदमा दिल्लीके अंग्रेज रेजीडेण्टके सामने पेश होना चाहिए। वहींसे रिपोर्ट आने-पर निर्णय किया जायगा। उस ज़मानेमें जब यात्रा बड़ी कष्टसाध्य थी कलकत्तासे फिर दिल्ली मुकदमेके लिए लौटना मुश्किल था। इसलिए वह स्वयं तो कलकत्ता रहे और दिल्ली रेजीडेंसीमें मुकदमेके लिए हीरालाल नामक व्यक्तिको वकील नियुक्त किया। इन दिनों सर एडवर्ड कोलब्रुक दिल्लीमें रेजीडेण्ट थे। मिर्ज़ाने कलकत्ताके उनके एक मित्र कप्तान हेनरी इम्पकन्से भेंट करके उनसे सिफ़ारिशी पत्र लिया। इसी प्रकार कोलब्रुकके मीर मुंशी मस्तफ़ात हुसेन खाँके नाम भी एक पत्र नवाब अकबरअली खाँ तबातबाई मोतवल्ली इमामबाड़ा हुगलीसे प्राप्त किया और दोनों पत्र अपने वकीलको दिल्ली भेज दिये। इन लोगोंने मदद करनेका वादा किया। ग़ालिब सरकारके सेक्रेटरी एण्ड्रू स्टर्लिंगसे भी मिले। उन्होंने भी मिर्ज़ाको आश्वासन दिया कि न्याय होगा। सर एडवर्ड कोलब्रुकने अपनी रिपोर्ट भी इनके अनुकूल भेज दी। पर कोलब्रुक अव्वल दर्जेका रिश्वतख़ोर था और इसी रिश्वतख़ोरीके जुर्ममें कुछ दिनों बाद निकाल दिया गया। उसकी जगह फ्रांसिस हाकिन्स रेजीडेण्ट नियुक्त हुआ। हाकिन्सकी नवाब शम्सुद्दीनसे मित्रता थी। स्वभावतः उसने सरकारके पास दूसरी रिपोर्ट भेजी और लिखा कि असदउल्ला खाँको जो साढ़े सात सौ मिलती थी उससे अधिक पानेका वह अधिकारी नहीं है।

बहरहाल जिस उद्देश्यसे मिर्ज़ा कलकत्ता गये थे उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। अफ़सरोंने इनकी इज़्ज़त की मददका वादा किया पर कोई ठोस नतीजा न निकला। मिर्ज़ाको बड़ी आशा थी कि न्याय होगा और फ़ैसला उनके पक्षमें होगा। इसी आशापर वह डेढ़ सालसे ज़्यादा अर्से तक

कलकत्तामें पड़े रहे। फ़ैसलेमें बड़ी देर हो रही थी और हाकिमके विरोध का समाचार भी दिल्लीसे आ रहा था इसलिए इन्होंने वकील नियुक्त कर दिल्ली लौटनेका निश्चय किया। २९ नवम्बर १८२९ को दिल्ली लौट आये। जिस एस्टर्लिंगपर इनको भरोसा था वह १ मई १८३ को मर गया और २७ जनवरी १८३१ ई० को गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम बेंटिकने इनके विरुद्ध मुकदमेका निर्णय दे दिया। यद्यपि उसके बाद भी पुनर्निर्णयके लिए यह बराबर प्रयत्न करते ही रहे और यह सिलसिला १८४४ तक चलता रहा किन्तु उसकी चर्चा हम यथास्थान बादमें करेंगे।

कलकत्तामें साहित्यिक कृतियाँ

मुकदमेके सम्बन्धमें तो कलकत्तामें कोई विशेष लाभ न हुआ पर फ़ारसीगोई (फ़ारसी काव्यरचना) में अपनी विशेषता प्रदर्शित करनेके अवसर प्रायः मिलते रहे। इन दिनों कलकत्ता में ईस्टइण्डिया कम्पनीने एक विद्यालय खोल रखा था। उसके अन्तर्गत एक काव्यगोष्ठीका भी निर्माण हुआ था। प्रत्येक मासके प्रथम रविवारको इसकी बैठक हुआ करती थी। ज्यादातर यह मुशायरेके रूपमें होती थी और इसमें उर्दू फ़ारसीकी ग़ज़लें पढ़ी जाती थीं। मिर्ज़ा भी इनमें जाते और ग़ज़लें पढ़ते थे। मिर्ज़ाके कलकत्ता पहुँचनेके बाद जो मुशायरा§ हुआ उसमें उन्होंने

---

§ यह मुशायरा इस विद्यालयकी बेलिगुली स्ट्रीटवाली इमारतमें हुआ था जिसकी नींव १५ जुलाई १८२४ को रखी गयी थी और जो १ साल में तैयार हुई। ग़ालिबके कलकत्ता पहुँचनेके कुछ ही महीने पहिले (अगस्त १८२७ में) कक्षाएँ यहाँ लगने लगी थीं। मुशायरेमें [illegible] अफ़सरके पश्चिमी बरामदेमें बैठते थे और श्रोतागणकी बाहरके सहनमें फ़र्शपर बैठकी थी। ग़ालिबका अनुमान है कि इस मुशायरेमें लगभग ५ हजार आदमी उपस्थित थे।

हुमाम तब्रेज़ीकी ज़मीनमें एक ग़ज़ल कही जिसका यह 'मक़्ता' प्रसिद्ध है —

गर बहम ख़ुरद सितमदाम अज़ीज़ाँ 'ग़ालिब',
रश्के उम्मीद हुमा नाज़े सगाँ बरख़ेज़द।

जब ग़ज़लका निम्नलिखित शेर पढ़ा गया तो किसीने आपत्ति की —

जुज़वे अज़ आलमम व अज़ हमऽ आलम बेशम।
हमा मूए कि बुताँरा ज़मियाँ बरख़ेज़द।

आपत्ति यह थी कि प्रथम मिसरेमें 'बेश'की जगह 'बेशतर' होना चाहिए था। एक दूसरे व्यक्तिने एतराज़ किया कि दूसरे मिसरेमें 'मूए मियाँकी तरकीब ग़लत है बल्कि पूरा शेर निरर्थक है। एक और साहबने 'हमऽ आलम' की तरकीबपर यह एतराज़ किया कि आलम एक वचन है और 'क़तील'के अनुसार हमऽ एकवचनके पहिले नहीं आ सकता।

इसी प्रकार एक और ग़ज़लके निम्नलिखित शेरपर भी एतराज़ किया गया—

ख़ारे अरक़ अफ़िशार बुने मिज़गाँ दारम।
ता'माबर बेसरोसामानिए तूफ़ाँज़दहे।

इसपर यह आपत्ति हुई कि 'बरहद' का प्रयोग ग़लत है। आपत्ति-कर्ताओंमें मौलवी अब्दुल क़ादिर रामपुरी भी करम हुसेन बिलग्रामी भी मेहर अली अज़ीमाबादी और फ़ारसीके कई आचार्य थे। मिर्ज़ाके समर्थकोंमें भी लियाक़त खाँ ईरानी हुए भी अब्दुलकरीम भी मुहम्मद मोहसिन तथा नवाब अकबर अली मोतमद्दी इमामबाड़ा हुगली इत्यादि थे। लियाक़त खाँने पुराने आचार्योंके शेर सुनाये जिनमें 'हम ऽ आलम' 'हम रोज़' जैसी तरकीबें थीं। पर इससे विरोध दबा नहीं विरोधियोंको सन्तोष नहीं हुआ। इधर मिर्ज़ाको अपनी फ़ारसीदानीका अभिमान था।

कलकत्तामें ही इनकी भेंट मौ० सिराज अहमदसे हुई जिनका अधिकारि वर्गमें अच्छा सम्मान था। धीरे-धीरे उनसे अच्छी मित्रता हो गयी।

गुले राना

मिर्ज़ाके जो फ़ारसी पत्र मिलते हैं उनमें सबसे ज़्यादा इन्हींके नाम हैं। इन्हींके अनुरोधपर, कलकत्ता-प्रवासमें मिर्ज़ाने अपने उर्दू तथा फ़ारसी कलामका एक संकलन 'गुले राना' के नामसे किया। इसकी एक अपूर्ण प्रति स्व० मौलाना हसरत मोहानीके पास थी। इसमें अनेक ऐसे उर्दू शेर हैं जो बादमें उर्दू काव्य-संकलन (दीवान) से अलग कर दिये गये।

मुकदमा हार जानेसे जो असर हुआ होगा उसकी कल्पना की जा सकती है। इनकी समस्त आशाएँ इसीपर लगी थीं वे टूट गयीं। यात्रामें

कलकत्ता-यात्राका परिणाम

बहुत अधिक व्यय हुआ तनख़्वाहोंसे ज़्यादा कर्ज़ हो गया। अब कर्ज़दारोंके तक़ाज़े मच गये। कर्ज़ोंकी डिग्रियाँ हुईं। इनके पास क्या था? ऐसी हालतमें इन्हें जेल जाना ही था पर चूँकि इनकी जान-पहिचान बड़े-बड़ोंसे थी इसलिए यह जबतक घरके बाहर न निकलते इनकी गिरफ़्तारी न होती। महीनों यह छिपे घरमें बैठे रहे। यही ज़माना था जिसमें इनके कृपालु मित्र फ्रेज़रकी हत्या हुई थी और नवाब शम्सुद्दीन उस सम्बन्धमें पकड़े गये थे और बादमें उन्हें फाँसी हुई थी (इसका वर्णन हम आगे करेंगे)। चूँकि इनकी शम्सुद्दीनसे न बनती थी और फ्रेज़रसे बनती थी इसलिए बहुतसे लोगोंकी यह धारणा हुई कि इन्होंने जासूसी करके नवाबको पकड़वाया है। दिल्लीवाले नवाब शम्सुद्दीनको बहुत मानते थे इसलिए लोग इनकी जानके ग्राहक हो गये। एक ओर कर्ज़दार, दूसरी ओर भय—यह समय इनके लिए बड़ा बुरा था।

इसलिए व्यावहारिक दृष्टिसे तो कलकत्ता-यात्रा निराशाजनक एवं निरर्थक रही पर इनकी बौद्धिक सम्पदा और अनुभव-ज्ञानमें उससे खूब वृद्धि हुई। नये अनुभव हुए, पूर्वतमें नये-नये आदमियोंसे परिचय हुआ।

फिर उस ज़मानेमें कलकत्ता भारतके क्षितिजपर नया-नया ही उग रहा था। वहाँ एक नई सभ्यता उठ रही थी औद्योगिक सभ्यताकी भूमिका लिखी जा रही थी उससे इनका साक्षात् हुआ। इन्हें वैज्ञानिक आविष्कारोंके करिश्मे देखनेको मिले। जगमगाती बत्तियाँ सेवाके लिये (नलोंमें) दौड़ता जल पंखे सबसे बासुदेवतासे इनका परिचय हुआ। इससे इनके मानसिक निर्माणपर काफ़ी असर पड़ा। फिर लखनऊमें ग़ाज़ीके नेतृत्वमें ज़बानकी तराश-ख़राश और सफ़ाईकी जो कोशिशें हो रही थीं उन्हें देखने तथा मार्गमें अनेक विद्वानोंसे मिलनेके बाद इनका दृष्टिकोण स्पष्ट और विशद होता गया। यात्राके पहिले और बादकी रचनामें स्पष्ट अन्तर दिखाई पड़ता है। बादका काव्य अधिक पुष्ट है।

ग़ालिबने जो मुक़दमा दायर किया था उसमें पाँच प्रार्थनाएँ थीं—

ग़ालिबका दावा

१ ४ मई १८ ६ के आदेशानुसार मुझे और मेरे ख़ान्दानके दूसरे व्यक्तियोंको दस हज़ार रुपये सालाना मिलना चाहिए था। नवाब लोहारु पाँच हज़ार देते हैं और इसमेंसे भी दो हज़ार एक पराये व्यक्ति ख़्वाजा हाजी या उसके वारिसोंको दे दिया जाता है जिसका हमारे ख़ान्दानसे कोई सम्बन्ध नहीं। भविष्यमें दस हज़ार मिलनेकी आज्ञा दी जाय।

२ मई १८ ६ से लेकर अब तक हमें दस हज़ार सालानासे जितना कम मिला है वह सारा बक़ाया दिलाया जाय। (ग़ालिबके हिसाबसे यह रक़म उस समय तक डेढ़ लाखके लगभग होती थी।)

३ हमारी पेंशनमें किसी पराये व्यक्तिका हिस्सा नहीं होना चाहिए। (मतलब ख़्वाजा हाजीके बेटोंको जो पेंशन मिल रही है वह बन्द कर दी जाय)।

४ आगेसे मेरी पेंशन नवाब शम्सुद्दीन ख़ाँकी जगह अंग्रेज़ी ख़ज़ानेसे सीधी दी जाया करे।

५ सम्मान-स्वरूप मुझे ख़िताब ख़िलअत और दरबारमें मसनद दिया जाय।

फ़ैसला हो जानेपर भी इन माँगोंपर वह डटे रहे और उनके लिए कोशिशें करते रहे। इधर इनकी ये माँगें थीं उधर लोहारूकी जागीरके बारेमें खुद भाइयोंमें झगड़ा था। पहिले लिखा जा चुका है कि नवाब अहमदबख़्शख़ाँकी वसीयतके अनुसार फ़ीरोज़पुर-झिरकाका इलाक़ा शम्सुद्दीन अहमद ख़ाँ एवं पर्गना लोहारू उनके दोनों छोटे भाइयों—अमीनुद्दीन अहमदख़ाँ एवं ज़ियाउद्दीन अहमदख़ाँ के हिस्सेमें आया था। पिताकी मृत्यु होते ही शम्सुद्दीनख़ाँने इस बँटवारेके विरुद्ध आवाज़ उठाई और कहा कि ज्येष्ठ पुत्र होनेके नाते सारी जायदाद का अधिकार मुझे मिलना चाहिए, दूसरी सन्ततिको दयावश ज्यादा वृत्ति दिलाई जा सकती है। उन्हें एक और बहाना भी मिल गया। बात यह थी कि बड़े होनेके कारण लोहारूका इन्तज़ाम नवाब अमीनुद्दीनख़ाँ के हाथ था। प्रबन्ध उन्हें सौंपते समय एक शर्त यह रखी गयी थी कि जायदादकी आमदनीमेंसे ५२१ रुपये माहवार सरकारी ख़ज़ानेमें छोटे भाई नवाब ज़ियाउद्दीनके व्ययके लिए जमा कर दिया जाया करे। इसकी ओर ध्यान न दिया गया इसलिए शम्सुद्दीनख़ाँका पक्ष प्रबल हो गया। दिल्लीके रेज़ीडेण्ट मि० मार्टिनने शम्सुद्दीनख़ाँका समर्थन किया और अन्तमें सितम्बर १८३३ में लोहारूका प्रबन्ध भी शम्सुद्दीनख़ाँको इस शर्तपर दे दिया गया कि वह अपने दोनों भाइयोंको गुज़ारेके लिए २६ हज़ार रुपये सालाना देते रहेंगे।

लोहारूका झगड़ा

मार्टिनके बाद विलियम फ़्रेज़र नये रेज़ीडेण्ट होकर आये। आरम्भमें तो इनकी भी नवाब शम्सुद्दीनख़ाँसे अच्छी मित्रता थी पर बादमें किसी बात से दोनोंमें विरोध हो गया। फ़्रेज़र लोहारू पर्गना शम्सुद्दीनख़ाँको दिये जानेके पक्षमें न थे। उन्हें यह माँग अन्यायपूर्ण लगी इसलिए उन्होंने पूरी चेष्टा की कि अंग्रेज़ सरकार इस प्रार्थनाको ठुकरा दे किन्तु फ़ैसला शम्सुद्दीनख़ाँके पक्षमें हुआ। इससे दोनोंके बीच गाँठ पड़ गयी। फ़ैसलेके बाद भी

फ्रेज़रने उसके विरुद्ध सरकारको लिखा और नवाब अमीनुद्दीनखाँको सलाह दी कि वह कलकत्ता जाकर प्रयत्न करें। उसकी सलाह मानकर अमीनुद्दीन खाँ सितम्बर १८३४ में कलकत्ता गये। ग़ालिबने भी उन्हें अपने कलकत्ताके मित्रोंके नाम परिचय-पत्र दिये। इन प्रयत्नोंके फलस्वरूप पहिला हुक्म मंसूख हो गया और लोहारू दोनों भाइयोंको पुनः मिल गया। इससे शम्सुद्दीनखाँ और फ्रेज़रकी अनबन शत्रुतामें परिणत हो गयी। इस फ़ैसलेसे ग़ालिबको भी खुशी हुई। वह इस मामलेमें बराबर दोनों भाइयोंके साथ रहे।

फ्रेज़रका क़त्ल और शम्सुद्दीनखाँको फाँसी

२२ मार्च १८३ को फ्रेज़रने शामका खाना राजा किशनगढ़के यहाँ दरियागंजमें खाया। वहाँसे वापिस होनेमें देर हो गयी। फ्रेज़र बाड़ा हिन्दूरावमें एक कोठीमें रहते थे। जब रात ग्यारहके लगभग वह अपने मकानको लौट रहे थे तो मकानसे थोड़ी दूर पहिले किसीने उन्हें गोली मार दी। उस समय तो हत्यारा बच निकला लेकिन फ़ौरन तमाम नाके बन्द कर दिये गये। जाँच होने लगी। पुलिसने शम्सुद्दीनखाँके दारोग़ा शिकार करीमख़ाँको गिरफ़्तार किया। बादमें नवाबका एक और नौकर वसायफ़र्खां भी पकड़ा गया। करीमख़ाँके बयानपर मेवाती अनिया सिकन्दराबादमें पकड़ा गया और सरकारी गवाह बन गया। उसके बयानपर नवाब देहली बुलाये गये और पुलिसके पहरेमें रखे गये। बादमें मुक़दमा चला और १८ अक्तूबर १८३५को बुधवारके दिन प्रातःकाल कश्मीरी दरवाज़ेके बाहर उन्हें २५ सालकी आयुमें फाँसी दी गयी।*

---

*इस ज़मानेमें जान लारेंस दिल्लीमें मजिस्ट्रेट थे और उन्होंने पता लगाकर वसायफ़्ख़ाँको नवाबकी कोठीमें गिरफ़्तार किया था। यह लारेंस ही बादमें लार्ड लारेंस हो गये जिनकी जीवनी बासवर्थ स्मिथने लिखी है। इस जीवनीमें क़त्लकी घटनापर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। इसके आधारपर एक मौलाना अब्दुलकलाम आज़ादने लिखा है—'स्मिथके

नवाब शम्सुद्दीनख़ाँकी फाँसी होने पर ग़ालिबको आन्तरिक सन्तोष

बयानसे मालूम होता है कि फ़्रेज़रको कोठीके भीतरी भागमें एक ग़ोल मिला था जिससे क़ातिलके पुर्ज़े निकले थे। उन्हें जब जोड़कर पढ़ा गया तो यह इबारत निकली—'तुम जानते हो कि मैंने तुम्हें देहली क्यों भेजा है? बार-बार लिख चुका हूँ अब ताख़ीर न करना।' करीमख़ाँपर फ़्रेज़रको शुब्हा इसलिए हुआ था कि उसने एक सुरंग घोड़ेकी जो फ़्रेज़रने बेचा था ख़रीदार ज़ाहिर किया था मगर जब फ़्रेज़रने घोड़ा उठाकर मुँहसे लगा दिया तो वह फ़ौरन काटने लगा। और उसके सुमों पर भी ग़ैरमामूली निशानात मिले थे। नवाब अमीर मिर्ज़ा कहते थे कि ख़तके पुर्ज़े तहख़ानेसे मिले थे।

'नन्दकुमारके बाद यह दूसरी फाँसी थी जो एक हिन्दुस्तानी रईसके लिए अंग्रेज़ी क़ानूनको तजवीज़ करनी पड़ी। चूँकि शुमाली हिन्दमें इस वक़्त तक कोई वाक़या ऐसा नहीं हुआ था इसलिए हुकूमतको ग़ैरमामूली एहतियातोंसे काम लेना पड़ा। कलकत्तासे रेज़ीडेण्ट देहलीको लिखा गया था कि इस बारेमें शाहे देहलीसे एक फ़तवा हासिल करना चाहिए। और उलमाए शहरका भी एक महज़र तैयार कराना चाहिए। ख़ुसूसियतके साथ यह बात अवामको जतानी चाहिए कि अहलकारे सरकारी उसे भी जेवरका क़स्साब बख़्शी है और इस मामलेमें अंग्रेज़ी फ़ैसला फ़िक़हे-हनफ़ियाके ख़िलाफ़ नहीं है। बादशाहने बड़ी कोशिश करके बाज़ उलमाको जो क़िलेसे वाबस्ता थे इसपर आमादा किया कि तहरीर पर दस्तख़त करें और महज़रकी बिना पर ख़ुद भी एक फ़तवा लिखकर रेज़ीडेण्टके हवाले कर दिया। यह फ़तवा और महज़र तमाम मुल्कमें छापा किया गया था और रेज़ीडेण्टों और पोलीटिकल एजेण्टोंके ज़रिये तमाम रियासतोंके दरबारोंमें पहुँचाया गया था।

'नवाब अमीर मिर्ज़ा कहते थे कि जब शम्सुद्दीनको फाँसीके लिए ले

हुआ क्योंकि उनका एक प्रधान शत्रु सदाके लिए समाप्त हो गया। 'नाज़िम' को जो पत्र उन्होंने लिखे उनमें यह सन्तोष स्पष्ट व्यक्त हुआ है।

जा रहे थे तो उन्होंने रास्तेमें कुँजड़ेकी दुकानपर अमरूद देखे। जो अफ़सर पालकीके साथ था उससे कहा—'मेरा जी चाहता है अमरूद खाऊँ।' उसने पालकी रुकवाई और अमरूद ख़रीदकर सामने रख दिये। फिर जब पालकी चली तो यह खाते जाते थे और छिलके बाहर फेंकते जाते थे।

'नवाब अमीरुद्दीन मरहूम कहते थे कि जब देहलीसे तलबी हुई और मालूम हुआ कि उन पर पूरी तरह शुबहा हो चुका है तो उनके ख़ानदान के तमाम आदमी देहली जानेके मुख़ालिफ़ थे। वह कहते थे कि रातोंरात निकलकर सिखोंके इलाक़ेमें पहुँच जायें। एक पुराना फ़ौजी सवार यह नवाबख़ानेका बड़ा वफ़ादार आदमी था। वह पिछले पहर आया और कहने लगा—तुम्हारे वालिद कहते थे कि तुम्हारे बुज़ुर्ग ख़ुरासानके मुल्कसे आये थे। मेरी फ़ौजी सी कोमसे इधर हम लेनवाली नहीं। मेरे कपड़े पहिन लो और हमयानी कमरसे बाँधकर निकल चलो। फ़िरंगियों पर भरोसा न रक्खो। वह तुम्हें कभी नहीं छोड़ेंगे।

'मगर शम्सुद्दीनको अपने ख़ानदान और अपने अमीराना असायशका ग़र्रा था। वह समझते थे कि मेरे ख़िलाफ़ कुछ होनेवाला नहीं। बस सवार साथ लेकर पालकीमें रवाना हो गये। जब शहरके क़रीब पहुँचे तो एक सवारको आगे भेजना दिया। रेज़ीडेण्ट और हुक्काम मौक़े पर मौजूद थे। कर्नल स्किनरने (जिसकी इनसे अच्छी दोस्ती थी) आगे बढ़कर कहा कि नवाब साहब हथियार हवाले कर दीजिए और साहब कलाँ बहादुर (रेज़ीडेण्ट) पर भरोसा रखिए। वह आपके लिए जो कुछ कर सकेंगे करेंगे। उन्होंने तलवार हवाले कर दी। इस पर मजिस्ट्रेट आगे बढ़ा और कहा—आप सरकारके हुक्मसे गिरफ़्तार किये जाते हैं। इस वक़्तसे अपनेको क़ैदी तसव्वुर कीजिए।

'अब इनकी आँखें खुलीं लेकिन वक़्त निकल चुका था। फिर जब

नवाब शम्सुद्दीनकी फाँसीके बाद फीरोज़पुर-झुर्काकी रियासत ज़ब्त कर ली गयी और मिर्ज़ाकी पेंशन जो वहाँसे मिलती थी अब सीधे दिल्ली कलेक्टरीसे मिलने लगी। मुनासिब अवसर देखकर मिर्ज़ाने फिर एक विस्तृत प्रार्थनापत्र अंग्रेज़ सरकारकी सेवामें नवाबकी ज़ब्त जायदादसे पूरा हक़ पानेके लिए पेश किया। १८ जून १८३६को पश्चिमोत्तर प्रदेशके लेफ्टिनेण्ट गवर्नरने फ़ैसला किया कि जो ६२॥) मासिक मिलते हैं वही ठीक हैं और भविष्यमें भी वह इससे ज़्यादा पानेके अधिकारी नहीं हैं। इसपर उन्होंने गवर्नर-जेनरलके पास अपील की। पर वहाँसे भी यही फ़ैसला क़ायम रहा। सब ओरसे निराश हो मिर्ज़ाने १४ नवम्बर १८३६ को फिर दरख्वास्त दी कि मेरा मुक़दमा सदर दीवानी अदालत कलकत्ताके सामने रखा जाय और यदि यह सम्भव न हो तो निर्णयके लिए डाइरेक्टरोंके पास विलायत भेजा जाय। ५ दिसम्बर १८३६ को उन्हें उत्तर मिला कि मुक़द्दमेके सब काग़ज़ात विलायत भेज दिये जायँगे और वे १ मई १८३७ को 'कावेसी एक्सप्रेस' नामक जहाज़की डाकसे विलायत भेज दिये गये।

सीधी पेन्शन और नया प्रार्थनापत्र

इससे ग़ालिबको बड़ी खुशी हुई और उन्होंने एक फ़ारसी क़ता भी लिखा और आशान्वित होकर पुन दरख्वास्त दी कि मई १८ १ से जायदाद जितना हमें दस हज़ारके हिसाबसे कम मिला है और जो दो लाख तीन हज़ार होता है, वह तथा २ लाख ६ हज़ार की रक़ममेंसे दे दी जाय जो नवाब शम्सुद्दीनने अपनी फाँसीके पूर्व अंग्रेज़ी ख़ज़ानेमें जमा कराई थी। दूसरे हमें ५ हज़ार सालाना पेंशनका एरियर १८३५ तक का बक़ाया उस जायदादसे दिलवाया जाय जो नवाब फ़ीरोज़पुर छोड़कर मरे हैं और तीसरे जब तक डाइरेक्टरोंका फ़ैसला

अन्तिम निर्णय

मौत सामने आ गयी तो सिपाहीज़ादा था जवाँमर्दाना तैयार हो गया।
—'[illegible]' (२६४–२६०)

विलायतसे नहीं आ जाता हमें तीन हज़ार सालाना नियमित रूपसे मिलता रहे। पर ग़ालिबको मानव प्रकृतिका अच्छा ज्ञान नहीं था। वह समझते थे कि अंग्रेज़ ख़ुशामदसे क़ाबूमें किये जा सकते हैं। बहरहाल ये सब आवेदन निवेदन निरर्थक हुए और १८४२ के आरम्भमें विलायतसे अन्तिम फ़ैसला भी आ गया कि जो निर्णय हिन्दुस्तानमें हो चुका है वही ठीक है। पर वाह री मिर्ज़ाकी आशावादिता—इतने पर भी उन्होंने हिम्मत न हारी और २९ जुलाई १८४२ को इस फ़ैसलेके विरुद्ध एक अपील मेमोरियलके रूपमें महारानी विक्टोरियाके पास गवर्नर-जेनरलके ज़रिये भेजी। पर इसका भी कोई परिणाम नहीं निकला और १८४४में वह बिल्कुल निराश और पस्त हो गये।

यहाँ यह ख़याल रखना चाहिए कि मुक़दमा उन्होंने १८२८ में दायर किया था और यह अन्तिम फ़ैसला १८४४में १६ साल बाद हुआ। उस ज़मानेमें जब यातायातके साधन दुर्लभ थे उनका कितना व्यय इसपर पड़ा होगा। जो कुछ उनके पास था वह भी इस मुक़दमेमें समाप्त हो गया। महाजनोंके हज़ारों रुपये क़र्ज़ हो गये जो उन्होंने इसी विश्वासपर लिये थे कि मुक़दमेके फ़ैसलेसे हमें एक बड़ी रक़म मिल जायगी। १८३५ में ही इनपर ४०—५० हज़ारका क़र्ज़ हो गया था। निर्णय विरुद्ध होनेसे क़र्ज़के बोझसे ऐसे दबे कि ज़िन्दगी भर उभर एवं उबर नहीं सके। ज़िन्दगी क़र्ज़ घुलते-घुलते बीती फिर भी न चुक सका। परिस्थितियोंके कारण गृहस्थ जीवन पहलेसे ही दूभर था अब तो उसमें बड़ी वेदना और निराशा आ गयी और उन्होंने भाग्यके आगे बस्ता डाल दिया।

आवेदनपत्रमें जिन पाँच बातोंके लिए प्रार्थना की गयी थी उनमें पहली तीन पूर्णतः अस्वीकृत हो गयीं। चौथी फ़ीरोज़पुर-झुर्काकी क़िस्तोंके रूपमें पूरी हो गयी और इन्हें पेंशन दिल्ली कलेक्टरीसे सीधे मिलने लगा। रही पाँचवीं बात सो उसमें अंग्रेज़ोंको कोई विशेष असुविधा न दीख पड़ी इसलिए इन्हें तमाम सरकारी दरबारोंमें कुर्सी, सम्मानकी ख़िलअत और

अंग्रेज सरकारने सलीमको युवराज बनाना स्वीकार न किया। १८३७में अकबरशाहकी मृत्यु हो गयी। बहादुरशाह 'ज़फ़र' गद्दीपर बिठाये गये। पता नहीं 'ज़फ़र'को ग़ालिबकी इन बातोंका कुछ ख़याल रहा था नहीं पर ग़ालिब ख़ुद अपने कार्यपर लज्जित थे और 'ज़फ़र'की नाराज़ीकी कल्पनासे भीत हो उन्होंने इसके फ़ारसी क़सीदोंमें अपने पक्षको रखनेके लिए बार-बार क्षमा प्रार्थना की है।

लखनऊकी ओर दृष्टि

इधर दिल्लीमें अकबरशाहकी मृत्यु हुई, बहादुरशाह गद्दीपर बैठे उधर लखनऊमें अवध-नरेश नसीरुद्दीन हैदरका देहान्त हो गया और मुहम्मदअली शाहको गद्दी मिली। मिर्ज़ाने मुहम्मदअलीकी तारीफ़में भी क़सीदा लिखकर भेजा पर शायद वह दरबारमें पढ़ा ही नहीं गया। इस क़सीदेमें भी स्तुति एवं प्रशंसाके बाद अपनी क़िस्मतका रोना रोया है—

ता मन कि ताबे नाज़ न का यों नदाश्तम।
सद फ़न्द बस कि औरा अफ़्क़ कर्दे रोज़गार।

और भी—

गुफ़्तम बमअ़्नीए कुछ के नज़्ज़ारम मरा ए सन
हुस्न बसाने हम्स परा कर्दे रोज़गार।
गुफ़्त ए सितार सख़्न आरा क़ाज़ा नये,
ग़ौरा गिरफ़्ता बाज़ रिहा कर्दे रोज़गार।
तू बुलहुक ! हमीं क मक़ाम आमदी तरा,
अन्दर क़फ़स सफ़द मयाकर्दे रोज़गार।

'मयख़ानए आर्ज़ू'

सचमुच ग़ालिबके लिए यह समय बड़ी कठिनाइयों एवं मुसीबतोंका था। पर सब तरफ़से निराश होनेका एक अच्छा परिणाम भी हुआ कि इनका ध्यान काव्य और साहित्यकी ओर अधिकाधिक खिंचता गया। निराशासे भरी ज़िन्दगीके रेगिस्तानमें यही एक पुष्पोद्यान था जहाँ बैठ कभी शान्ति एवं

टप्पकर बीत सकते थे। ज्यों-ज्यों नवाबी एवं जागीरदारीके सपने मिटते गये त्यों-त्यों काव्य जो पहिले मनोरंजन एवं दिलबहलावकी चीज़ था जीवन-निधि-सा होता गया। १८२१में उन्होंने फ़ारसी पद्य-गद्यका संकलन 'मयख़ानए आर्ज़ू' के नामसे तैयार किया। १८३७में इसका अन्तिम अंश लिखा गया। राय छज्जूमलके हाथकी लिखी इसकी एक प्रतिलिपि खुदाबख्श लाइब्रेरी पटनामें मौजूद है। जैसे भूपालकी प्रतिसे उनकी उर्दू शायरीके बाल्यपनपर प्रकाश पड़ता है वैसे ही इस पुस्तकमें उनकी प्रथम पच्चीस सालकी फ़ारसी शायरीकी झलक दिखाई देती है। इसमें पद्य और गद्य दोनों हैं। बादमें इसके नस्र (गद्य) को अलग करके और दूसरे कुछ पत्र जोड़कर मिर्ज़ा अलीबख्शने 'पंज आहंग' बनाया।

इन निराशाकी घड़ियोंमें इनका सम्बन्ध सरसय्यद अहमद खाँ और उनके भाई सय्यद मुहम्मदखाँसे बढ़ता गया। इन दोनों भाइयोंके छापेखाने 'सय्यदुल अख़बार' में ही इनका उर्दू (रेख़्ता) दीवान अक्तूबर १८४१में निकला। फ़ारसी दीवान ४ साल बाद प्रकाशित हुआ। इससे इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी।

पर अभी तक जागीरदारीके सपने पूरे तौरपर न टूटे थे। रस्सी जल गयी थी पर ऐंठन बाकी थी। १८४२ ई० में सरकारने दिल्ली कालेजका नूतन संघठन और प्रबन्ध किया। उस समय मि० टामसन भारत-सरकारके सेक्रेटरी थे।

प्रोफ़ेसरीसे इन्कार

यही बादमें पश्चिमोत्तर प्रदेशके लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर हो गये थे और मिर्ज़ा ग़ालिबके हितैषियोंमें थे। वह कालेजके प्रोफ़ेसरोंके चुनावके लिए दिल्ली आये। उस समय तक वहाँ अरबीकी शिक्षाका तो अच्छा प्रबन्ध था और मौ० ममलूकअली अरबीके प्रधान शिक्षक थे जो अपने विषयके अद्वितीय विद्वान् माने जाते थे पर फ़ारसीकी शिक्षाका कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध न था। टामसनने इच्छा प्रकट की कि जैसे अरबीकी शिक्षाके लिए योग्य अध्यापक हैं वैसे ही फ़ारसीकी शिक्षा देनेके लिए भी एक विद्वान् अध्यापक

रखा जाय। इस मुलाक़ातके समय सदरस्सदूर मुफ्ती सदरुद्दीनखाँ 'आजुर्दा' भी मौजूद थे। उन्होंने कहा—दिल्लीमें तीन साहब फ़ारसीके उस्ताद माने जाते हैं। १ मिर्ज़ा असदउल्लाखाँ 'ग़ालिब' २ हकीम मोमिनखाँ 'मोमिन' और ३ शेख़ इमामबख्श 'सहबाई'। टामस साहबने प्रोफ़ेसरीके लिए सबसे पहिले मिर्ज़ा ग़ालिबको बुलवाया। अगले दिन मिर्ज़ा पालकीपर सवार होकर उनके डेरेपर पहुँचे और पालकीसे उतरकर दरवाज़ेके पास इस प्रतीक्षामें रुक गये कि अभी कोई साहब स्वागत एवं अभ्यर्थनाके लिए आते हैं। जब देर हो गयी साहबने जमादारसे देरका कारण पूछा। जमादारने आकर मिर्ज़ासे दरियाफ़्त किया। मिर्ज़ाने कहला दिया कि चूँकि साहब परम्परानुसार मेरा स्वागत करने बाहर नहीं आये इसलिए मैं अन्दर नहीं आया। इसपर टामसन साहब स्वयं बाहर निकल आये और बोले—'जब आप दरबारमें बहैसियत एक रईस या अमीरके तशरीफ़ लायेंगे तब आपका स्वागत-सत्कार किया जायगा लेकिन इस समय आप नौकरीके लिए आये हैं इसलिए आपका स्वागत करने कोई नहीं आया। मिर्ज़ाने कहा— 'मैं तो सरकारी नौकरी इसलिए करना चाहता हूँ कि ख़ानदानी प्रतिष्ठामें वृद्धि हो न कि जो पहिलेसे है उसमें भी कमी आ जाय और बुज़ुर्गोंकी प्रतिष्ठा भी खो बैठूँ। टामसन साहबने नियमोंके कारण विवशता प्रकट की तब ग़ालिबने कहा—ऐसी मुलाज़िमतको मेरा दूरसे ही सलाम है और कहारोंसे कहा—वापिस चलो।* बादमें टामसन साहबने दूसरा प्रबन्ध किया।†

---

* 'यादगारे ग़ालिब' (हाली) पृ० ५७–५८।

† इसके बाद टामसनने हकीम मोमिनको बुलवाया। उन्होंने कहा कि जो वेतन (१०० रु० मासिक) ममलूकअलीको मिलता है उससे कम न लूँगा। साहब ४०) मासिकसे ज़्यादा देनेको तैयार नहीं थे। इसलिए उन्होंने भी इन्कार कर दिया। इमामबख्शकी जीविकाका कोई साधन

मिज़ाकि इस रवैयेसे उनके स्वभावके एक पहलूपर प्रकाश पड़ता है। इस समय वह बड़े अभावमें थे फिर भी उन्होंने निरर्थक बातपर नौकरी छोड़ दी। आश्चर्य तो यह है कि जन्मभर सरकारी ओहदेदारों एवं अंग्रेज अफसरोंकी चापलूसी एवं मसुक्तिभरी स्तुतिमें ही बीता (जैसा कि उनके लिखे क़सीदोंसे प्रकट है) पर ज़रा-सी और सारहीन बातपर वह अड़ गये। इससे यह भी ज्ञात होता है कि इस समय उनमें हीनताका भाव (इन्फ़ीरियारिटी काम्प्लेक्स) बहुत बढ़ा हुआ था और वह तुनकमिज़ाज और क्षणिक भावनाओंकी आँधीमें उड़ जानेवाले हो गये थे।

इधर चिन्ताएँ बढ़ती गयीं जीवनकी दुश्वारियाँ बढ़ती गयीं उधर बेकारी घोरोशगुलके सिवा कोई दूसरा काम नहीं। स्वभावतः मिर्ज़ाकी ज़िन्दगी की घड़ियाँ दूभर होने लगीं। चिन्ताओंसे ध्यान

जुएकी लत

हटानेमें इनकी सहायक एक तो थी शराब अब जुएकी आदत भी लग गयी। उन्हें शुरूसे शतरंज और चौसर खेलने की आदत थी। अक्सर मित्र-मण्डली जमा होती और खेल-तमाशेमें वक़्त कटता। कभी-कभी बाज़ी बदकर खेलते थे। ग़दरके पहिले उन्हें बड़ा अर्थ कष्ट था। सिर्फ़ सरकारी वृत्ति और क़िलेके पचास रुपये थे। पर आप रईसोंकी भी इसलिए सदा अभावमें दबे रहते थे। इस ज़मानेकी दिल्ली के रईसज़ादों और चाँदनी चौकके जौहरियोंके मकानोंमें मनोरंजनके साधन ग्रहण कर रखे थे उनमें एक जुआ भी था। गंजीफ़ा आम तौर खेला जाता था। इनके साथ उठते-बैठते मिर्ज़ाको भी यह लत लग गयी धीरे-धीरे नियमित जुएबाज़ी शुरू हो गयी। जुएके अड्डेवालेको सदा न कुछ मिलता है फिर चाहे कोई जीते या हारे। इससे दिल बहलता

न होनेके कारण उन्होंने यह कार्य स्वीकार कर लिया। बादमें उन्हें पन मिलने लगे।—मरहूमे देहली कालेज (मौ॰ अब्दुलहक़) पृ॰ १९ १५१।

वक्त कटता था और कुछ न कुछ आमदनी भी हो जाती थी। आज़ाद लिखते हैं—'यह चूर भी खेलते थे और चूँकि अच्छे खिलाड़ी थे इसलिए इसमें भी कुछ न कुछ मार ही बैठते थे।

अंग्रेज़ी क़ानूनके अनुसार जुआ जुर्म था पर रईसोंके दीवानख़ानोंपर पुलिस उतना ध्यान न देती थी जैसे अड्डोंमें होनेवाले खेलपर आज भी ध्यान नहीं दिया जाता। कोतवाल एवं बड़े अफ़सर रईसोंसे मिलते-जुलते रहते और परिचयके कारण भी ज़्यादा सख़्ती न करते थे। ग़ालिबकी जान पहिचान भी कोतवाल तथा दूसरे अधिकारियोंसे थी इसलिए इनके ख़िलाफ़ न तो किसी तरहका शुबहा किया जाता था न क़ानूनी कार्रवाइयोंका अन्देशा था।

पर सन् १८४५ के लगभग आगरासे बदलकर एक नया कोतवाल फ़ैज़ुलहसन आया। इसको काव्यसे कोई अनुराग न था इसलिए ग़ालिबपर मेहरबानी करनेकी कोई बात उसके लिए न हो सकती थी। फिर वह सख़्त आदमी था। आते ही इसने सख़्तीसे जाँच शुरू की और जासूस लगा दिये। कई दोस्तोंने मिर्ज़ाको चेतावनी दी कि जुआ बन्द करो पर वह लोभ एवं अहंकारसे अन्धे हो रहे थे उन्होंने पर्वा न की। वह समझते थे कि मेरे विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं हो सकती। एक दिन कोतवालने छापा मारा। और लोग तो पिछवाड़ेसे निकल भागे मिर्ज़ा घर छिपे गये। मिर्ज़ाकी

गिरफ़्तारी

गिरफ़्तारीसे पूर्व चन्द जौहरी पकड़े गये थे पर रुपया ख़र्च करके बच गये थे मुक़दमे तककी नौबत न आई थी। मिर्ज़ाके पास रुपया कहाँ था? हाँ मित्र थे। उन्होंने बादशाह तकसे सिफ़ारिश कराई किन्तु कुछ नतीजा न निकला। तब घरमें बैठ रहे। अब लोगोंको मिर्ज़ाकी रिहाईकी तरफ़से निराशा हो गयी न केवल दोस्तों और साथ उठने-बैठने वालोंने बल्कि अज़ीज़ोंने भी एक दम आँखें फेर लीं और इस बातमें लज्जाका अनुभव करने लगे कि मिर्ज़ाके मित्र या सम्बन्धी समझे जायें। मौ० अबुलकलाम

कुँवर वजीर अलीकी मजिस्ट्रेटकी अदालतमें पेश हुआ। वहाँ सजा हुई और अपीलमें भी बनी रही। ६ मास कठोर कारावास और दो सौ जुर्मानाका दण्ड मिला। जुर्माना न देनेपर ६ मास और। जुर्मानाके अलावा ५) अधिक देनेपर श्रमसे मुक्ति।†

जेलमें खाना-कपड़ा घरसे जाता था। जो चाहे वह मिल सकता था फिर भी इस सजा और क़ैदसे इनके अहंको गहरी चोट लगी। 'यादगारे ग़ालिब' में मौलाना हालीने इनका एक पत्र उद्धृत किया है जिससे इनकी मनोदशाका पता चलता है। इसमें यह लिखते हैं —

जेलमें

मैं हर एक काम खुदाकी तरफ़से समझता हूँ और खुदासे लड़ा नहीं जा सकता। जो कुछ गुजरा उसके नंग[1] से आज़ाद और जो कुछ गुज़रने वाला है उसपर राज़ी हूँ। मगर आरज़ू करना आईने अबुदियत[2] के खिलाफ़ नहीं है। मेरी यह आरज़ू है कि अब दुनियामें न रहूँ और रहूँ तो हिन्दोस्तानमें न रहूँ। रूम है, मिस्र है, ईरान है, बग़दाद है। यह भी जाने दो खुद काबा आज़ादोंकी जाएपनाह[3] आस्तानए रहमतुल आलमीन[4] दिलदादोंकी तकियागाह[5] है। देखिए वह वक्त कब आयेगा कि दरमांदगी[6] की क़ैदसे जो इस गुज़री हुई क़ैदसे ज़्यादा जानफ़र्सा[7] है नजात[8] पाऊँ और बगैर उसके कोई मंज़िले मक़सूद क़रार दूँ सरब सेहरा निकल जाऊँ। यह है जो मुझपर गुज़रा और यह है जिसका मैं आरज़ूमन्द हूँ।

---

† 'दिल्लीका आखिरी साँस' पृ. १७४ तथा अहमदुल अखबार बम्बई ९ जुलाई १८४७।

१ बदनामी लज्जा २ उपासना-सिद्धान्त ३ आश्रयस्थान ४ संसार पर दया करनेवाले (ईश्वर) का स्थान ५ रसिकोंका आश्रय ६ दीनता बेचारी विवशता ७ प्राणलेवा ८. मुक्ति।

३ मास बाद ही दिल्लीके सिविलसर्जन डा० रासकी सिफ़ारिश पर छोड़ दिये गये। पर इस क़ैदका इनपर गहरा प्रभाव पड़ा। इस सम्बन्धमें जो 'तरकीब बन्द'[1] इन्होंने फ़ारसीमें लिखी है उसमें

गहरा प्रभाव

बड़ी व्यथा पीड़ित हाड़-मांस वाली व्यथा लिए है। इन दिनों इनका जीवन सीमापर पहुँच गया था। सच पूछो तो कलकत्तासे लौटनेके बाद इनकी आर्थिक स्थिति बराबर ख़राब ही होती गयी थी। २०–२५ सालसे बराबर तंगीमें गुज़र कर रहे थे। फ़िक्र था कि किसी राजा रईसकी मुसाहबत कर लें पर स्वयं जाके बाहर हाथ नहीं फैला सकते थे। चाहते थे कि कोई बुलावे तो जाऊँ। सो १८५५ में इनपर पाँच हज़ारकी डिग्री हुई थी तभी इनपर ४०–५ हज़ार कर्ज़ था। नासिरने इन्हें लिखा कि 'आज दकनमें हुन बरस रहा है। हैदराबादमें महाराज चन्दूलाल मद्दे कमाल[2] का क़द्रदाँ मौजूद है। अगर आप वहाँ चले जायें तो आपके सब दलिद्दर दूर हो जायें।' मिर्ज़ाने जवाब दिया—'पहिले तो कुछ ख़र्च किये बग़ैर पहुँचना मुहाल है फिर अगर वहाँ जाऊँ भी तो चन्दूलाल ग़रीब मेरी क्या क़द्र करेगा? उसे मेरे तर्ज़े-सुख़न[3] की हवा तक नहीं लगी और उसके कान इस ढंगसे आशना नहीं। वहाँ फ़ारसीमें क़तील और उर्दूमें शाहनसीर उस्ताद माने जाते हैं वहाँ ग़ालिब और नासिरको कौन पूछता है। मज़ीदबराँ[4] वह अस्सी सालका बुड्ढा पुर इसमें पाँच बरससे बैठा है। अजब नहीं मैं हैदराबाद पहुँचूँ यह आप अदमाबाद पहुँच चुका होगा।

---

१ तरकीबबन्द— नज़मका एक प्रकार जिसमें कई बन्द होते हैं और हर बन्दमें पाँच-सात शेर होते हैं। हर बन्द भिन्न रदीफ़-क़ाफ़ियेमें होता है और हर बन्दके बाद एक नया शेर आता है जिसका रदीफ़-क़ाफ़िया अलग ही होता है। २ गुणियों। ३ काव्य-प्रणाली। ४ इसके अतिरिक्त।

पर स्थिति बहुत बिगड़नेपर किसी रियासतकी मुलाज़मतकी बात बार-बार इनके मनमें आती थी। क़रीब-क़रीब इसके लिए तैयार हो गये थे कि जेलकी इस घटनासे जो बदनामी हुई उसने हिम्मत पस्त कर दी। तुफ़्ता को एक पत्रमें लिखते हैं—

"सरकारे अंग्रेज़ीमें बड़ा पाया रखता था। रईसज़ादोंमें गिना जाता था। पूरा ख़िलअत पाता था अब बदनाम हो गया हूँ और एक बड़ा धब्बा लग गया है। किसी रियासतमें दख़ल कर नहीं सकता। मगर हाँ उस्ताद या पीर या मद्दाह बनकर राहोरस्म पैदा करूँ।

इस फंदेने रईसज़ादा बनने और मोहज़्ज़ब लोगोंके साथ सम्बन्ध रखने तथा ऊपरी ठाट-बाटके सपने समाप्त कर दिये। इससे वह अपनी क़लम निधि पर दिन-दिन अधिकाधिक निर्भर करने लगे जो उनमें भरी पड़ी थी।

संयोगवश और जेलके छूटनेके थोड़े दिनों बाद ही कुछ मित्रोंकी मध्यस्थतासे दिल्ली दरबारसे इनका सम्बन्ध हो गया। इन दिनों मौलाना

क़िलेकी नौकरी

नसीरुद्दीन उर्फ़ मियाँ काले साहब बहादुरशाह 'ज़फ़र' के पीर थे। वह ग़ालिबके मित्रों और शुभैषियोंमें थे। शाही हकीम एहसानउल्लाखाँ भी मिर्ज़ाके प्रशंसकोंमें थे। इन लोगोंकी सिफ़ारिश थी। बादशाहने मंज़ूर कर लिया कि मिर्ज़ा तैमूरी वंशका इतिहास फ़ारसी भाषामें लिखें। ४ जुलाई १८५० को यह बादशाहके सामने पेश किये गये। बादशाहने नज्मुद्दौला दबीरुल्मुल्क निज़ाम जंगकी उपाधि प्रदान की और ६ पारचे तथा तीन रत्नका ख़िलअत दिया। पचास रुपये मासिक वृत्ति नियत हुई और मिर्ज़ा क़िलेके मुलाज़िम हो गये।*

* उस समय ग़ालिबको आशा थी कि सालमें दो बार वेतन मिलता था। एक तो पचास रुपये मासिक फिर ६ ६ महीनेमें मिले तो उनका

राजकीय इतिहासकार होनेके थोड़े साल बाद ही १८५४ ई०में, युवराज फ़ख़रुलमुल्क मिर्ज़ा मुहम्मद सुल्तान गुलाम फ़ख़रुद्दीन 'रम्ज़' उर्फ़ मिर्ज़ा फ़ख़रू इनके शागिर्द हो गये। यहाँ यह

युवराजके गुरु

बात भी याद रखने योग्य है कि युवराजकी ग़ालिबके पुराने दुश्मन स्व० नवाब शम्सुद्दीन खाँकी बिरादरी ब्याही थी।★ इसलिए अन्दाज़ होता है कि उस समय ग़ालिब काफ़ी-ख़ासी प्रतिष्ठाके शिखरपर पहुँचे होंगे। तभी युवराजने शम्सुद्दीनसे मिलकर विरोध भावको भुला दिया होगा। जो हो शिष्य होनेपर युवराजने ४) सालानाकी वृत्ति उन्हें दी।

परिणाम यह होता था कि महाजनके सूदमें ही काफ़ी रक़म कट जाती थी। ग़ालिबने पहली छमाही किसी तरह काटी पर जनवरी १८५१ में दरख़्वास्त पेश की कि रोज़ानाकी ज़रूरतोंका क्या करें उन्हें इतने दिनोंके लिए स्थगित तो कर नहीं सकता फ़लतः महाजनोंसे कर्ज़ लेता हूँ और सूदमें तनख़्वाहका काफ़ी हिस्सा निकल जाता है। पहली छमाहीके वेतनका एक तिहाई इसीमें चला गया—

> आपका बंदा और फिरूँ नंगा।
> आपका नौकर और खाऊँ उधार।
> मेरी तनख़्वाह कीजिए माह बमाह।
> ता न हो मुझको ज़िन्दगी दुश्वार।
> तुम सलामत रहो हज़ार बरस।
> हर बरसके हों दिन पचास हज़ार।

इस प्रार्थना पत्रके बाद इन्हें वेतन हर मासमें मिलने लगा।

★ ग़ालिबके ख़त पृ० ४९ तथा आसारे ग़ालिब (शेख मु० इकराम आई० सी० एस०) पृष्ठ १११।

ख़ुदी इतिहासकार होनेसे इन्हें कुछ तसल्ली हुई थी कि १८५२ ई० में जब इस इतिहासका पहिला भाग (मेहरनीमरोज़) पूरा हुआ मोमिनकी मृत्यु हो गयी जिससे इन्हें बड़ी चोट लगी। किन्तु सबसे ज्यादा तकलीफ़ इन्हें इसी साल १८ एप्रिल १८५२को नवाब मिर्ज़ा ज़ैनुल-आब्दीन 'आरिफ़' की मृत्युसे हुई। 'आरिफ़ ग़ालिबकी बीवीके भांजे थे। ग़ालिब उन्हें बेटे-सा मानते थे। उनकी प्रतिभाके क़ायल थे। उन्हें उनसे बड़ी उम्मीदें थीं। वह छोटी उमरसे ही शेर कहने लगे थे। उनके देहावसानसे मिर्ज़ाको बुढ़ापेमें गहरी चोट लगी। उनकी व्यथापूर्ण वाणी फूटी—

मोमिन एवं आरिफ़की मृत्यु

हाँ, ऐ फ़लक पीरेजवाँ था अभी आरिफ़,
क्या तेरा बिगड़ता जो न मरता कोई दिन और।

बादमें आरिफ़के दोनों बेटों (बाकर अलीख़ाँ और हुसेन अलीख़ाँ) को लाकर अपने पास रखा और उन्हें अपने बच्चोंसे ज्यादा मानकर बड़े लाड़-प्यारसे पाला।

'ग़ालिब दरबारमें कभी-कभी जाया करते थे और उनकी आव-भगत भी होती थी पर उन्हें वह दर्जा प्राप्त नहीं था जो 'ज़ौक़' को था। 'ज़ौक़' ज़फ़रके उस्ताद थे। स्वभावतः उनकी इज्ज़त ज्यादा थी। उनके साथ ग़ालिबकी नोंक-झोंक चलती ही रहती थी। दिसम्बर १८५१में ज़फ़रके पुत्र जवाँबख़्तकी शादी धूमधामसे हुई। इस अवसरपर मिर्ज़ा ग़ालिबने निम्नलिखित सेहरा लिख कर बादशाहकी ख़िदमतमें पेश किया—

ज़ौक़से छेड़छाड़

ख़ुश हो ऐ बख़्त ! कि है आज तेरे सर सेहरा
बाँध शहज़ादे जवाँबख़्तके सर पर सेहरा।

---

१ भाग्य।

क्या ही इस चाँदसे मुखड़ेपे भला लगता है,
है तेरे हुस्ने दिल अफ़रोज़[1] का ज़ेवर सेहरा।
नाव भर कर ही पिरोये गये होंगे मोती,
वर्ना क्यों लाये हैं कश्तीमें लगाकर सेहरा।
सात दरियाके फ़राहम[2] किये होंगे मोती,
तब बना होगा इस अन्दाज़का गज़ भर सेहरा।
जीमें इतरायें न मोती कि हमीं हैं एक चीज़,
चाहिए फूलोंका भी एक मुकर्रर[3] सेहरा।
हम सुख़नफ़हम हैं ग़ालिबके तरफ़दार नहीं,
देखें इस सेहरेसे कह दे कोई बढ़कर सेहरा।

जब शेख इब्राहीम 'जौक़' बादशाहके पास पहुँचे तो बादशाहने 'ग़ालिब' का लिखा हुआ सेहरा उनको दिया और कहा कि उस्ताद, इसे देखिए। उन्होंने पढ़ा और स्वभावके अनुसार कहा— 'पीर मुर्शिद दुरुस्त है।' बादशाहने कहा उस्ताद तुम भी एक सेहरा अभी लिख दो और ज़रा मक़्तेका भी ख़्याल रखना। (यानी उस सेहरेसे बढ़कर हो)। जौक़ वहीं बैठ गये और यह सेहरा लिखा:—

ऐ जवाँबख़्त! मुबारक तुझे सर पर सेहरा।
आज है यम्नो[4] सआदत[5] का तेरे सर सेहरा।
ता बने[6] और बनी[7] में रहे इख़लास[8] बहम[9],
गूँथिए सूरये इख़लास[10] को पढ़कर सेहरा।

---

१ हृदयको प्रकाशित करनेवाला सौन्दर्य २ एकत्र ३ मुकर्रर। ४ बरकत ५ प्रकार ६ दूल्हा ७ दुल्हन ८ प्रेम ९ परस्पर १० प्रेम एवं सौन्दर्य सम्बन्धी कुरान-शरीफका एक अंश।

धूम है गुलशने आफ़ाक़[1] में इस सेहरेकी,
गाये मुर्ग़ाने नवासंज[2] न क्योंकर सेहरा।
फिरती ख़ुशबूसे है इतराई हुई बादे बहार[3]
अल्ला अल्लाह रे फूलोंका मुअत्तर[4] सेहरा।
रूनुमाई[5] में तुझे दे महो-ख़ुरशीद[6] फ़लक[7],
ख़ाक दे मुँहको जो तू मुँहसे उठाकर सेहरा।
दुर्रे ख़ुशआब[8] मज़ामींसे बनाकर लाया,
वास्ते तेरे तेरा 'ज़ौक़' सनागर[9] सेहरा।
जिसको दावा है सख़ुनका यह सुनादे उसको,
देख इस तरहसे कहते हैं सख़ुनवर[10] सेहरा।

इस सेहरेकी बड़ी धूम मची। मिर्ज़ा ग़ालिब इस घटनासे बड़े परेशान हुए। कहाँ उन्होंने बादशाहको ख़ुश करनेके लिए सेहरा लिखा था कहाँ परिणाम उल्टा हुआ। तब उन्होंने क्षमा-प्रार्थनाके रूपमें यह क़िता लिखा—

मंज़ूर है गुज़ारिशे अहवाले वाक़ई[11],
अपना बयान हुस्ने तबीयत नहीं मुझे[12]।
सौ पुश्तसे है पेशए आबा[13] सिपहगिरी,
कुछ शायरी ज़रीय-ए इज़्ज़त नहीं मुझे।

---

१ संसारके प्रधान २ संगीत-निपुण पक्षी ३ वासन्ती वायु ४ सुगन्धित ५ मुँह दिखाई, ६ चाँद-सूरज ७ आकाश ८ अच्छे पानीदार मोती ९ प्रशंसक १० श्रेष्ठ कवि ११ सच्ची बातको निवेदन कर देना आवश्यक है, १२ अपनी कथा कहूँगा वैसे मेरे स्वभावमें नहीं १३ पूर्वजोंका पेशा।

जब ग़ालिब किसी बातको सीधे ढंगसे कहना बहुत कम जानते हैं। ज़ौक़की ज़बान इस देशकी ज़बान है, उनकी उर्दू सचमुच उर्दू है जब मिर्ज़ा ग़ालिब की ज़बान और विचारपर फ़ारसीयतकी ऐसी छाप है कि उर्दू उभर नहीं पाती बल्कि यह कहिए कि यह उर्दू भी एक प्रकारकी फ़ारसी है। मिर्ज़ा अपनी फ़ारसीदानीके लिए प्रसिद्ध थे और फ़ारसीके सर्वोत्तम शाइर-कारोंमें माने जाते थे। १८५३–५४ में जब बहादुरशाहके बिमार होनेसे घोड़ेरस हुई तो बादशाहने ग़ालिबसे ही चमन चरचारिख़ नामक एक फ़ारसी मसनवी लिखवाकर छपवाई।

यहाँ बहादुरशाहने ग़ालिबके विस्तृत भाषा-ज्ञानसे कुछ-न-कुछ लाभ उठाया वहाँ बहादुरशाहकी जीवन-शैली एवं रहस्यमय दार्शनिक विचारों से ग़ालिब भी कुछ-न-कुछ प्रभावित हुए। फ़ारसी परम्पराके कारण मिर्ज़ाको तसव्वुफ़से थोड़ी-बहुत दिलचस्पी तो थी ही बहादुरशाहकी सङ्गतिसे उसमें वृद्धि ही हुई और उनके काव्यमें सूफ़ियाना रंगत आने लगी।

यह ठीक है कि दरबारमें ग़ालिबको मलिकुश्शुअरा दर्जा कभी न मिला पर यह भी ठीक है कि दरबार ज़ौक़में अपनी तबीयतदारी एवं बहुतके कारण मिर्ज़ाकी तरफ़से बड़ी बेतकल्लुफ़ी थी। अपनी हाज़िर जवाबी और हास्यप्रियताके कारण भी वह इस स्थितिको पानेमें सफल हुए थे।

ग़ालिब एवं बहादुरशाहके वर्णनमें हालीने कई लतीफ़े लिखे हैं। उनमें तथा उस कालमें लिखे कई ग्रंथोंसे मिर्ज़ाकी हास्यप्रियताकी कल्पना होती है। एक बार जब रमज़ान गुज़र गया और मिर्ज़ा क़िलेमें गये तो बादशाहने पूछा—

एक रोज़ा नहीं

'मिर्ज़ा! तुमने कितने रोज़े रखे?' मिर्ज़ाने अर्ज़ किया—'पीरो मुर्शिद! एक नहीं रखा।' और निम्नलिखित क़िता पढ़ा—

इफ़्तारे सूमकी कुछ अगर दस्तगाह हो।
उस शख़्सको ज़रूर है रोज़ा रखा करे।
जिस पास रोज़ा खोलके खानेको कुछ न हो,
रोज़ा अगर न खाये तो नाचार क्या करे।

फिर एक रुबाई भी पेश की—

सामाने ख़ुरो ख़्वाब कहाँसे लाऊँ ?
आरामके असबाब कहाँसे लाऊँ ?
रोज़ा मेरा ईमान है 'ग़ालिब' लेकिन,
ख़सख़ाना व बर्फ़ाब कहाँसे लाऊँ ?

दुनियादारी एवं व्यावहारिकता

मान ज़िक्र एवं बहादुरशाहके साथ ग़ालिबका सम्पर्क तो हुआ पर मिर्ज़ाकी पैनी निगाहने भाँप लिया कि यह सल्तनत ज़्यादा दिन चलनेवाली नहीं है। मिर्ज़ाकी अधिकारियों एवं अंग्रेज़ोंमें पैठ थी। वह देख रहे थे कि अंग्रेज़ोंकी ताक़त बढ़ रही है। वे बादशाहत ख़त्म करनेपर तुले हुए थे पर एकाएक इस भयसे परिवर्तन नहीं करते थे कि कहीं भारत की जनता बिगड़ न जाय। १८३७ में जब बहादुरशाह गद्दीपर बैठे तभी उनसे कहा गया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनीपर बादशाहके जो अधिकार हैं उन्हें छोड़ दो लेकिन वह बहादुरशाह कमज़ोर होनेपर भी ऐसा करनेको तैयार न हुआ। बादमें जब अंग्रेज़ोंकी ताक़त बहुत बढ़ गयी तब १८५४ में यह फ़ैसला हुआ कि बहादुरशाहके बाद शाही ख़ानदान क़िलेमें रहनेकी जगह कुतुबके पास रहे। इसी बातपर रेज़ीडेण्ट एवं नवाब शमसुद्दीनकी बड़ी मदद हुई परन्तु अंग्रेज़ अब शक्तिमान थे। उन्हें किसीकी भावनाओंकी क्या परवाह थी इसलिए निश्चय ज्यों-का-त्यों रहा और दो साल बाद यह भी तय हो गया कि बहादुरशाहके उत्तराधिकारीको बहादुरशाहके बजाय

आज़ादरौ[1] हूँ और मेरा मुस्लिक[2] है सुल्हकुल[3],
हरगिज़ कभी किसीसे अदावत नहीं मुझे ।
क्या कम है यह शरफ़[4] कि ज़फ़रका ग़ुलाम हूँ,
माना कि जाह[5] ओ मंसब[6] ओ सरवत[7] नहीं मुझे ।
उस्ताद शह[8] से हो मुझे पुरख़ाशका[9] ख़याल,
यह ताब यह मजाल यह ताक़त नहीं मुझे ।
सेहरा लिखा गया ज़िरह इम्तिसाल अम्र[10],
देखा कि चारा[11] ग़ैर इताअत[12] नहीं मुझे ।
मक़्तेमें आ पड़ी है सख़ुन गुस्तराना[13] बात,
मक़सूद[14] इससे क़िता-मुहब्बत[15] नहीं मुझे ।
रूए सख़ुन[16] किसीकी तरफ़ हो तो रूसियाह[17],
सौदा नहीं जुनूँ[18] नहीं वहशत नहीं मुझे ।
क़िस्मत बुरी सही पै तबीअत बुरी नहीं,
है शुक्रकी जगह कि शिकायत नहीं मुझे ।
सादिक़[19] हूँ अपने क़ौलमें 'ग़ालिब' ख़ुदा गवाह,
कहता हूँ सच कि झूठकी आदत नहीं मुझे ।

---

१ स्वतन्त्र विचारवाला २ समभाव ३ मैत्रीपरक शान्तिपरक ४ सम्मान ५ इज़्ज़त ६ ओहदा ७ दौलत ८ बादशाहके उस्ताद यानी ज़ौक़ ९ झगड़े १० बादशाहके आदेशके पालनके रूपमें ११ इलाज १२ ताबेदारी १३ आत्मोचित अतिशयोक्ति १४ अभीष्ट, १५ प्रेमको तोड़ना १६ यह कविता किसीको लक्ष्य करके लिखी गयी हो तो १७ काला मुँह, १८ उन्माद और पागलपन १९ सच्चा ।

बहरहाल जबतक ज़ौक़ रहे, दरबारमें ग़ालिब उभर नहीं पाये। १६ नवम्बर १८५४ को ज़ौक़की मृत्यु हो गयी। ज़ौक़के बाद बादशाह ज़फ़रने भी मिर्ज़ा ग़ालिबसे इस्लाह लेनी शुरू की। ज़फ़रके सबसे छोटे शहज़ादे मीरज़ा ख़िज्र सुल्तानने भी इनकी शागिर्दी इख़्तियार की। सम्भवतः इसी साल नवाब वाजिद अलीशाह अवध-नरेशकी ओरसे भी पाँच सौ सालाना मिलने लगा। इससे इनकी स्थिति काफ़ी हद तक सुधर गयी पर यह अल्पकालिक रही क्योंकि दो ही साल बाद १ जुलाई १८५६ को मिर्ज़ा फ़ख़रूकी मृत्यु हो गयी। उधर ११ फ़रवरी १८५६ को अंग्रेज़ोंने वाजिद अलीशाह को गद्दीसे उतारकर कलकत्ता भेज दिया जहाँ वह मटियाबुर्जमें नज़रबन्द कर दिये गये। मई १८५७ में ग़दर हो गया और मीरज़ा ख़िज्र सुल्तान हुमायूँके मक़बरेमें गिरफ़्तार कर लिये गये और दिल्लीके बाहर लेजाकर हडसनकी गोलीके शिकार हुए। ज़फ़रपर बाग़ियोंकी मदद करनेके जुर्ममें मुक़दमा चला और वह अक्तूबर १८५८ में रंगून भेज दिये गये जहाँ ७ नवम्बर १८६२ को उनकी मृत्यु हुई।

[illegible]

ऊपर लिखा जा चुका है कि १८५४ के अन्तिमभागमें ज़ौक़की मृत्यु हुई और उसके बाद ही ग़ालिबको ज़फ़रका गुरु होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुश्किलसे २-३ साल उन्होंने बादशाहके काव्यका संशोधन किया होगा। मोमिन और ज़ौक़की मृत्युके बाद उर्दू काव्यकी दुनियामें यही मशाल रह गये। इसलिए बहादुरशाहने इन्हें गुरु तो बनाया पर दिलसे वह कभी इनके अनुयायी न बन सके। कुछ लोग कहते हैं कि ज़फ़रका बहुत-सा कलाम ग़ालिबका ही लिखा है। बादशाहकी एक ग़ज़ल है तो इनकी चार। मु॰ हु॰ आज़ाद और हालीने भी ऐसे ही दावे किये हैं पर दोनोंका कलाम ही इस शंकाका सबसे बड़ा उत्तर है। बहादुरशाह 'ज़फ़र'का रंग और है, ग़ालिबका रंग और। ज़फ़रकी ज़बान सरल और साफ़-सुथरी है, उसमें उलझाव नहीं है

बहादुरशाह एवं ग़ालिब

जब ग़ालिब किसी बातको सीधे ढंगसे कहना बहुत कम जानते हैं। बल्कि जबान इस देशकी ज़बान है, उनकी उर्दू सचमुच उर्दू है जब मिर्ज़ा ग़ालिब की ज़बान और विचारपर फ़ारसीयतकी ऐसी छाप है कि उर्दू उभर नहीं पाती बल्कि यह कहिए कि यह उर्दू भी एक प्रकारकी फ़ारसी है। मिर्ज़ा अपनी फ़ारसीदानीके लिए प्रसिद्ध थे और फ़ारसीके सर्वोत्तम साहित्य-कारोंमें माने जाते थे। १८५३–५४ में जब बहादुरशाहके दिमाग़ होनेकी शोहरत हुई तो बादशाहने ग़ालिबसे ही ख़मसा उल्फ़ातिक नामक एक फ़ारसी मसनवी लिखवाकर छपवाई।

यहाँ बहादुरशाहने ग़ालिबके विस्तृत भाषा-ज्ञानसे कुछ-न-कुछ लाभ उठाया वहाँ बहादुरशाहकी जीवन-शैली एवं रहस्यमय दार्शनिक विचारों से ग़ालिब भी कुछ-न-कुछ प्रभावित हुए। फ़ारसी परम्पराके कारण मिर्ज़ाको तसव्वुफ़से थोड़ी-बहुत दिलचस्पी तो थी ही बहादुरशाहकी संगतिसे उसमें वृद्धि ही हुई और उनके काव्यमें सूफ़ियाना ख़्याल स्थान पाने लगे।

यह ठीक है कि दरबारमें ग़ालिबको ज़ौक़का दर्जा कभी न मिला पर यह भी ठीक है कि दरबार शाहीमें अपनी तबीयतदारी एवं ज्ञानके कारण मिर्ज़ाकी मुक़र्रर बड़ी बेतकल्लुफ़ी थी। अपनी हाज़िर जवाबी और हास्यप्रियताके कारण भी वह इस स्थितिको पानेमें सफल हुए थे।

ग़ालिब एवं बहादुरशाहके बयानमें हालीने कई लतीफ़े लिखे हैं। उनसे तथा उस ज़माने लिखे कई पत्रोंसे मिर्ज़ाकी हास्यप्रियताकी कल्पना होती है। एक बार जब रमज़ान गुज़र गया और मिर्ज़ा क़िलेमें गये तो बादशाहने पूछा—'मिर्ज़ा! तुमने कितने रोज़े रखे?' मिर्ज़ाने अर्ज़ किया—'पीरो मुर्शिद! एक नहीं रखा।' और निम्नलिखित क़िता पढ़ा—

एक रोज़ा नहीं

पेंशन मिलेगी, दूसरे यह कि उसकी उपाधि 'बादशाह' नहीं बल्कि 'शहजादा' होगी। मतलब बादशाहत बहादुरशाहके साथ ही खत्म हो जायगी।

मिर्ज़ाने देखा कि बादशाहत तो खत्म हो रही है, इसलिए अक्लमन्दी की बात यह है कि अपना भविष्य अंग्रेजोंके साथ सम्बद्ध करना चाहिए। उनको इस देशकी मिट्टीके प्रति कोई आकर्षण न था, इसलिए जिस कारणसे उन्हें अंग्रेजोंका विरोधी होना चाहिए था उसी कारण वह, उलटे, उनकी ओर खिंचते गये। उन्होंने देखा अंग्रेजोंका विरोध निरर्थक है। वह दुनियादार और व्यावहारिक आदमी थे। उन्होंने महारानी विक्टोरियाकी प्रशंसामें एक फ़ारसी कसीदा लिखा और लार्ड केनिंगके ज़रिये भिजवाया। पर साथमें वह स्वार्थ भी लगा था जो इनके जीवनमें सदा लगा रहा और जिसके कारण यह कभी निरपेक्ष न हो सके। कसीदेके साथ एक निवेदन था कि रूम व ईरानके बादशाह कवियोंपर बड़ी-बड़ी इनायतें करते हैं। अगर महारानी भी मुझे खिताब, खिलअत एवं पेंशनसे और लाभान्वित करें तो कोई आश्चर्य नहीं। इस बातका जवाब १८५७ की जनवरीके अन्तमें गालिबको लंदनसे मिला कि विचारके बाद खिताब एवं खिलअतके बारेमें आज्ञा प्रचारित होगी।

अब क्या था, मिर्ज़ा फूले न समाये। आशाओंके काल्पनिक महल बनाते रहे कि ११ मईको गदर सिरपर आ गया।

गदरके अनेक चित्र इनके पत्रोंमें तथा इनकी पुस्तक 'दस्तंबू' में मिलते हैं। उस समय इनकी मनोवृत्ति अस्थिर थी। यह निर्णय न कर पाते थे कि किस पक्षमें रहें। सोचते थे पता नहीं ऊँट किस करवट बैठे। इसलिए किसीसे भी थोड़ा सम्बन्ध बनाये रखते थे। 'दस्तंबू'में उन घटनाओंका ज़िक्र है जो गदरके समय इनके आगे गुज़री। उस समय यह बल्लीमारोंमें रहते थे। इसी मुहल्लेमें शरीफ़खानी वंशके प्रसिद्ध हकीम लोग रहते थे जो पटियाला दरबारमें मुलाज़िम थे। महाराज पटियालाने अंग्रेजोंसे कहकर इस मुहल्लेके

गदर

सिरेपर दीवार खिंचवा दी ताकि बाहरका आदमी अन्दर न जाने पाये और अपने आदमियोंका पहरा बैठा दिया कि कोई फ़ौजी गोरा लोगोंको तंग न कर सके। पर लोग इतने भयभीत थे कि कूचाबन्दीसे बाहर जाकर पानी भी न ला सके। प्याससे लोगोंके ओठोंपर जान थी। यह तो कहिए, पानी बरसा और लोगोंने चादरें तान-तानकर घर भरके मटके भर लिये। बाग़ी सेनाने दिल्लीमें खूब लूट-मार की। कितने ही अंग्रेजोंको मार दिया जिसका मिर्ज़ाको बराबर अफ़सोस रहा।

गस्त व गारतके बाद बागियोंने क़िलेका रुख़ किया। इस समय बादशाह उनकी आज्ञा माननेको विवश था। मिर्ज़ाने शाहको गिरफ़्ते सिपाह लिखा है। दिल्लीसे अंग्रेजी शासन उठने और दोबारा स्थापित होनेमें चार मास चार दिन लगे पर इसकी हालत मिर्ज़ाने केवल ५–६ पृष्ठोंमें लिखी है। उसमें भी अपनी एवं अपने साथियोंकी मुसीबतोंका ज़िक्र है। ऐसा जान पड़ता है कि मिर्ज़ाने उस समयकी घटनाएँ विस्तारसे लिखी होंगी पर अंग्रेजोंकी विजय एवं बहादुरशाहके निर्वासनके बाद उनका प्रकाशन उचित न समझ उतना अंश निकाल दिया होगा।

चोटपर चोट

ग़दर प्रारम्भ होते ही मिर्ज़ाकी बीबीने उनसे पूछे बिना अपने सब ज़ेवर और क़ीमती कपड़े मियाँ काले साहबके मकानपर भेज दिये कि वहाँ सुरक्षित रहेंगे पर बात उलटी हुई। काले साहबका मकान भी लुटा और उसके साथ ग़ालिबका सामान भी लुट गया।

हिन्दू मित्रोंकी सहायता

चूँकि इस समय राज मुसलमानोंका था इसलिए अंग्रेजोंने दिल्ली-विजयके बाद उनपर विशेष ध्यान दिया और उनको खूब सताया। बहुतसे लोग प्राण लेकर भाग गये। इनमें मिर्ज़ाके भी अनेक मित्र थे। इसलिए ग़दरके दिनोंमें इनकी हालत बहुत ख़राब हो गयी। घरसे बाहर कम निकलते थे। खाने-पीनेकी भी मुश्किल थी। ऐसे वक़्त उनके कई

हिन्दू मित्रोंने उनकी बड़ी सहायता की। मुंशी हरगोपाल 'तुफ्ता' मेरठसे बराबर रुपये भेजते रहे, लाला महेशदास इनकी मदिराका प्रबन्ध करते रहे। मुंशी हीरा सिंह दर्द पं० शिवराम एवं उनके पुत्र बालमुकुन्दने भी इनकी मदद की। मिर्ज़ाने अपने पत्रोंमें इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की है।

मुसलमान हूँ पर आधा

यद्यपि पटियालाके सिपाही आस-पासके मकानोंकी रक्षामें तैनात थे और एक दीवार बना दी गयी थी पर ५ अक्टूबरको (१८ सितम्बरको दिल्लीपर अंग्रेजोंका दोबारा अधिकार हो गया था) कुछ गोरे सिपाहियोंके मना करनेपर भी दीवार फाँदकर मिर्ज़ाके मुहल्लेमें आ गये और मिर्ज़ाके घरमें घुसे। उन्होंने माल-असबाबको हाथ नहीं लगाया पर मिर्ज़ा आरिफ़के दो बच्चों और बन्द और लोगोंको पकड़ ले गये और कुतुबउद्दीन सौदागरकी हवेलीमें कर्नल ब्राउनके सामने पेश किया। उनकी हास्यप्रियता और एक मित्रकी सिफ़ारिशने रक्षा की। बात यह हुई कि जब गोरे मिर्ज़ाको गिरफ़्तार करके ले गये तो अंग्रेज सार्जेण्टने इनकी अनोखी सज-धज देखकर पूछा—'क्या तुम मुसलमान हो?' मिर्ज़ाने हँसकर जवाब दिया कि 'मुसलमान तो हूँ पर आधा।' वह इनके जवाबसे चकित हुआ। पूछा—'आधा मुसलमान कैसे?' मिर्ज़ा बोले—'साहब शराब पीता हूँ हेम (सुअर) नहीं खाता।"

जब कर्नलके सामने पेश किये गये इन्होंने महारानी विक्टोरियासे अपने पत्र-व्यवहारकी बात बताई और अपनी वफ़ादारीका विश्वास दिलाया। कर्नलने पूछा—'तुम देहलीकी लड़ाईके समय पहाड़ी (रिज) पर क्यों नहीं आये जहाँ अंग्रेजी फ़ौजें और उनके मददगार जमा हो रहे थे?'

मिर्ज़ाने कहा—'तिलंगे दरवाज़ेसे बाहर आदमीको निकलने नहीं देते थे। मैं क्यों कर आता? अगर कोई फ़रेब करके कोई बात करके निकल जाता जब पहाड़ीके क़रीब गोलीके रेंजमें पहुँचता तो पहरेवाला गोली मार देता। यह भी माना कि तिलंगे बाहर जाने देते गोरा पहरेदार भी गोली न मारता पर मेरी सूरत देखिए और मेरा हाल मालूम कीजिए।

बूढ़ा हूँ पाँवसे अपाहिज कानोंसे बहरा न लड़ाईके लायक न मश्विरतके क़ाबिल । हाँ दुआ करता हूँ सो यहाँ भी दुआ करता रहा ।"

कर्नल साहब हँसे और मिर्ज़ाको उनके नौकरों एवं घरवालोंके साथ घर जानेकी इजाज़त दे दी ।

मिर्ज़ा यूसुफ़का अन्त

मिर्ज़ा तो बच गये पर इनके भाई मिर्ज़ा यूसुफ़ इतने भाग्यशाली न थे । पहिले ज़िक्र किया जा चुका है कि वह ३० सालकी उम्रमें ही विक्षिप्त हो गये थे और ग़ालिबके मकानसे दूर, फ़राशख़ानेके क़रीब एक दूसरे मकानमें अलग रहते थे । जितनी पेंशन ग़ालिबको सरकारी ख़ज़ानेसे मिलती थी उतनी ही मिर्ज़ा यूसुफ़के लिए भी नियत थी । उनकी बीबी बच्चे भी साथ-साथ रहते थे पर जब देहलीपर पुनः अंग्रेज़ोंका अधिकार हुआ तो गोरोंने चुन चुनकर बदला लेना शुरू किया । इस बेरहमती और अत्याचारसे बचनेके लिए यूसुफ़की बीबी बच्चों-सहित इन्हें अकेले छोड़ जयपुर चली गयी थी । घरपर इनके पास एक बूढ़ी नौकरानी और एक बूढ़ा दरबान रह गये । मिर्ज़ाको भी सूचना मिली किन्तु बेबसीके कारण कुछ कर न सके ।

३ सितम्बरको जब ग़ालिबको अपना दरवाज़ा बन्द किये हुए पन्द्रह सोलह दिन हो रहे थे उन्हें सूचना मिली कि सैनिक मिर्ज़ा यूसुफ़के घर आये और सब कुछ ले गये लेकिन उन्हें और बूढ़े नौकरोंको ज़िन्दा छोड़ गये ।* मिर्ज़ा ग़ालिब लिखते हैं कि १९ अक्टूबरको सुबहके वक़्त मिर्ज़ा यूसुफ़का बूढ़ा दरबान ख़बर लाया कि मिर्ज़ा यूसुफ़ पाँच दिन निरन्तर ज्वरग्रस्त रहनेके बाद कल रात गुज़र गये ।

---

* ग़ालिबके एक निकट सम्बन्धी मिर्ज़ा मुईनउद्दीनने लिखा है कि यूसुफ़ गोलीकी आवाज़ सुनकर, यह देखने कि क्या हो रहा है, घरसे बाहर आये और मारे गये ।—ग़दरकी सुबह-शाम पृष्ठ ८८ ।

इस समय शहरकी हालत भयानक थी। २-४ आदमियोंको मिलकर, किसी लाशको दफन करनेके लिए, कब्रिस्तान तक ले जाना सम्भव न था। कफनके लिए कपड़े भी न मिलते थे। और हकीमोंने मदद की। मिर्जाका एक नौकर और पटियालाका एक सिपाही उनके साथ गया। कफनके लिए दो-तीन सफेद चादरें मिर्जाने अपने पाससे दीं। इन लोगोंने गलीके सिरेपर तहव्वरखाँकी मस्जिदकी† सेहनमें गड्ढा खोदा और सबको उसमें उतारकर मिट्टी डाल दी।

इस समय मिर्ज़ा गालिबकी हालत दयनीय थी। आमदनीके ज़रिये बन्द, बस जान बचानेकी फ़िक्र, मार्शलकी भीत! एक आतंक सबपर छाया हुआ।

उस ज़मानेकी सूरत

ज़िन्दगी भी क्या ज़िन्दगी थी। जो जीवित थे मरे हुओंसे बदतर थे। किसीकी सुरक्षा न थी। गोरे जिसकी इज्ज़त-आबरू चाहते ले लेते थे जिसे चाहते मार देते। उनपर प्रतिहिंसाका भूत सवार था। हकीम महमूद खाँ का पटियाला महाराज से सम्बन्ध होनेके कारण गालिबका मुहल्ला कुछ सुरक्षित था। बहुतेरे लोगोंने भागकर हकीम साहबके यहाँ शरण ली थी। २ फरवरी १८५८ को हाकिम शहर चंद सिपाहियोंके साथ गालिबके मुहल्लेमें आया और हकीम महमूदखाँको साठ आदमियों-सहित पकड़ ले गया। हकीम साहब एवं उनके कुछ साथी ३ दिन बाद कुछ लोग एक हफ्ते बाद रिहा कर दिये

---

† मालिक राम साहब लिखते हैं—फ़राशखानेसे खारी बावलीकी तरफ जायें तो यह मस्जिद नया बाँसके पास उलटे हाथको पड़ती है। इसके निर्माणकर्त्ता तहव्वरखाँ नवाब मुहम्मदशाहके राज्यकालमें शाहजहाँपुरके जमींदार थे। वर्तमान मस्जिद नई बनी है। अब इसकी कुर्सी ऊँची है और सेहनके नीचे बाजारमें दूकानें हैं।

—ज़िक्रे गालिब, तृतीय पृष्ठ ९६–९७।

गये। हकीम साहब * छूटकर घरमें नहीं बैठे हरएकके लिए दौड़े और बेगुनाहोंके सुबूत दिये जिससे एक-एक तक बाक़ी कौम भी रिहा कर दिये गये।

---

*इन्हीं हकीम महमूदख़ाँकी मृत्यु पर हालीने एक मर्सिया लिखा था जिसके कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं—

वह ज़माना जब कि था दिल्लीमें यक महशर बपा।
नफ़सी-नफ़सी का था जब चारों तरफ़ गुल पड़ रहा।
अपने-अपने हालमें छोटा-बड़ा था मुब्तिला।
बापसे फ़र्ज़न्द और भाईसे भाई था जुदा।
मौजज़न था जबकि दरियाए अताब मुत्तसल।
बाग़ियोंके जुर्मका दुनिया प नाज़िल था वबाल।

× × ×

ऐसे नाज़ुक वक़्तपर मर्दानगी उसने जो की
याद है इन्साफ़ उसका भूले हैं न भूलेंगे कभी।
बिलयक़ीं जिन मुजरिमोंको उसने समझा बेख़ता।
मार्शल लॉमें सुबूत उनकी सफ़ाईका दिया।
चैनसे बैठा न जबतक होगया इक-इक रिहा।
जो कि थे नादार की उनकी अयानत बरमला।
घर दिया खाना दिया कपड़ा दिया बिस्तर दिया।
बे ठिकानोंको ठिकाना बेघरोंको घर दिया।

इस ज़मानेमें सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। जिसको जहाँ जगह मिली वहीं भाग खड़ा हुआ। मिर्ज़ाने 'दस्तंबू' एवं अपने उर्दू पत्रोंमें अपने दोस्तों तथा परिचितोंकी हालत बयान की है। जब ग़दर आरम्भ हुआ उसी दिन ज़ियाउद्दीन और नवाब अमीनउद्दीन अपने परिवार एवं अंय आत्मीयोंके साथ अपनी जागीर लोहारू जानेके लिए रवाना हुए लेकिन अभी महरौलीमें ही थे कि लुटेरे सिपाहियोंने आ घेरा और बदनपर जो कपड़े थे उन्हें छोड़ सब कुछ ले गये। दिल्लीका घर भी पूर्णतः नष्ट हुआ। मुज़फ्फ़रउद्दीन हैदरख़ाँ और मुअज़्ज़िमउद्दीन हैदरख़ाँ (हुसेन मिर्ज़ा) पर जो गुज़री वह इससे भी व्यथाजनक है। वे पहलेके अन्य प्रतिष्ठित लोगोंकी तरह अपनी अट्टालिकाएँ छोड़ जान बचाकर भागे। उनके घर भी बुरी तरह लुटे। फिर किसीने मकानके पर्दों और सायबानोंमें आग लगा दी जिससे सारा घर जलकर राख हो गया। इन लोगोंके यहाँ मिर्ज़ाका काव्य एकत्र होता रहता था वह भी इसीमें नष्ट हो गया। मिर्ज़ाके एक ख़तमें इस घटनाकी ओर इशारा है—

मिर्ज़ाके दोस्तों एवं परिचितोंकी हालत

'भाई ज़ियाउद्दीनख़ाँ साहब और नाज़िर हुसेन मिर्ज़ा साहब हिन्दी फ़ारसी नज़्म व नस्रके मसविदात मुझसे लेकर अपने पास जमा किया करते थे। सो इन दोनों घरोंपर झाड़ फिर गयी। न किताब रही न असबाब रहा।*

नवाब मुस्तफ़ाख़ाँ 'शेफ़्ता' को ग़दरके बाद सात साल क़ैदका हुक्म हुआ था। वह एक प्रतिष्ठित जागीरदार और उर्दू-फ़ारसीके समर्थ कवि

---

*१८५७ ई० में मिर्ज़ाने अपने उर्दू कलामका एक नुस्ख़ा रामपुर भेजा था वह सुरक्षित रहा और उसकी नक़लोंसे ही १८६१ में वर्तमान उर्दू दीवान तैयार हुआ। लेकिन छटे मीज़नेके बाद भी तो ग़ालिबने कुछ न कुछ लिखा ही होगा वह सब नष्ट हो गया।

थे। उर्दू कवियोंके सम्बन्धमें इनका लिखा फ़ारसी भाषाका ग्रन्थ 'गुलशन बेख़ार' प्रसिद्ध है। गार्सां तासीने भी इसकी प्रशंसा की है। शेफ़्ता ग़ालिबके प्रशंसकोंमें थे और मुसीबतके ज़मानेमें बराबर उनकी मदद करते रहे।

शेफ़्ता

इसलिए उनकी क़ैदसे भी ग़ालिबके दिलपर चोट लगी। और अपीलमें वह छूट गये। इससे ग़ालिबको जो ख़ुशी हुई वह इसीसे समझी जा सकती है कि उस बुरी अवस्थामें भी शाम्भाड़ीमें बैठकर मेरठ गये उनसे मिले चार दिन रहे, तब वापिस आये।

मौलाना मुफ़्ती सदरुद्दीन आज़ुर्दा फ़ारसीके उच्चकोटिके कवि और अरबीके माने विद्वान् थे। ग़दरके पहिले दिल्लीमें सदरस्सुदूर थे। यह

मुफ़्ती सदरुद्दीन

भी पकड़े गये। मुक़दमा पेश हुआ। जानबख़्शी का हुक्म हुआ पर नौकरी मौकूफ़ जायदाद ज़ब्त। निरुपाय लाहौर गये। फ़िनांशल कमिश्नर एवं ले० गवर्नरने कृपा करके आधी जायदाद वापिस करा दी।

ग़ालिबकी ज़िन्दगीमें भी फ़ज़लहक़का बड़ा हाथ था। उन्हींने उन्हें 'बेदिल'की नक़लसे हटाकर काव्यके सही रास्तेपर लगाया। ये गिरफ़्तार

भी फ़ज़लहक़

ही नहीं हुए, आजन्म निर्वासित भी किये गये। रंगूनमें रखे गये। इनके दूसरे बेटे गुलाम क़ीम बेखबर ने अपील की जिससे बहुत दिनों बाद—१८६१ में—रिहाईका हुक्म हुआ पर रिहाईका हुक्म रंगून पहुँचनेके पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गयी।

मतलब यह कि ग़दर क्या आया मिर्ज़ाका जीवनाकाश काली घटाओं-से घिर गया। घरमें जो कुछ था वह ख़तम हो गया यार-दोस्त गिरफ़्तार

पसीम दोस्तोंकी सदाएँ

और दूर हो गये आमदनीके सब रास्ते बंद। क़िलेकी तनख़ाह तो पहिले ही बंद हो गयी थी क्योंकि वहाँ तो वैसी फ़ौजका डेरा था। इतना ही बहुत था कि उन लोगों-

ने इनको सताया नहीं अन्यथा अंग्रेज़ोंका पत्रीपरस्तार कहकर मौतके घाट उतार देते तो उन्हें कौन रोकनेवाला था। अंग्रेज़ोंकी तरफ़से जो ख़ानदानी पेंशन मिलती थी वह भी बंद हो गयी क्योंकि दिल्लीपर देसी फ़ौजका क़ब्ज़ा था, अंग्रेज़ी दफ़्तर ही कहीं रह गया था। इस कष्टके समय नवाब ज़ियाउद्दीन अहमदने मिर्ज़ाकी बीबी उमराव बेगमको पचास रुपये माहवार नियत कर दिया। यह प्रकारान्तरसे मिर्ज़ाकी ही मदद थी। बेगमको यह वज़ीफ़ा उनकी मृत्यु तक मिलता रहा।

ग़दरसे थोड़े ही वर्ष पहिले मिर्ज़ाका दरबार रामपुरसे सम्बन्ध हो गया था। थोड़ा-बहुत सम्बन्ध तो बहुत पहिलेसे था क्योंकि जब बचपनमें

रामपुरसे सम्बन्ध

नवाब मुहम्मद यूसुफ़अलीख़ाँ पढ़नेके लिए दिल्ली आये तो उन्होंने ग़ालिबसे फ़ारसी पढ़ी थी पर बादमें यह सिलसिला टूट गया था। जब १८५५ ई० में वह गद्दी पर बैठे तो मिर्ज़ाने क़िता लिखकर भेजा पर परिणाम कुछ न निकला।* नवाबने ध्यान नहीं दिया। बादमें जब ग़ालिबके हितैषी और मित्र भी फ़ज़्लहक़ ख़ैराबादी रामपुरमें थे उन्होंने मिर्ज़ाको तैयार किया कि वह नवाबके पास क़सीदा भेजें। मिर्ज़ाने क़सीदा भेजा। भी फ़ज़्लहक़ने भी सिफ़ारिश की। इसके उत्तरमें नवाबने ५ फ़रवरी १८५७ को एक ख़तमें चंद शेर इस्लाहके लिए मिर्ज़ाके पास भेजे हैं†। इससे उनका दरबार रामपुरसे नियमित सम्बन्ध हो गया। जान पड़ता है कि नवाब साहबने इस प्रारम्भिक ख़तमें यूसुफ़ तख़ल्लुस लिया था पर मिर्ज़ाके सुझावपर 'नाज़िम' पसन्द किया।

पर इनकी कोई मासिक वृत्ति नहीं बँधी थी। वैसे नवाब बीच-बीचमें रुपये भेजते रहते थे। पहिले ही पत्रके साथ ढाई सौ भेजे थे।

*मकातीबे ग़ालिब पृ० १।
†मकातीबे ग़ालिब पृ० १५।

यह सम्बन्ध हुए थोड़े ही दिन हुए थे कि तूफ़ान आया और ग़दरमें सब व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी। आँधी आई और चली गयी तब इन्हें पेंशनकी चिन्ता हुई। ग़ालिबका ख़याल था कि शान्ति स्थापित होते ही मेरी पेंशन बहाल हो जायगी। जब न हुई तो वही वफ़ादारीवाला ढंग इख़्तियार किया। महारानी विक्टोरिया तथा उच्चाधिकारियोंकी प्रशंसामें क़सीदे लिखकर दिल्लीके अधिकारियोंकी मार्फ़त भेजे किन्तु १७ मार्च १८५७को कमिश्नर दिल्लीने यह लिखकर इन्हें वापिस भेज दिया कि इनमें कोरी प्रशंसा एवं स्तुतिके सिवा कुछ नहीं है। जब इसके कुछ मास बाद 'दस्तंबू' छपी तो जिल्दें बंधवाकर २ विलायत और ४ प्रतियाँ हिन्दुस्तानमें उच्चाधिकारियोंको भेंट कीं। संचालक शिक्षा-विभाग पश्चिमोत्तर प्रदेशने बड़ी प्रशंसा की और मि० मैक्लियाड फ़िनांशल कमिश्नरने ख़ूब लिखकर कमिश्नर दिल्लीकी मार्फ़त यह किताब मिर्ज़ाको भिजवाई। यह सब तो हुआ पर अधिकारियोंका दिल इनकी ओरसे साफ़ न हुआ। जनवरी १८६१ में मेरठमें बड़ा दरबार हुआ। अन्य दरबारी बुलाये गये पर इन्हें निमन्त्रण नहीं दिया गया। फिर जब गवर्नर जेनरलका कैम्प मेरठसे दिल्ली आया और मिर्ज़ाने चीफ़ सेक्रेटरीके ख़ेमेमें मुलाक़ातके लिए अपना टिकट भेजा तो वहाँसे जवाब मिला कि ग़दरके दिनोंमें तुम बाग़ियोंसे रब्त-ज़ब्त रखते थे।* अब गवर्नमेण्टसे क्यों मिलना चाहते हो। लार्ड कैनिंगकी तारीफ़में जो क़सीदा लिखा था वह भी वापिस कर दिया गया कि अब ये चीज़ें हमारे पास न भेजा करो।†

पेंशनकी चिन्ता

---

* ग़दरमें इनका सम्बन्ध बहादुरशाहसे छूटा न था। आगराके अख़बार 'आफ़ताब आलमताब'में छपा था कि १९ जुलाई १८५७को मिर्ज़ा नौशा (ग़ालिब) ने बहादुरशाहकी तारीफ़में क़सीदा पढ़ा था। चीमातिककरामने इसे १८ जुलाई लिखा है।

† ग़ालिबनामा १४५–४६।

इस समय इनकी हालत बहुत ख़राब थी। यहाँ तक कि घरके कपड़े बेचकर दिन कट रहे थे। एक पत्रमें निराशापूर्वक लिखते हैं—

"५१ माहका पेंशन। तक़र्रुर इसका बतजवीज़ लार्ड केनिंग व मंज़ूरी गवर्नमेंट—और फिर न मिला है न मिलेगा। ख़ैर, मुसलमान हूँ मिलनेका। अक़ीदा रखता हूँ। उसकी क़सम कभी झूठ नहीं खाता। इस वक़्त कल्लूके‡ पास एक रुपया सात आने बाक़ी हैं। बाद इसके न कहीं क़र्ज़की उम्मीद है, न कोई जिंस रेहन व बयके क़ाबिल।"

इस निराशाजनक स्थितिमें लाचार होकर इन्होंने दिल्लीसे बाहर चले जानेका निश्चय किया। नवाब अमीनुद्दीन अहमदख़ाँ तथा ज़ियाउद्दीन अहमदख़ाँ एवं उनकी माँ बेगम जान साहबाने इस अवसरपर इनके प्रस्तावको स्वीकार किया कि उमराव बेगम और बच्चे लोहारू चले जायें। इस निश्चयकी सूचना नवाब अलाउद्दीन अहमदख़ाँको जो उस समय लोहारूमें थे देते हुए लिखते हैं—

अपना मक़सूद तुम्हारे वालिद माजिदसे...कह चुका हूँ। ख़ुलासा यह कि मेरी बीबी और बच्चोंको कि तुम्हारी क़ौमके हैं, मुझसे ले लो कि मैं इस बोझका मोतहम्मिल हो नहीं सकता।...मेरा क़स्द सियाहतका है। पेंशन अगर खुल जायगा तो वह अपने सर्फ़में लाया करेगा। यहाँ जी लगा नहीं रह गया। यहाँसे दिल उचाट चल दिया।

निराशामें बीबी-बच्चे बोझ मालूम होते थे और सब मुसीबतें इन्हींकी वजहसे आती मालूम पड़ती थीं और इच्छा भी होती थी कि अकेले—

'रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।'*

और तय यह हुआ कि बीबी बच्चे लोहारू जायें और यह पटियाला जाकर रहें। इस बीच इन्होंने महाराज अलवर एवं पटियालाकी सरपरस्तीमें

---

‡ कल्लू ग़ालिबका वफ़ादार सेवक था जिसे यह बहुत मानते थे।

* ज़िक्रे ग़ालिब पृष्ठ १ १।

फ़्तीसे मिले और मदद चाही। पटियालाके प्रतिष्ठित नागरिक महमूदख़ाँके यह पड़ोसी थे। बस बरसों एक जगह रह रहे थे। हकीम महमूदख़ाँके दो भाई हकीम मुर्तज़ाख़ाँ और हकीम गुलाम नक़ीख़ाँ पटियाला-नरेश महाराज नरेन्द्रसिंहकी सेवामें थे। उनकी इच्छा भी थी कि ग़ालिब कुछ दिन वहाँ आकर रहें। पर जब इसीरेके जवाबमें कोई अनुकूल उत्तर न मिला तब इन्होंने वहाँ जानेका विचार त्याग दिया।

इधरसे निराश होकर ग़ालिबने नवाब रामपुरसे दरख़ास्त की कि मेरा कोई नियमित वज़ीफ़ा तय कर दिया जाय। नवाबने १५ जुलाई १८५९ को उत्तर दिया कि आपको १) मासिक वेतन पहुँचता रहेगा †। नवाब रामपुर (यूसुफ़ अलीख़ाँ) ने मिर्ज़ाको कई बार रामपुर निमन्त्रित किया। दिल्लीपर अंग्रेज़ोंका क़ब्ज़ा होते ही इन्होंने रामपुर जानेका आश्वासन दिया था पर इन्हें सरकारी पेंशनकी उम्मीद अब भी बनी थी इसलिए दिल्ली छोड़ते न बनती थी। नवाब रामपुरने दूसरी बार २५ नवम्बर १८५८को बुलाया तो इन्होंने जवाब दिया—"मेरे हाज़िर होनेको भी इरशाद होता है, मैं वहाँ न आऊँगा तो कहाँ जाऊँगा। पेंशनके बसूलका ज़माना क़रीब आया है। उसे मुल्तवी छोड़कर क्यों चला आऊँ? सुना जाता है और मक़ीन भी आता है कि आग़ाज़ माह ५९ ईस्वी यह क़िस्सा अंजाम पाये। जिसको रुपया मिलना है उसको रुपया जिसको जवाब मिलना है उसको जवाब मिल जाये।"*

राामपुरसे मासिक वृत्ति

जनवरी १८५९ भी आया और चला गया। तब नवाबने २ फ़रवरी और ११ एप्रिलको पुनः निमन्त्रित किया जिसके उत्तरमें इन्होंने लिखा—

---

† मकातीबे ग़ालिब ८२ उर्दू—ए—मोअल्ला १२ ।
*मकातीबे ग़ालिब पृ० १२।

'पहले खतमें यह अर्ज किया है कि मजमूआ पेंशनदारोंकी मिस्लका मुस्तम है और हनोज सदरको रवाना नहीं हुई। नवाब गवर्नर जेनरल लार्ड कैनिंग बहादुरने कलकत्तासे मेरी पेंशनके कागजात तलब किये और यह कागज दफ्तरिस्तमेसे बरामद होकर लेफ्टिनेण्ट गवर्नर बहादुर पंजाबकी खिदमतमें इरसाल हुए। वहाँसे कलकत्ता भेजे जायेंगे। फिर वहाँसे हुक्म मंजूरी पंजाब होता हुआ यहाँ आयेगा और यहाँ मुझको रुपया मिल जायगा। आज रुपया मिला कल मैंने आपसे सवारी और बारबरदारी माँगी। आज सवारी और बारबरदारी पहुँची और कल मैंने रामपुरकी राह ली।

कैसी दृढ़ आशा एवं निष्ठा थी इस आदमीको अंग्रेजोंकी न्यायप्रियता-मे। पर निराश तो होना ही था। १८६ के शुरूमें जब गवर्नर जेनरलने इनसे मुलाकात करनेसे इन्कार कर दिया तब इनकी नींद टूटी और जब अन्तिम उत्तर मिल गया तब इनकी आँखें खुलीं। इस बीच दिसम्बर १८५९में पुनः नवाब रामपुर इन्हें निमन्त्रित कर चुके थे। इसलिए अंग्रेजों-से निराश होकर १९ जनवरी १८६ को यह रामपुरके लिए रवाना हुए और २७ जनवरीको वहाँ पहुँच गये।§

रामपुरमें

रामपुरमें इनका खूब सत्कार हुआ। नवाब साहबने अपनी खास कोठी ठहरनेके लिए दी। पर गालिबने गलती यह की कि आरिफके दोनों बच्चों (बाकरअली और हुसेन अली) को साथ ले गये। इस भयसे कि कहीं बच्चे कीमती सामानको नुकसान न पहुँचायें इन्होंने स्वयं दूसरा स्थान देनेकी प्रार्थना की। इसपर चार दिन बाद राजद्वारा मुहल्लेमें एक बड़ा मकान इन्हें रहनेको दिया गया। शुरूमें खाना भी दोनों वक्त सरकारसे आता रहा पर बादमें सौ रुपया मासिक इसके लिए तय हो गया। अर्थात्

§ उर्दूए-मोअल्ला पृ० १७।

दिल्लीमें रहें तो भी रामपुरमें रहें तो भी । रामपुरकी आबहवा भी इनके अनुकूल थी और यह गर्मी और बरसातमें वहाँ रहना चाहते थे पर बच्चोंने लौटनेकी ज़िद की । इन्हें अच्छा न लगा कि इन्हें अकेले भेजूँ इसलिए खुद भी लौटना पड़ा । १७ मार्च १८६ को चलकर २४ मार्चको दिल्ली पहुँच गये ।

रामपुर जानेसे इनका सम्बन्ध रामपुर दरबारसे सुदृढ़ हो गया । इनके कहनेपर नवाब रामपुरने समय-समयपर अंग्रेज़ अफ़सरोंसे भी इनकी सिफ़ारिश की । उधर रामपुरसे दिल्ली लौटते समय मिर्ज़ा मुरादाबाद ठहरे । मालूम होनेपर सर सैयद अहमदख़ाँ इन्हें सरायसे अपने घर ले गये । इस मुलाक़ातका परिणाम मिर्ज़ाके लिए बहुत अच्छा हुआ । सरसैयदकी अंग्रेज़ोंमें बड़ी पहुँच थी । उन्होंने मिर्ज़ाकी पेंशनकी बहालीके लिए कोशिश की * । उनकी सिफ़ारिशसे इनकी पेंशन बहाल हो गयी और दिल्ली लौटनेके बाद इन्हें पेंशनकी पाई-पाई जो बाक़ी थी मिल गयी ।

पेंशनकी बहाली

पेंशन मिलनेसे टूटी हुई आशाएँ फिर हरी हुईं । इन्होंने दरबार और ख़िलअतकी बहालीके लिए भी कोशिशें कीं । १ जून १८६२ को दरख़ास्त दी कि "मुझे लार्ड विलियम बेंटिकके अहदसे दरबारका और लार्ड एलनबराके अहदसे ख़िलअत व खिरलक ऐज़ाज़ हासिल था । चाहिए तो यह था कि उम्र बढ़नेके साथ इस इज़्ज़त व तौक़ीरमें इज़ाफ़ा होता मगर अब कि मेरी उम्र ६७ बरस है इसके बरख़िलाफ़ वह महज़ा दरबार और ख़िलअत भी छिन गया है । मैं सरकारके हिसाब भी वफ़ादार रहा । पेंशनका इजरा ही मेरी बेगुनाहीका सबसे बड़ा सबूत है । फिर

---

* सर सैयद अहमद ख़ाँ : 'अलहिलाल' १७ जून १९१४ ।

ज़िक्रे ग़ालिब पृ० ११४ ।

न मालूम मुझसे दरबारका हक क्यों छीन लिया गया है। अब मेरे मकामिसालकी तफ़्तीश की जाय और अगर यह साबित हो जाय कि मैं बेक़सूर हूँ तो मेरा दरबार और दूसरे ऐज़ाज़ बहाल किये जायें।

३ मार्च १८६१ ई० को दरबार एवं ख़िलअतकी बहाली भी हो गयी। २१ मार्च १८६१ को सर रार्बट माण्ट गोमरी ने गवर्नर पंजाबने इन्हें ख़िलअत दी।*

ख़िलअतकी बहाली

*मौ॰ अबुलकलाम 'आज़ाद' लिखते हैं—"सईदुज्ज़फ़र मुहम्मद हुसेन मरहूम (पटियाला) ने मुझसे दिल्लीके एक दरबार शर्ते-ग़दरका ज़िक्र किया था जिसमें वह शरीक हुए थे और मिर्ज़ा ग़ालिबको देखा था। मिर्ज़ा साहब पर बोफ़से चलना दुश्वार था। दो शख्स दोनों तरफ़ सहारा देकर उन्हें ले गवर्नरके पास जाने। उनके हाथमें क़रतासका काग़ज़ था जिसपर एक रुबाई दर्ज थी। जब क़रीब पहुँचे तो कहा—कानोंसे बहरा हो गया हूँ इरशादे मुबारक सुन नहीं सकता। आँखोंकी बसारत जवाब दे रही है जमाले मुबारक देख नहीं सकता। फिर्के शेरकी ताकत बाकी कि क़सीदा लिखकर ख़िदमते दौलतख़्वाही बजा लेता।

रस्मे जस्त कि मालिकाने तहरीर।
आज़ाद कुनिंद बन्दए पीर।

इस हक्क व ख़िदमतीमें एक रुबाई अर्ज़ करके ख़िदमते हुसरत लिखी है उम्मीदवारे क़बूलियत हूँ। यह कहकर रुबाई पढ़ी है। काग़ज़ और नज़र हाथोंपर रखके पेश किया। लै गवर्नरने रुबाई लेकर खुशनूदीका इज़हार किया और बहुत ज़ोरसे पुकारकर कहा—आपका क़दीम ऐज़ाज़ बहाल हुआ। आप हुज़ूर गवर्नर जेनरलके दरबारमें भी बदस्तूर शिरकत पायेंगे। फिर अपने हाथसे सरपेंच बाँध दिया और मीर मुंशीने ख़िलअतके क़दीम ऐज़ाज़ बता दिये। शायद इसमें इसी दरबारका ज़िक्र है।

—नक्शे आज़ाद पृ॰ ११५।

१८५५ के प्रारम्भमें उन्होंने अंग्रेज़ सरकारकी सेवामें पुनः निवेदन किया कि (१) मुझे महारानीका राजकवि (पोयट लॉरेट) नियुक्त किया जाय (२) दरबारमें पहिलेसे ऊँची जगह दी जाय और (३) मेरी किताब दस्तंबू हुकूमत अपने खर्चसे प्रकाशित करे।

नई दर्खास्त

जाँच-पड़ताल के बाद ९ जनवरी १८५६ को यह निश्चय हुआ कि मिर्ज़ा-को दरबारी शायर तो नहीं बनाया जा सकता हाँ गवर्नर-जेनरलको इस पर कोई आपत्ति नहीं कि वे गवर्नर पंजाब उन्हें खिल्लत दें या दरबार में पहिलेसे ऊँची जगह दें।

जिनदिनों ग़ालिबकी वैसी इज्जत नवाब मुहम्मद यूसुफ अलीख़ाँ नवाब रामपुरने की दूसरेने न की। वह सज्जनताकी मूर्ति थे। ग़ालिब यद्यपि उनकी नौकरीमें थे फिर भी उनके साथ मित्र एवं गुरु-रूपमें व्यवहार करते थे। जैसा ग़ालिबके पत्रोंसे भी प्रकट है मासिक वृत्तिके अलावा भी समय-समयपर उनकी सहायता करते रहते थे। वह स्वयं बहुत अच्छे कवि थे और उनके कलामका अध्ययन करनेपर मालूम होता है कि उनपर ग़ालिबकी चिन्ता-धाराका काफ़ी प्रभाव पड़ा था। यह भी सम्भव है कि ग़ालिबने अपने संशोधनोंमें उसपर अपनी छाप डाल दी हो। निम्नलिखित शेरोंमें यही रंग और शोख़ी है—

नवाब यूसुफ द्वारा आदर

रुख़सत अर्जे़हाल क्या माँगूँ।
कह न बैठें कहीं कि रुख़सत हो।

× ×

सख़्त हैं अपने तालअ आज वा ख़्वाबमें,
'नाज़िम' मुश्किल नींद न आई तमाम रात।

× ×

नई दर्ख्वास्त

१८५५ के आरम्भमें उन्होंने अंग्रेज सरकारकी सेवामें पुनः निवेदन किया कि (१) मुझे महारानीका राजकवि (शायरे दरबार) नियुक्त किया जाय (२) दरबारमें पहिलेसे ऊँची जगह दी जाय और (३) मेरी किताब दस्तंबू हुकूमत खास तर्फ़से प्रकाशित करे।

जाँच पड़तालके बाद ९ जनवरी १८५६ को यह निर्णय हुआ कि मिर्ज़ा-को दरबारी शायर तो नहीं बनाया जा सकता हाँ गवर्नर-जेनरलको इस पर कोई आपत्ति नहीं कि वे गवर्नर पंजाब उन्हें खिलअत दें या दरबार में पहिलेसे ऊँची जगह दें।

नवाब यूसुफ़ द्वारा आदर

जिन्दगीमें ग़ालिबकी सबसे बड़ी इज्ज़त नवाब मुहम्मद यूसुफ़ अलीखाँ नवाब रामपुरने की, दूसरेने न की। वह सज्जनताकी मूर्ति थे। ग़ालिब यद्यपि उनकी नौकरीमें थे फिर भी उनके साथ मित्र एवं गुरु-जनसम व्यवहार करते थे। जैसा ग़ालिबके पत्रोंसे भी प्रकट है, मासिक वृत्तिके अलावा भी समय-समयपर उनकी सहायता करते रहते थे। यह स्वयं बहुत अच्छे कवि थे और उनके कलामका अध्ययन करनेपर मालूम होता है कि उनपर ग़ालिबकी विचार-धाराका काफ़ी प्रभाव पड़ा था। यह भी सम्भव है कि ग़ालिबने अपने शागिर्दोंसे उनपर अपनी छाप डाल दी हो। निम्नलिखित शेरोंमें वही दर्द और शोख़ी है—

रुख़सते अर्ज़ेहाल क्या माँगूँ।
कह न बैठें कहीं कि रुख़सत हो।

× ×

सच है आपने वादेका पास था ख़्वाबमें,
'नाज़िम' मुझको नींद न आई तमाम रात।

× ×

शराबो साक़िया मशरिक़से काम रख नाज़िम,
किसे ख़बर है कि अंजामेकार क्या होगा ?

× ×

किस किसका फ़र्ज़ें रश्क कि इस राहगुज़रमें
हर ज़र्रा मुझे दीदए-बीना नज़र आया।

× ×

शबिस्तानोंमें रहो, बाग़ोंमें खेलो, मुझको क्यों पूछो,
कि रातें किस तरह कटती हैं दिन क्योंकर गुज़रते हैं ?

× ×

जिसको मंज़ूर है आलमका परीशाँ रखना,
उसको क्या काम पड़ा है कि सँवारे गेसू।

× ×

२१ एप्रिल १८६५ को नवाब मुहम्मद यूसुफ़ अलीख़ाँका कार्बंकल (सर्तान) से देहान्त हो गया। इनको काफ़ी चोट लगी। नवाब यूसुफ़ अलीख़ाँकी जगह उनके ज्येष्ठ पुत्र नवाब कल्बअली गद्दीपर बैठे। उनसे मिलनेके लिए ७ अक्तूबर १८६५ को दिल्लीसे चलकर १२ अक्तूबरको वह रामपुर पहुँचे। दोनों बच्चे इस बार भी साथ थे। अपने पिताकी भाँति ही कल्बअलीख़ाँने उनका सम्मान किया। बर्नेकी कोठी ठहरनेके लिए दी गयी। २२ दिसम्बर को बच्चे लौट गये। २८ दिसम्बरको मिर्ज़ा भी दिल्लीके लिए रवाना हुए। उन दिनों काफ़ी वर्षा हो गयी थी रामगंगा बढ़ी हुई थी। दरियापर किश्तियोंका अस्थायी पुल था। ज्योंही इनकी पालकी नदीके उस पार पहुँची है कि एक ओरके रेलेमें वह पुल बह गया। अब यह हालत हुई कि साथी नौकर सामान एक किनारेपर रह गये और यह अकेले दूसरे किनारे। गिरते-पड़ते मुश्किलसे मुरादाबादकी सरायमें पहुँचे और एक मकानमें जो

रामपुरकी दूसरी यात्रा

इनके साथ था रात बिता दी। बुढ़ापा दुर्बलता दिसम्बरकी कड़ाकेकी सर्दी उसपर वर्षा पासमें पर्याप्त कपड़े नहीं बीमार पड़ गये। मझकी मुख्य मौ० मुहम्मद हसनखाँ सदरुस्सुदूर, को खबर मिली तो वह इन्हें अपने यहाँ उठवा ले गये और उनकी यथोचित चिकित्सा और परिचर्याकी व्यवस्था की। यहीं नवाब शेफ़्तासे भेंट हुई जो रामपुर जा रहे थे। शेफ़्ताने रामपुर पहुँचकर नवाबसे ज़िक्र किया। उन्होंने तुरन्त एक खास आदमी-द्वारा मिर्ज़ाको ख़त भेजा कि अगर तबीयत ज़्यादा ख़राब हो और आप पूरी सेहत हो जानेतक मुरादाबाद ठहरनेका इरादा रखते हों तो रामपुर तशरीफ़ ले आइए। यहाँ चिकित्साका उपयुक्त प्रबन्ध हो जायगा।

परन्तु नवाबका पत्र पहुँचनेके पूर्व ही तबीयत सँभलनेपर वह रवाना हो चुके थे और ८ जनवरी १८६६ को दिल्ली पहुँच गये।

रामपुरमें इनका आदर-सत्कार तो खूब हुआ पर जिस मतलबसे यह रामपुर गये थे वह पूरा न हुआ। बात यह थी कि जो क़र्ज़ इनपर चढ़ गया था उससे मुक्ति तभी हो सकती थी जब कहींसे एक मुश्त बड़ी रक़म मिलती। रामपुरके अलावा कहीं औरसे इन्हें उम्मीद न थी। इसीलिए रामपुर गये थे जैसा कि 'तुफ़्ता' को रामपुरसे लिखे इनके एक पत्रके निम्नलिखित अंशसे प्रकट होता है।*

'मैं नज़्मकी दाद और नस्रका सिला माँगने नहीं आया। भीख माँगने आया हूँ। रोटी अपनी गिरहसे नहीं खाता सरकारसे मिलती है। क़ज़े-एहमत मेरी क़िस्मत और मनाइमकी हिम्मत। नवाब साहब अज़रूए सूरत बड़े मुतवस्सिम और एतबारे अख़्लाक़ आयते रहमत हैं तमाम ईंटके तहसीलदार हैं। जो रक़म हमारे क़र्ज़की कुछ लिखा जाता है उसके पटनेमें देर नहीं लगती। एक लाख कई हज़ार रुपये ख़ास रामपुरका

---

*उर्दू-ए-मुअल्ला पृ० ७१।

भाई नवाब ज़ियाउद्दीनख़ाँ ग़ालिबके प्रशंसकों एवं शागिर्दोंमें थे । इलाहाबाद के ख़ाँबहादुर मुंशी गुलाम ग़ौस 'बेख़बर' 'क़ातए बुरहान' के मामलेमें मिर्ज़ासे सहमत न थे लेकिन उनकी काव्य-प्रतिभाके क़ायल थे । पंजाबमें तो उनकी पुस्तक 'दस्तंबू' बहुत लोकप्रिय हुई और वहाँसे कई प्रतियोंकी बड़ी माँग थी । लोग इनके दर्शनोंको आने लगे थे ।

इस ज़मानेमें शाह ग़ौस क़लन्दर नामक एक विद्वान् सूफ़ीसे भी इनकी मित्रता हो गयी थी । यह शाह साहब भी मिर्ज़ासे मिलने आते थे । शाह साहबकी किताब 'तज़किरा-ए-ग़ौसिया' में ग़ालिबकी कई मुलाक़ातोंका ज़िक्र है और उससे ग़ालिबके जीवन एवं स्वभावपर विशेष प्रकाश पड़ता है ।

शाह ग़ौससे घनिष्ठता

इस तज़किरेमें शाह साहब लिखते हैं—

'एक रोज़ हम मिर्ज़ा नौशाके मकानपर गये । निहायत ख़ुलूसे एख़लाक़से मिले । कमरेसे उठ बाहर ले गये और हमारा हाल दरियाफ़्त किया । हमने कहा—मिर्ज़ा साहब हमको आपका एक शेर बहुत ही पसन्द है । ख़ुसूसन यह शेर—

तू न क़ातिल हो कोई और ही हो
तेरे कूचे की शहादत ही सही ।

कहा—साहब ! यह शेर मेरा नहीं किसी उस्तादका है । फ़िलहक़ीक़त निहायत ही अच्छा है । उसदिनसे मिर्ज़ा साहबने यह दस्तूर कर लिया कि तीसरे दिन पीलगुज मसजिदमें हमसे मिलनेको आते और एक वक़्त खानेका साथ करते । हरचंद हमने मना किया कि यह तकलीफ़ न कीजिए मगर वह कब मानते थे । हमने खानेके लिए कहा तो कहने लगे कि मैं इस क़ाबिल नहीं हूँ मयख़्वार रूसियाह, गुनहगार मुझको आपके साथ खाते हुए शर्म आती है । हमने बहुत इसरार किया तो अलग तश्तरीमें लेकर खाया । उनके मिज़ाजमें बड़ी नरमी और फ़रोतनी थी ।

इसी किताबमें लिखा है—'एक रोज़का ज़िक्र है कि मिर्ज़ा रजबअली बेग 'सरूर' मुसन्निफ़ 'फ़िसानए अजायब' लखनऊसे आये। मिर्ज़ा नौशासे मिले। अस्नाए गुफ़्तगूमें पूछा—मिर्ज़ासाहब उर्दू ज़बान किस किताबकी उम्दा है?' यह—बात दरयाफ़्तकी। मिर्ज़ा रजबअली बोले—'फ़िसानए अजायबकी कैसी है?' मिर्ज़ा बेसाख़्ता बोल उठे—'अजी लाहौल विला क़ूवत! इसमें लुत्फ़ेज़बान कहाँ—एक तुकबन्दी और भठियारख़ाना जमा है।' उस वक़्त तक मिर्ज़ा नौशाको यह ख़बर न थी कि यही मिर्ज़ा सरूर हैं। जब चले गये तब हाल मालूम हुआ। बहुत अफ़सोस किया और कहा कि 'ज़ालिमो! पहिलेसे क्यों न कहा?' दूसरे दिन मिर्ज़ा नौशा हमारे पास आये यह क़िस्सा सुनाया और कहा कि यह अमर मुझसे नादानिस्तगीमें हो गया है, आइए आज उसके मकानपर चलें और कलकी मुकाफ़ात कर आयें। हम उनके हमराह हो लिये और मिर्ज़ा सरूरके क़यामगाहपर पहुँचे। मिज़ाजपुर्सीके बाद मिर्ज़ासाहबने इबारत आराईका ज़िक्र छेड़ा और हमारी तरफ़ मुख़ातिब होकर बोले—'जनाब मौलवी साहब! रातमें मैंने 'फ़िसाना अजायब'को बग़ौर देखा तो उसकी ख़ूबिए इबारत और रंगीनीका क्या बयान करूँ। निहायत ही फ़सीह व बलीग़ इबारत है। मेरे क़यासमें तो न ऐसी उम्दा नस्र पहिले हुई न आगे होगी और क्योंकर हो? इसका मुसन्निफ़ अपना जवाब नहीं रखता।' ग़र्ज़ इस क़िस्मकी बहुत-सी बातें बनाईं। अपनी ख़ाकसारी और उनकी तारीफ़ करके मिर्ज़ा सरूरको निहायत मसरूर किया। दूसरे दिन उनकी दावत की और हमको भी बुलाया। उस वक़्त भी 'सरूर' की बहुत तारीफ़ की। मिर्ज़ासाहबका मज़हब यह था कि दिलआज़ारी बड़ा गुनाह है।

उर्दू किस किताबकी अच्छी है?

'एक दिन हमने मिर्ज़ा ग़ालिबसे पूछा कि तुमको किसीसे मुहब्बत भी है। कहा कि हाँ हज़रत अली मुर्तज़ासे। फिर हमने पूछा कि आपसे? हमने कहा कि बाबू साहब आप तो मुग़ल बच्चः होकर अली-

मुर्दनाका दम भरें और हम उनकी औकात कहलायें और मुहब्बत न रखें क्या यह बात आपके ख़यालमें आ सकती है ? *

× × ×

जहाँ एक ओर इनकी प्रसिद्धि होती गयी और इनके प्रशंसकों एवं अनुयायियोंकी संख्या बढ़ती गयी वहाँ उसके फलस्वरूप अनेक संघर्ष एवं विरोध भी हुए । १८५८ के बादका समय इनके उत्कर्षका मध्याह्न था । आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी तो बुरी भी न थी । दिल्लीमें शान्ति स्थापित हो गयी थी पर वह पुराना रंग अब न था । एक सन्नाटा-सा था दोस्त अहबाब बिखर गए थे । ग़दरके दिनोंका आत्म-चरित 'दस्तंबू' भी ख़त्म कर चुके थे । किताबें और अन्य वस्तुएँ पहले ही नष्ट हो चुकी या लुट चुकी थीं । इसलिए एकान्तमें मिर्ज़ा फ़ारसी एवं अरबी शब्दों एवं धातुओंपर विचार किया करते थे । इस समय उनके पास दो ही अच्छी किताबें थीं—'बुरहाने क़ातेअ' जो फ़ारसीका शब्दकोष था दूसरी दसातीर जिसके लेखक मुहम्मद हुसैनके पूर्वज दकनसे आए थे यद्यपि वह स्वयं हिन्दुस्तानमें पैदा हुए थे इसीसे वह दकनी कहलाते थे । पढ़ते-पढ़ते इन्होंने बुरहाने क़ातेअका गहरा अध्ययन करना शुरू किया । उसमें उन्हें अनेक त्रुटियाँ दिखाई पड़ीं शब्दोंके अर्थ एवं धातुओंकी ग़लतियाँ मिलीं तरीक़ए बयान अक्सर भोंडा एवं कोषविद्याके विरुद्ध पाया । जो त्रुटियाँ दिखाई पड़ीं उन्हें वह लिखते गये । एक किताब बन गयी जिसका नाम 'क़ातेअ बुरहान' रखा गया । § यह १८५९ के आरंभमें लिखी गयी और १८६१

'बुरहाने क़ातेअ' का संघर्ष

* 'आसारे ग़ालिब' (शेख मुहम्मद इकराम) पृ० १६४-१६५

§ साहब आलम मारहरवीको पत्रमें लिखते हैं— 'इन दरमाँदगीके दिनोंमें 'बुरहाने क़ातेअ' मेरे पास थी । इसको मैं देखा करता था । हज़ारहा लुग़त ग़लत हज़ारहा बयान पूच हज़ारहा पोच मैंने सौ दो सौ लुग़तके असमात लिखकर एक मजमूआ बनाया है और 'क़ातेअ बुरहान' इसका नाम रखा है ।"

मतबूअरके बाद छपी। * इसके ३-४ साल बाद मिर्ज़ाने दूसरा एडीशन दुरफ्शे कावियानीके नामसे छपवाया जिसकी एक प्रति ब्रिटिश म्यूज़ियमके पुस्तकालयमें मौजूद है। इस पुस्तकमें मिर्ज़ाकी स्वतंत्र मेधा एवं विवेचना शक्तिके दर्शन होते हैं। वह परम्परा या अगलोंके विवेक सामने सिर न झुकाते थे बल्कि हर वस्तुकी समीक्षा करते थे। पुस्तकमें लिखा भी था—'यह न समझा करो कि अगले जो लिख गये वह सब हक़ है। क्या अगले अहमक़ नहीं पैदा होते थे?

विरोधका बवण्डर

'क़ातए-बुरहान' के छपते ही एक तहलका मच गया। साहित्यकी भूमि मल्ल-भूमि बन गयी। उसके प्रकाशित होते ही पक्ष-विपक्षमें किताबें छपने लगीं। विरोधमें ज़्यादा निकलीं। सबसे पहिली किताब सैयद सआदत अली (भू० पू० मीरमुंशी राजपूताना रेज़ीडेंसी) की 'मोहरिक़ क़ातए-बुरहान' थी। यह ख़ासतौरसे ही लिखी गयी थी। ९६ पृष्ठोंकी थी और अहमदी [illegible] छापाखाना शाहदरामें छपी थी। उसके जवाबमें ३ पुस्तिकाएँ निकलीं—१ दाफ़ए हिज़ियाँ (फ़ारसी) २ लताइफ़ ग़ैबी (उर्दू) ३ सवालाते अब्दुल करीम (उर्दू)। 'दाफ़ए हिज़ियाँ' के लेखक मी नजफ़अली ख़ाँ थे। यह २८ पृष्ठोंकी एक पुस्तिका है और १८६५ में अकमलुल मतावा देहलीसे छपी थी। नजफ़अली झज्जरके क़ाज़ी ख़ानदानमेंसे थे और सैयद मुहम्मद अज़ीमुद्दीनके पुत्र थे। इनकी गणना उस कालके अरबी-फ़ारसीके विद्वानोंमें की जाती है। दूसरी पुस्तक 'लताइफ़ ग़ैबी' के लेखक मियाँदाद

* मौलाना अल्ताफ़हुसेन हालीके कथनानुसार १८६ मे पहिली बार और १८६६ मे दुरफ्शे कावियानीके नामसे दूसरी बार छपी।

ईरानमें काव नामका एक लुहार था जिसने अपने लट्ठेमें अपनी धौंकनी बाँधी थी और जिसके द्वारा उसने जनताको एकत्र करके ज़ालिमी राज्यको नष्ट किया था। सामान्य अर्थ विद्रोहका झण्डा।

की सम्माह थे। यह ४१ पृष्ठोंकी पुस्तिका है। जिससे मालूम हुआ है कि यह स्वयं गालिबकी लिखी हुई है। यह १८६४ में अकमलुल मतावअमें छपी थी और मूल्य ८) प्रति था। तीसरी सवालाते अब्दुलकरीम जरासी (८ पृष्ठ की) पुस्तिका है। §

चौथी किताब जो इस सम्बन्धमें लिखी गयी 'सातअ बुरहान' (फारसी) है। इसके लेखक मीरजा रहीम बेग 'रहीम' मेरठी थे। यह १७४ पृष्ठोंकी पुस्तक है और १८६७ ई० में मत्बा हाशमी मेरठमें छपी थी। रहीम बेग विद्वान् और उर्दू-फारसीके कवि थे। इस पुस्तक सातअ बुरहान' के जवाबमें गालिबने स्वयं १६ पृष्ठोंका 'नामये गालिब' लिखा जो अगस्त १८६५ में मत्बा मोहम्मदी देहलीमें छपा। मिर्जाने इसकी ५ प्रतियाँ नवाब रामपुरको भेजी थीं। १ एवं १७ अक्तूबर १८६५ के अवध अखबारमें भी इसका प्रकाशन हुआ था।

'कातअ बुरहान'के जवाबमें दो पुस्तकें और लिखी गयीं—

१ कातअ-उल-कातअ'—के अमीन उद्दीन 'अमीन'। यह १८६५ में लिखी गयी और १८६७ में मत्बा मुस्तफाई देहलीमें छपी। इसमें २९८ पृष्ठ हैं। सच पूछें तो कातअ बुरहानके जवाबमें लिखी यही पहिली किताब है। 'मोहरिक कातअ बुरहान'में भी इसका हवाला दिया गया है।

२ मवय्यदे बुरहान—मौ० आगा अहमदअली अहमद (अध्यापक फारसी मदरसा आलिया कलकत्ता)। इनके पूर्वज इस्फहाँके रहनेवाले थे। यह बड़ा विवेचनापूर्ण ग्रन्थ है। इसमें ४६८ पृष्ठ हैं तथा ७ पृष्ठोंकी

---

§ उर्दू मासिक 'आजकल' (फरवरी १९५१) में भी मालिकरामने लिखा है कि यह पुस्तक भी गालिबकी ही लिखी है। कमसे कम उसकी रचनामें उनका हाथ तो स्पष्ट है।

बीस्यतमें अमीनउद्दीनसे बढ़कर फ़ारसीयतमें बराबर फ़हम व नासमझोंमें कमतर जितने अल्फ़ाज़[1] तज़लील[2]के हैं चुन-चुनकर मेरे वास्ते इस्तेमाल किये और यह न समझा कि ग़ालिब अमर आबिद नहीं शायर नहीं शाकिर मराद्ध व अमारत[3]में एक पाया रखता है साहबे इस्तेशाम है आली ख़ानदान है। उमराए हिन्द रऊसाए हिन्द महाराजगाने हिन्द सब उसको जानते हैं, रईसज़ादगाने सरकारे अंग्रेज़ीमें गिना जाता है, बादशाह की सरकारसे नजमुद्दौलाका ख़िताब है, गवर्नमेण्टके दफ़्तरमें 'ख़ाँ साहब बिसियार मेहरबान दोस्तान' मक्तूब है जिसको गवर्नमेण्ट ख़ाँ साहब लिखती है उसको सिड़ी और कुत्ता और गधा क्योंकर लिखूँ। फ़िल्हक़ीक़त यह तज़लील बज़ुर्गाने बजुज़ बुग़ाम मुहारजुल्मीका गवर्नमेण्ट बहादुरकी तौहीन और उमराए व रईसे हिन्दकी मुख़ालफ़त है। मेरा क्या बिगड़ा? मौलवीने अपना पाजीपन ज़ाहिर किया मैंने मौलविय्यत अमीन बेदीनको शैतानके हवाले किया और अहमदअलीके अल्फ़ाज़ मज़मूनसे क़तअ नज़र किया और उनके मतालिबे इल्मीका जवाब अपने ज़िम्मे लिया।

'तेगेतेज़'के अलावा मिर्ज़ाने एक तीस शेरका फ़ारसी क़िता भी मुहम्मदसादिक नाम लिखकर भेजा जिसमें उनकी किताबपर प्रभावोत्पादक ढंगसे व्यंग किये हैं। यह अहमदअली ढाकाके रहनेवाले थे पर ईरानी मस्कना दावा करते थे। क़िते में इसपर भी व्यंग है—

> हर कि बीनी बाज़दाने मुफ़्ति ख़ुद आश्नास्त,
> साज़े नुक्ते मातने अबग्दाद बेजा करद अस्त।
> स्वाजारा अज़ इस्फ़हानी ख़ूदने आबा च सूद
> ख़ाकिफ़श दर किश्वरे बंगाल पैदा कर्द अस्त।

---

१ शब्द (लफ़्ज़का बहुवचन)। २ ज़िल्लत अपमान। ३ अमीरी।

इन बातोंसे समझमें आ सकता है कि गालिबकी आलोचनासे साहित्य-जगत्‌में कितनी बड़ी हलचल उठ खड़ी हुई थी। मिर्ज़ा न केवल बुरहाने

विरोधका कारण

क़ातेअके विरोधी थे वरन् किसी भी हिन्दुस्तानी फ़रहंगनवीसके क़ायल न थे। जो लोग इन कोषकारोंके भक्त थे उनका विरोध करना मिर्ज़ाको आवश्यक-सा लगता था। इनके विरोधका कारण यह था कि मिर्ज़ाकी शैली चुटीले व्यंग्यों और कटूक्तियोंसे भरी हुई थी। जगह-जगह प्रतिद्वन्द्वी लेखकका मज़ाक उड़ाया गया है। इससे बुरहाने क़ातेअके पक्षपाती आग-बबूला हो गये। जैसा कि ऐसे तर्कप्रधान साहित्यिक संघर्षोंमें प्राय: होता है दोनों पक्षोंमें ग़लतियाँ थीं। बुरहाने क़ातेअमें ग़लतियाँ थीं तो 'क़ातेअ बुरहान' भी ग़लतियोंसे अछूती न थी। मिर्ज़ाका यह कथन भी कितना हास्यास्पद था कि ईरानी नस्लका होनेपर भी बंगालमें पैदा होनेवाले अहमदअलीको भाषाविद् (अहलेज़बान) न माना जाय और फ़रीदाबादके बाद ईरानका मुँह भी न देखनेवाले ग़ालिबको फ़ारसीभाषातत्त्वज्ञ माना जाय।

मिर्ज़ाके इस किलेके जवाबमें भी अहमदअलीने खूब लिखा लिखा और एक शागिर्द भी अब्दुस समद 'फ़िदा' सिलहटीके नामसे छपाया

हंगामए दिलआशोब

जिसके जवाबमें गालिबके दो शागिर्द मीरन मु बाक़रअली 'बाक़र' और ख़्वाजा सैयद फ़ख़र रहीम 'मुबाह' ने लिखे। बादमें चारों किले 'हंगामए दिलआशोब'के नामसे ११ एप्रिल १८६७को आरा (बिहार) के मुंशी सन्तप्रसादके अपेक्षामें छपे।

अब्दुस समद नज़्म (या अहमद अली)ने इन दोनों किलोंका जवाब

तेग़ेतेज़तर

लिखा और पहिले चारोंके साथ इसे मिलाकर 'तेग़ेतेज़तर' के नामसे १८६७में छपवाया।

इसके बाद मुंशी जवाहर सिंह 'जौहर' लखनऊने एक किला लिखा जिसमें अहमद अलीका समर्थन एवं गालिबका विरोध था। इसपर गालिब

एवं मुख़्तने चौहर और फ़िरा दोनोंके फ़ितोंका एक-एक जवाब लिखा। उधर मीर वाला अलीवस्मने 'अवध अख़बार (२५ जून १८६७)में मिर्ज़ाके कई शेरोंपर एतराज़ किया।* इसका भी जवाब सख़ुनने उर्दू गद्य और नाज़रने फ़ारसी पद्यमें लिखा। मुंशी मुहम्मद अमीर 'अमीर' सब्ज़वारीने ग़ालिबके पक्षमें एक किता 'अवध अख़बार'में छपवाया। इनका संकलन करके 'हंगामए दिल आशोब' हिस्सा दोयमके नामसे सम्पतप्रसादने आगरेसे छपवाया।

पर इन सबमें बेबुनियाद बातें ज़्यादा थीं—कवि-कल्पना थी। मिर्ज़ा

'शमशीर तेज़तर

ग़ालिबने जो एतराज़ 'तेग़तेज़' में किये थे उनका जवाब किसीने न दिया। अहमदअलीने 'शमशीर तेज़तर' में यह यत्न किया। यह ग्रन्थ १८६८में छपा। इसके कुछ समय बाद तो ग़ालिबका देहान्त ही हो गया।

ज़िन्दगी भर कर्ज़दारोंसे इनका पिण्ड नहीं छूटा। बच्चे जितने हुए मर गये। आरिफ़के बेटेको तरह पाला वह भी मर गया। पारिवारिक

शरीरका निरन्तर ह्रास

जीवन कभी सुखी एवं प्रेममय नहीं रहा। मानसिक सन्तुलनकी कमीसे ज़मानेकी शिकायत हमेशा रही। इनका दुःख ही बना रहा कि ज़मानेने कभी हमारी योग्यता और प्रतिभाकी सच्ची क़द्रदानी न की। फिर शराब जो किशोरावस्थामें मुँह लगी वह कभी न छूटी। ग़दरके ज़मानेमें अर्थ-कष्ट उसके बाद पेन्शनकी बन्दी जिल्लत एवं दरबार बन्दीके दुःखसे परेशान रहे। जब इनसे कुछ फ़ुरसत मिली तो 'क़ातए बुरहान' के हंगामेने इनके दिलमें ऐसी

---

* श्री मालिकरामने अपनी पुस्तक 'ज़िक्रे ग़ालिब' में लिखा है कि लखनऊकी दो वेश्याओं—छमनी जान मुस्तरी उर्फ़ मंझू तथा उमराव जान चोहरा उर्फ़ भी छुट्टन—ने भी जो सुशिक्षित कवियित्रियाँ और अच्छी शायिरें थीं इस साहित्यिक-विवादमें भाग लिया था।

उत्तेजना पैदा की कि बेचैन रखा। इन लगातार मुसीबतोंसे इनका स्वास्थ्य गिरता ही गया। खाना-पीना बहुत कम हो गया। बहरे हो गये। दृष्टि-शक्ति कम होती गयी। क़ब्ज़की शिकायत पहिलेसे थी ही। मई १८५८में फ़ालिजका आक्रमण पहिली बार हुआ और बीच-बीचमें बराबर होता था। १८६१में इतने दुर्बल थे कि नवाब रामपुर मु॰ यूसुफ़ अलीने अपने बड़े पुत्र हैदरअलीखाँका निकाह किया और उसमें उन्हें निमन्त्रित किया पर बीमारी एवं दुर्बलताके कारण वहाँ न जा सके।

दिन-दिन तन्दुरुस्ती खराब होती जा रही थी। एक न एक रोग लगे रहते थे। जीवनके उत्तर कालमें खून भी खराब हो गया। इसके कारण चर्मरोग ग्रस्त होते रहते थे। इस चर्मरोगसे उन्हें बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी। एक फोड़ा बैठता न था कि दूसरा तैयार हो जाता। बरसों तक यह सिलसिला रहा। इनके पत्रोंको पढ़नेसे उस समयकी इनकी तकलीफ़ोंका कुछ अनुमान किया जा सकता है। १ मई १८६३के एक पत्रमें लिखते हैं —

चर्मरोगसे कष्ट

'डेढ़ महीना है कि सीधे हाथमें एक फुंसीने फोड़ेकी सूरत पैदा की। फोड़ा पककर फूटा और फूटकर एक ज़ख्म और ज़ख्म एक ग़ार[1] बन गया। हिन्दुस्तानी जर्राहोंका इलाज रहा। बिगड़ता गया। दो महीनेसे काले डाक्टरका इलाज है। सलाइयाँ दौड़ रही हैं नश्तरोंसे गोश्त कट रहा है। बीस दिनसे इफ़ाक़ाकी सूरत नज़र आती है।

पर यह 'इफ़ाक़ा' भी अस्थायी था। एक फोड़ा अच्छा होता कि दूसरे निकल आते। ११ अगस्त १८६३के पत्रमें 'तुफ़्ता' को लिखते हैं —

'एक बरससे अवारिज़े फ़िसादे खून[2] में मुब्तला हूँ। बदन फोड़ोंकी कसरतसे सर्वचिरागाँ हो गया। ताक़तने जवाब दे दिया। दिन-रात लेटा रहता हूँ।

---

१ घाव २ रक्तदोषके रोग।

एक ख़तमें नवाब अनवरउद्दौला 'शफ़क़' को लिखते हैं —

'न दम न खाँसी न मसहाल न फ़ालिज न लक़वा इन सबसे बदतर एक सूरत पुर कुदूरत यानी एहतराकका मर्ज़। मुख़्तसर यह कि सरसे पाँव तक बारह फोड़े हर फोड़ेपर एक ज़ख़्म हर ज़ख़्मपर एक ग़ार। हर रोज़ बेमुबालग़ा तेरह फाये और पावभर मरहम दरकार। नौ-दस महीने बख़ुर्दो-ख़ाब[1] रहा और सबो-रोज़[2] बेताब[3]। रातों मौं पुकार रही है कि अगर कभी आँख लग गयी तो घड़ी ग़ाफ़िल रहा हूँगा कि एक आध फोड़ेमें टीस उठी जाग उठा तड़पा किया फिर सो गया फिर होशयार हो गया।

नवम्बर १८६१में क़ाज़ी अब्दुलजमीलको एक ख़तमें लिखते हैं— 'जितना ख़ून बदनमें था बेमुबालग़ा आधा उसमेंसे पीप होकर निकल गया।

फोड़ोंसे मुक्ति मिली तो १८६२में फ़तक़ (अण्डवृद्धि आँत उतरने) की शिकायत हुई।

लम्बी बीमारी

इन शारीरिक व्याधियोंने पारिवारिक सौख्य एवं दाम्पत्य स्नेहके अभावने ज़िन्दगीको स्वादहीन कर दिया था। जीनेकी भी इच्छा नहीं रह गयी थी। मृत्युकी आकांक्षा करने लगे थे। जून १८६१के एक पत्रमें लिखते हैं —

'सन् १२७७ हिजरीमें मेरा न मरना सिर्फ़ तकज़ीबके वास्ते था। ~ हर रोज़ मर्गे नौ[4]का मज़ा चखता हूँ ... रूह मेरी अब जिस्ममें इस तरह घबराती है जिस तरह ताइर[5] क़फ़स[6]में। कोई शग़ल कोई इख़्तिलात[7] कोई जल्सा कोई मजमा पसन्द नहीं। किताबसे नफ़रत शेरसे नफ़रत जिस्मसे नफ़रत रूहसे नफ़रत। जो कुछ लिखा है बेमुबालग़ा और बयाने वाक़ई है।

---

१ खाने-पीने और नींदसे लाचार, २ रात-दिन ३ बेचैन ४ नवमरण ५ पक्षी ६ पिंजड़ा ७ प्रेम-व्यवहार।

बीमारी इतनी बढ़ी कि १८६४ ई० के शुरूमें कहीं-कहीं इनकी मृत्युका समाचार भी फैल गया। यही बात १८६७ ई० में भी हुई। इसपर १८६५के पत्रमें यह अलाउद्दीनको लिखते हैं—"आलमी पुर्सिशके झगड़ेसे चाहूँ कि अबतक मेरा मरना न सुना मेरी खबर न ली।

जीवनके आखिरी सालोंमें यह बराबर बीमार रहे। एक बीमारी अच्छी होती कि दूसरी हो जाती। कमजोरी बेहद बढ़ती गयी। १२ मई १८६९को भी हबीबउल्लाखाँ 'ज़का'को लिखते हैं—

'मेरे मुहिब्ब मेरे महबूब! तुमको मेरी खबर भी है? आगे नातवाँ[1] था अब नीमजान[2] हूँ। आगे बहरा था अब अंधा हुआ चाहता हूँ। रामपुरके सफ़रका रहआवर्द है। रअ्शा[3] व ज़ोफ़े बसर[4] जहाँ चार सतरें लिखीं उँगलियाँ टेढ़ी हो गयीं हुरूफ़ सूझनेसे रह गये। इकहत्तर बरस जिया बहुत जिया।। अब जिन्दगी बरसोंकी नहीं महीनों और दिनोंकी है।*

१८६९ में गालिब कैसे थे इसकी जानकारी उस जमानेके कई लेखक छोड़ गये हैं। इसी साल (१८६९ई०) 'जल्वए खिज्र'के लेखक सैयद फ़रज़न्द अहमद बिलग्रामी मिर्ज़ासे मिलने दिल्ली आये। इनकी पुस्तकमें गालिबके कई चित्र मिलते हैं जिनसे प्रामाणिक सूचनाएँ मिलती हैं। यह लिखते हैं —

'हज़रतका लिबास उस वक्त यह था—पाजामा सियाह बूटेदार—कलीदार नख़्श सुर्ख़ दुपट्टा बदनमें मिर्ज़ई सर बुलन्द हुआ रंग सुर्ख़ व सफ़ेद मुँहपर दाढ़ी वो मौजूद। आँखें बड़ी कान बड़े हद लम्बा लिखावटकी सूरत पोरवी उँगलियाँ बसबब कसरते बादाके मोटी होकर ऐंठ गयी थीं और यही

बिलग्रामीका चित्र

---

१ दुर्बल क्षीण २ अर्धप्राण मृतप्राय ३ कंपकम्प ४ दृष्टिक्षीणता।
*ऊद-ए-मोअल्ला पृ० २८।

सबब था कि उसमें दिक्कत होती थी। आँखोंमें नूर[1] मौजूद था कानके समाअत[2] में कुछ ख़लल[3] आ गया था।

इस समय उनकी उम्र लगभग सत्तर सालकी थी। स्वास्थ्य गिरता ही गया। 'चलना-फिरना मौकूफ़ हो गया था अक्सर औक़ात पलंगपर पड़े रहते थे सिवा कुछ न रही थी। *

भोजनके विषयमें तो खुद ही ४ दिसम्बर १८६६को मी. हबीबुल्ला खाँ 'ज़का'को एक पत्रमें लिखते हैं —

"इस महीने यानी रजबकी बारहवीं तारीख़से बहत्तरवाँ बरस शुरू हुआ। ग़िज़ा सुबहको सात बादामका शीरा क़न्देके शर्बतके साथ दोपहरको सेर भर गोश्तका गाढ़ा पानी क़रीब शाम कभी-कभी तीन तले हुए कबाब छः घड़ी रात गये पाँच रुपये भर शराब ख़ानासाज़ और इसी क़दर अर्क़े शीर। पेशाबके बोझसे यह हाल कि उठ नहीं सकता और अगर दोनों हाथ टेककर चारपाया बनकर, उठता हूँ तो पिंडलियाँ लरज़ती हैं— दिन भरमें दस-बारह बार और इसी क़दर रात भरमें पेशाबकी हाजत होती है। हाजती पलंगके पास लगी रहती है, उठा पेशाब किया और पड़ रहा। अलबत्ता इत्मीनानसे यह बात है कि उसको बरदाश्त नहीं होता। —बे तकल्लुफ़ नींद आ जाती है। एक सौ साठ रुपयेकी आमद तीन सौ का ख़र्च। हर महीनेमें एक सौ चालीस रुपयेका घाटा कहो ज़िन्दगी दुश्वार है या नहीं। †

'अज़ीज़' द्वारा लिखित विवरण

इन्हीं दिनोंकी बात है कि ख़्वाजा अज़ीज़ लखनवी कश्मीर जाते वक़्त रास्तेमें इनसे मिले थे। उस मिलनका बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन उन्होंने किया है —

---

१ प्रकाश २ श्रवण ३ बाधा, दोष।

* यादगारे ग़ालिब (हाली)।

† उर्दू-ए-मुअल्ला पृ १२।

मिर्ज़ा साहबका मकान पुख़्ता था। एक बड़ा फाटक था जिसमें बग़लमें एक कमरा और कमरेमें एक चारपाई बिछी हुई थी।...उसपर नहीफ़-उल-जुस्सा[1] आदमी गंदुमी रंग अस्सी बरसकी उमर साफ़ा बाँधे दुज़ानू बैठा हुआ—एक मुजल्लिद किताब सीनेपर रखे आँखें गड़ाये हुए पढ़ रहा था। यह मिर्ज़ा ग़ालिब देहलवी हैं...।

'हमने सलाम किया लेकिन बहरे इस क़दर थे कि उनके कान तक आवाज़ न गयी। आख़िर खड़े-खड़े वापस आनेका क़स्द किया कि ग़ालिबने चारपाईकी पट्टीके सहारेसे करवट बदली और हमारी तरफ़ देखा। हमने सलाम किया। बमुश्किल चारपाईसे उतरकर फ़र्शपर बैठे। हमको अपने पास बिठाया। क़लमदान व क़ाग़ज़ सामने रख दिया और कहा—आँखोंसे किसी क़दर सूझता भी है लेकिन कानोंसे बिलकुल सुनाई नहीं देता। जो कुछ मैं पूछूँ उसका जवाब लिख दो। नामोनिशान पूछा।...जब हमने नाम-पता लिखा तो कहा—मुझसे मिलनेके लिए आये हो तो ज़रूर कुछ न कुछ कहते होगे कुछ अपना कलाम भी सुनाओ। हमने कहा—हम तो आपका कलाम ज़बाने-मुबारकसे सुननेकी ग़रज़से आये थे। बहुत देरतक अपना कलाम सुनाया किये। फिर इसरार किया कि तुम भी कुछ सुनाओ। हमने यह मतला सुनाया—

महे मिसलमस्त दारा अज़ रश्के महताबे कि मन दारम।
शुक्ना फ़ारसद अज़ हसरते ख़्वाबे कि मन दारम।

बहुत ख़ुश और मतलेसे इस मतलेको दुहराया और हमसे ज़्यादा तारीफ़ की। फिर आदमीसे कहा—खाना लाओ। हम समझे ख़्वाहमख़्वाह मेहमानदारी तकलीफ़ कर रहे हैं। लिख दिया कि हम सिर्फ़ थोड़ी देरके लिए देहली उतर पड़े थे। रेलका वक़्त बिलकुल क़रीब है और गाड़ी सरायमें खड़ी है, असबाब बँधा हुआ रखा है। फ़क़त सरकार आपसे मिलने

---

१ क्षीणकाय।

आये थे। अब इजाज़त चाहते हैं। कहने लगे— आपकी ग़ायत[1] इस तकलीफ़से यह थी कि मेरी सूरत और कैफ़ीयत मुलाहिज़ा फ़र्मायें। ज़ोफ़[2] की हालत देखी कि उठना-बैठना दुश्वार है, बसारत[3] की हालत देखी कि आदमीको पहचानता नहीं हूँ, समाअत[4] की कैफ़ीयत मुलाहिज़ा की कि कोई कितना चीख़े मुझे ख़बर नहीं होती। ग़ज़ल पढ़नेका अन्दाज़ मुलाहिज़ा किया कलाम सुना। अब एक बात बाक़ी रह गयी है कि मैं क्या खाता हूँ। इसको भी मुलाहिज़ा करते जाइए। इतनेमें खाना आया। दो फुल्के और तश्तरीमें भुना हुआ गोश्त जिसमें कुछ मेवा भी पड़ा हुआ था। फुल्केका बारीक पर्त लेकर दो-चार नेवाले बमुश्किल खाये और खाना ख़त्म किया। तअज्जुब होता है कि इस मिक़दारे ख़ूराकपर क्योंकर बसर करते हैं।

आर्थिक चिन्ताएँ

इन दिनों आर्थिक चिन्तायें भी बढ़ रही थीं। जानते थे कि ज़िन्दगीका चिराग़ बुझने ही वाला है इसलिए कोशाँ थे कि मिर्ज़ा बाक़रअली व हुसेन अली ताकि बच्चोंके रामपुर दरबारसे मिल्क हो जायें। बाक़रअलीकी शादी तो पहिले ही हो चुकी थी हुसेन अलीकी मँगनी भी तय हो चुकी थी हाँ शादी न हुई थी। ससुराल वाले शादीके लिए जल्दी कर रहे थे। इनके पास तो रोज़के ख़र्चेके लिए ही कुछ न था। क़र्ज़ भी न मिलता था। इसलिए जिनाब नवाब रामपुर की ख़िदमतमें अर्ज़ किया कि आप कुछ रक़म इनायत फ़र्मायें ताकि यह काम सरअंजाम पावे और बूढ़े फ़क़ीरकी ज़िन्दगीमें ख़त्म हो जावे। मिर्ज़ासे पूछा गया कि कितना रुपया चाहिए। मिर्ज़ाने लिखा कि बाक़रअलीकी भी शादीपर ढाई हज़ार ख़र्च आये थे। ढाई हज़ारमें शादी अच्छी हो जायगी लेकिन यह भी साथ अर्ज़ करता हूँ कि मेरा हक़्क़े ख़िदमत इतना नहीं कि इस क़दर माँग सकूँ। जो कुछ दोगे उसमें शादी कर दूँगा।"

१ उद्देश्य २. दुर्बलता ३ दृष्टिशक्ति ४ श्रवणशक्ति।

पर पता नहीं क्या कारण हुआ कि यह तजवीज़ पूरी न हुई। शादी तो टल ही गयी पर क़र्ज़दारोंने इनको बहुत तंग किया और नालिशकी धमकियाँ दीं। इसलिए हुसेनअलीख़ाँकी शादीकी माँग भूलकर नवाबसे फिर निवेदन किया कि ऋण-दाताओंसे तो पल्ला छुड़ा दें। १६ नवम्बर १८६८ के पत्रमें नवाबसाहबको लिखते हैं—

हाल मेरा तबाह होते-होते अब यह नौबत पहुँची कि अबकी तनख़ाह से ५४ रुपये बचे। 'मिनजुमला आठ सौ रुपये हों तो मेरी आबरू बचती है। नाचार हुसेन अलीख़ाँकी शादी और उसके नामकी तनख़ाहसे क़िता नज़र की। अब इस बाबमें अर्ज़ करूँ क्या मजाल? कहीं न कहूँगा। आठसौ रुपये मुझको और दीजिए। शादी कैसी? मेरी आबरू बच जाय तो ग़नीमत है।

इस प्रार्थनापत्रके जवाबमें रामपुर दरबारकी ओरसे नवाब मिर्ज़ा 'दाग़' ने मिर्ज़ाको लिखा कि "हुज़ूरने तुम्हारे क़र्ज़के अदा करनेकी ग़ौर की है और मिक़दार क़र्ज़ पूछी है।" मिर्ज़ा ग़ालिबने दोबारा क़र्ज़का परिमाण लिखा और नवाब साहबको भी याद दिलाई लेकिन कोई नतीजा इस सम्बन्धमें न निकला और मिर्ज़ाकी यह इच्छा भी अधूरी ही रही।

रामपुर दरबारसे निराशा

इस प्रकार एक ओर आर्थिक चिन्ताएँ और परीशानियाँ दूसरी ओर दिन-दिन बढ़ती हुई कमज़ोरी बिलकुल निढाल हो गये। इस ज़मानेमें कहीं बाहर न जाते थे दिन-रात पलँगपर पड़े रहते थे। कोई विशेष व्यक्ति आ जाता तो मुश्किलसे उठ बैठते थे अन्यथा लेटे रहते थे। लिख कर बातचीत करते थे पर हाथमें क़लम पकड़ने और लिखनेमें उँगलियोंमें तकलीफ़ होने लगी तो ख़तोंका लिखना भी बन्द कर दिया। अगर कोई मिलनेवाला आ जाता तो बाहरके दोस्तोंके ख़तोंका जवाब बोलकर उससे लिखवा देते। फ़रवरी १८६७ में देहलीके दो अख़बारों (अकमलुल

अख़बार और अशरफुल अख़बार) में वक्तव्य छपवाया कि 'जहाँतक हो सका मैंने दोस्तोंकी ख़िदमत की उनके ख़तोंका जवाब देता रहा और अशआर पर इस्लाह देनेसे दरेग़ नहीं किया लेकिन अब मेरी सेहत इतनी गिर गयी है कि किसी तरह इस मेहनतकी मुतहम्मिल[1] नहीं हो सकती। इसलिए दोस्त-अहबाबसे दरख़्वास्त है कि मुझे ख़तोंके जवाब और अशआरकी इस्लाहसे मुआफ़ रखें।' फिर भी ख़त आते रहे और वह अन्त तक जवाब लिखवाते रहे।

मृत्युकी आकांक्षा

मानसिक उलझनों शारीरिक कष्टों और आर्थिक चिन्ताओंके कारण जीवनके अन्तिम वर्षोंमें वह प्रायः मृत्युकी आकांक्षा किया करते थे। हर साल अपनी मृत्यु-तिथि निकालते। पर विनोद वृत्ति अन्त तक बनी रही। एक बार जब मृत्यु तिथिका ज़िक्र एक शिष्यसे किया तो उसने कहा—'इंशा अल्ला यह तारीख़ भी ग़लत साबित होगी।' इसपर मिर्ज़ा बोले—'देखो साहब! तुम ऐसी फ़ाल मुँहसे न निकालो। अगर यह तारीख़ ग़लत साबित हुई तो मैं सिर फोड़कर मर जाऊँगा।

एक बार दिल्लीमें महामारी फैली। मीर मेहदीहसन 'मजरूह'ने अपने ख़तमें इसका ज़िक्र किया तो उसके जवाबमें लिखते हैं—'भई कैसी वबा? जब एक सत्तर बरसके बुड्ढे और सत्तर बरसकी बुढ़ियाको न मार सकी।

धीरे-धीरे पर निश्चित गतिसे मौत तो निकट आती ही जा रही थी। अन्तिम दिनोंमें अक्सर अपना यह मिसरा पढ़ा करते थे—

ए मर्गे नागहाँ! तुझे क्या इन्तज़ार है?

और बार-बार दोहराते—

दमे वापसी बर सरे राह है
अज़ीज़ो! अब अल्लाह ही अल्लाह है।

---

१ बोझ उठाने योग्य समर्थ।

उसकी माँ बुआ बेगमने कहा—'सो रही है, ज्यूँही जगती है भेजती हूँ।' कल्लूने आकर यही बात कह दी। इसपर बोले—'बहुत अच्छा। जब वह आयेगी हम खाना खायेंगे।' पर उसके बाद ही पलंगपर सिर रखकर बेहोश हो गये। हकीम महमूद ख़ाँ और हकीम अहसन उल्लाख़ाँको ख़बर दी गयी। उन्होंने आकर जाँच की और बतलाया—दिमाग़पर फ़ालिज गिरा है। बहुत यत्न किया गया पर सब बेकार हुआ। फिर उन्हें होश न आया और उसी हालतमें अगले दिन १५ फ़रवरी १८६९ ई० दोपहर ढले इनका दम टूट गया। एक ऐसी प्रतिभाका अन्त हो गया जिसने इस देशमें फ़ारसी काव्यको उच्चता प्रदान की और उर्दू गद्य-पद्यको परम्पराकी शृंखलाओंसे मुक्त कर एक नये साँचेमें ढाला।

अन्तिम क्रिया

मृत्युके बाद इनके मित्रोंमें इस बातको लेकर मतभेद हुआ कि शीया या सुन्नी किस विधिसे इनका मृतक संस्कार हो। ग़ालिब शीया थे इसमें किसीको सन्देहकी गुंजाइश न थी पर नवाब ज़ियाउद्दीन और हकीम महमूदख़ाँने सुन्नी विधिसे ही सब क्रिया-कर्म कराया और जिस लोहारू ख़ानदानने १८७० ई० में समाचार-पत्रोंमें छपवाया था कि ग़ालिबसे हमारा बहुत दूरका सम्बन्ध है उसी ख़ानदानके नवाब ज़ियाउद्दीनने सम्पूर्ण मृतक संस्कार करवाया और उनके शवको इज़्ज़तके साथ अपने वंशके क़ब्रिस्तान (जो चौसठ खंभाके पास है) में अपने चचाके पास जगह दी।

इनकी मृत्युपर बहुतोंने मर्सिये लिखे जिनमें हाली, मजरूह और सालिकके मर्सिये मशहूर हैं। इनके समाधिप्रस्तरपर मजरूहका निम्नलिखित क़िता खुदा हुआ है—

या हय्यि या क़य्यूम
रश्क उर्फ़ी व फ़ख़्रे तालिब मर्द
असदउल्ला ख़ाने ग़ालिब मर्द

में उनका दिल फिर कभी न उभरा। इस घटनासे व्यथित होकर उन्होंने जो ग़ज़ल लिखी उसमें उनकी वेदना ही साकार हो गयी है। कुछ शेर देखिए—

> लाज़िम था कि देखो मेरा रस्ता कोई दिन और।
> तन्हा गये क्यों अब रहो तन्हा कोई दिन और।
> आये हो कल और आज ही कहते हो कि जाऊँ
> माना कि नहीं आजसे अच्छा कोई दिन और।
> जाते हुए कहते हो क़यामतको मिलेंगे
> क्या ख़ूब ? क़यामतका है गोया कोई दिन और।

इन आरिफ़ साहबकी दो शादियाँ हुई थीं। पहला ब्याह नवाब शम्सुद्दीन खाँकी छोटी बहिन नवाब बेगमसे हुआ था। शादीके दो वर्ष बाद एकलौती कन्या पैदा होनेसे प्रसूतिकालमें ही उनकी मृत्यु हो गयी। दूसरा विवाह मिर्ज़ा मुहम्मद अली बेग मुख़्तारकी कन्या बुन्नी बेगम उर्फ़ नवाब दूल्हनसे हुआ। इस ब्याहसे उन्हें दो पुत्र हुए—बाक़र अली खाँ और हुसैन अली खाँ। बुन्नी बेगमकी मृत्यु आरिफ़की मृत्युके ३–४ मास पूर्व [illegible]—दर्दे गुर्देसे हुई। आरिफ़ इन बीवीको बहुत चाहते थे और उसकी मृत्युसे उन पर जो चोट लगी वह भी उनके असामयिक निधनका कारण थी। माँकी मृत्युपर दोनों बच्चे अपनी दादी बुनियादी बेगमके पास रहने लगे। पर आरिफ़के मरनेपर ग़ालिब उनके छोटे लड़के हुसैन अली खाँ (जो केवल दो वर्षके थे) को ले आये और उसको अपने पास रखा। बादमें बुनियादी बेगमकी भी मृत्यु हो गयी और आरिफ़के बड़े पुत्र बाक़र अली खाँ भी मिर्ज़ाके पास आ गये। इन दोनों बच्चोंका ग़ालिब बड़ा दुलार करते थे।

बाक़र अली जब १७ सालके हुए मिर्ज़ाने उनकी शादी नवाब ज़िया-उद्दीन अहमदकी पुत्री मोअज़्ज़म ज़मानी बेगम उर्फ़ बुग्गा बेगमके साथ (जो १२ सालकी थीं) कर दी। यह बुग्गा बेगम दीर्घजीवी हुईं और

१ मई १९४५को ९१ वर्षकी आयुमें मरीं। इनके पाँच सन्तानें हुईं—पाँचों लड़कियाँ। बड़ी नवाब बेगम ९ वर्षकी आयुमें ही चल बसीं। इसके बाद सुल्तान बेगम १८६५में पैदा हुईं। इन्हें ग़ालिब बेहद चाहते थे और प्यारसे 'चौथन बेगम' कहते थे। मृत्युके पूर्व होश आनेपर, खाना खानेके लिए इन्हींका स्मरण किया था। बादमें इनकी शादी नवाब ज़ियाउद्दीन अहमद ख़ाँके पोते मीरज़ा शुजाउद्दीन अहमद ख़ाँ 'ताबाँ'के साथ हुई। इन्होंने भी लम्बी उम्र पाई और ८९ वर्षकी उम्रमें अभी कुछ समय पहिले (२९ मार्च १९५४ ई०) इनकी मृत्यु दिल्लीमें हुई। तीसरी अतिया सुल्तान बेगमकी शादी मीरज़ा नसीरुद्दीन अहमद ख़ाँसे हुई थी। चौथी रशिया बेगम डेढ़ सालकी उम्रमें ही मर गयी थीं। पाँचवीं और सबसे छोटी रज़िया सुल्तान बेगम उर्फ़ अम्मन हैं जिनकी शादी वहीद अहमदसे हुई। यह शायद अब भी ज़िन्दा हैं।

बाक़र अली और उनकी सन्तति

मिर्ज़ा बाक़रअली फ़ारसी एवं उर्दू दोनोंमें कविता करते थे। फ़ारसीमें 'बाक़र' एवं उर्दूमें 'कामिल' उपनाम था। पहिले अलवरमें नौकर हुए। बादमें नौकरी छोड़कर दिल्लीमें ही आ रहे और लोहेका व्यापार करने लगे। भरी जवानीमें जब सिर्फ़ साढ़े अट्ठाईस सालके थे सन रोगसे २९ मई १८७९ ई० को इनका देहावसान हो गया।

हुसेनअली

हुसेन अली ख़ाँ १८५ ई० में पैदा हुए थे। जैसा पहिले लिखा जा चुका है ग़ालिब इन्हें बहुत चाहते थे। इनकी शादी ग़ालिबके जीवन-काल में ही तय हो चुकी थी पर उसका प्रबन्ध न हो सकनेके कारण न हो सकी। बादमें सुल्तान बेगम या दूल्हे-बड़ी बेगमसे हुई।*

---

*लोहारूवाले नवाब अहमद बख़्श ख़ाँके छोटे भाई थे नबीबख़्श। इनके पोते मिर्ज़ा अकबर अलीसे जेनरल सर डेविड आक्टर लूनीकी [illegible]

यह भी यहू फ़ारसीमें कविता करते थे और रामपुरमें मुक़ीम हो गये थे। बादमें नौकरी छोड़ दिल्ली आ गये। बड़े भाईकी मृत्युका ऐसा सदमा हुआ कि स्वयं बीमार रहने लगे और ७ सितम्बर १८८ को १ सालकी उम्रमें चल बसे।

उमराव बेगम

मिर्ज़ाकी मृत्युके बाद उनकी विधवा उमराव बेगमपर जो विपत्तियाँ आई होंगी उसकी कल्पना की जा सकती है। अंग्रेजी सरकारसे मिलने वाली पेन्शन रामपुरका वज़ीफ़ा सब बन्द हो गया। क़र्ज़दारोंकी तङ्गीसे अन्ततक ग़ालिब परीशान रहे। अब यह बोझ भी इनपर पड़ा। हम पहिले लिख चुके हैं कि मृत्युके समय मिर्ज़ापर ८) क़र्ज़ थे जिसके लिए उन्होंने रामपुर दरबारसे प्रार्थना की थी पर अभीतक उसका कुछ न हुआ। १ अगस्त १८६९को उमराव बेगमने नवाब रामपुरको निम्नलिखित पत्र भेजा—

"जनाब आली! जिस रोज़से मिर्ज़ा असद उल्ला ख़ाँने वफ़ात पाई है तो यह आजिज़ बेवा इस क़दर मसायब में गिरफ़्तार है कि तहरीरसे बाहर है। अव्वल तो यह मुसीबत है कि मिर्ज़ा मग़फ़ूर मरहूम आठ सौ रुपयेके क़र्ज़दार मरे दूसरी मुसीबत यह है कि पेन्शन अंग्रेज़ी मसदूद[1] हुई। तीसरी यह कि हमेशा सौ रुपये माहवार जो आप सरकारसे बतरीक़ मदद मिर्ज़ा मग़फ़ूरको इनायत फ़र्माते[2] थे वह भी एक दफ़ा मौक़ूफ़ हुई। अब तक क़र्ज़ लेकर औक़ात बसर की। अब क़र्ज़ भी नहीं मिलता।

विवाह किया था। यह आकर्षक स्त्रीकी बेप बज्या न थी। उन्होंने मुबारक बेगम नामक एक स्त्रीको रख लिया था। उसीसे मुराद बेगमका जन्म हुआ था। मुबारक बेगमकी बनवाई हुई लाल मस्जिद हौज़क़ाज़ीके पास दिल्ली बाज़ारमें पानीके समीप है—लाल पत्थरकी बनी हुई।

—ज़िक्रे ग़ालिब पृष्ठ १४१

१ बन्द २ लिखट बन्द ३ भेजते थे।

नौबत फ़ाक़ाकशीकी पहुँची। ... अब हुक्कामोंसे यह तमन्ना है कि ऐसी परवरिश मुझ बेकस[1] की हो जाये कि मिर्ज़ा मरहूम हक्के अदायसे बरी हो जायें कि यह सख्त अज़ाब है। अगर हुज़ूर मुरव्वते अदाए क़र्ज़ फ़रमायें तो क़यामतके सवाबे अज़ीम[2] होगा। ... पेन्शन मेरी बस उसमें मंजूर करता है★ बशर्ते कि मैं कचहरीमें हाज़िर हूँ और जाना मेरा कचहरीमें हर्गिज़ न होगा गो फ़ाक़ों ही मर जाऊँ। क्या मैं अपने बाप और चचा और शौहरका नाम रौशन करूँ। और जो इज्ज़त और रियासत मेरे चचा की और हुर्मत मेरे वालिदकी और शौहरकी जाने ख़ासोआमके भी हुज़ूर पर सब रौशन है।

इस करुणाजनक अर्ज़ीपर भी नवाब रामपुरका दिल न पसीजा। २ सितम्बर १८६६को बेचारी विधवाने दोबारा लिखा। इसपर ९ सितम्बर को नवाब मिर्ज़ा 'दाग़ को हुक्म हुआ कि जाँच करके रिपोर्ट करें। १ अक्तूबरको नवाबने हुक्म दिया कि उमराव बेगमको १) की हुण्डी भेजी जाय।

पता नहीं चलता कि यह १) की हुण्डी किस हिसाबसे भेजी गयी न यही पता चलता है कि वह भेजी भी गयी या नहीं और भेजी भी गयी तो उमराव बेगमको मिली या नहीं। इन दुःखकी घड़ियोंमें उमराव बेगम-के चचेरे भाई और मिर्ज़ाके शिष्य नवाब ज़ियाउद्दीन ख़ाँने मदद की और २५) या ५) मासिक वृत्ति भी नियत कर दी जो उन्हें मृत्युतक मिलती

---

१ भूखा २ परम पुण्य।

★ उमराव बेगमने अंग्रेजोंके यहाँ दरख्वास्त दी थी कि मिर्ज़ा साहबकी पेन्शन हुसैन अली ख़ाँके नाम कर दी जाय। डिप्टी कमिश्नरने इसकी सिफ़ारिश की पर कमिश्नरने आदेश दिया कि ऐसा नहीं हो सकता हाँ बेगमको १) माहवार वज़ीफ़ा मिल सकता है बशर्ते कि वह कचहरीमें हाज़िर हों। बेगम साहिबाने यह शर्त कबूल न की।

रही। नवाब ज़ियाउद्दीन आजीवन और जीवनान्तर भी ग़ालिबके सहायक रहे। जब ग़दरमें पेन्शन बन्द हो गयी थी तब भी ५) माहवार उमराव बेगमको देते रहे।

पर उमराव बेगम वैधव्यका दुःख झेलनेके लिए ज़्यादा दिन ज़िन्दा न रहीं और पतिकी मृत्युके ठीक एक वर्ष बाद—बरसीके दिन—४ फ़रवरी १८७० को १०–११ बजे दिनके समय परलोकवासिनी हुईं।

ग़ालिबका जीवन   रहन सहन, स्वभाव और आचरण

ग़ालिब एक ईरानी रईसज़ादा थे। रईसज़ादोंकी तरह पले बढ़े। फिर उनकी शादी भी लोहारू ख़ानदानमें हुई। चचा ससुर वगैराकी ज़िन्दगी रईसाना ज़िन्दगी थी। उसका असर इनपर भी पड़ा। इन्होंने कठिनाइयों और मुसीबतोंके बीच भी ऊपर टीमटामकी ज़िन्दगी क़ायम रखनेकी सदा कोशिश की। बचपनकी लगी आदतें मुश्किलसे छूटती हैं। कुछ प्रयत्न और सत्संगसे छूट गयीं कुछ बनी रहीं। ऐशोइशरतकी ज़िन्दगी जो किशोरावस्थामें उभरी जवानीमें उसकी ओर झुक गयी। उसके चस्केका कुछ इनको बराबर बना रहा। कभी तृप्ति प्राप्त नहीं हुई। उस ज़मानेके रईसोंकी बाहरी टीमटाम दिखावटकी पोशाकसुखनका शौक मारकाकी वफ़ादारी ऐंठ पर उसके साथ ही मीठापन—मतलब एक मिटती हुई रईसी सभ्यताके सब गुण-दोष इनमें थे।

व्यक्तित्व

ईरानी चेहरा गोरा लम्बा कद सुडौल इकहरा बदन ऊँची नाक कपोलकी हड्डियाँ उभरी हुई चौड़ा माथा घनी उठी पलकोंके बीच झाँकते दीर्घ नयन संसारकी कहानी सुननेको उत्सुक लम्बे कान अपनी सुनानेको उत्सुक मानो बोल ही पड़ेंगे ऐसे ओठ—अपनी चुप्पीमें भी बोल-बोल पड़नेवाले बुढ़ापेमें भी फूटती देहकी कान्ति जो इशारा करती है कि जवानीके सौन्दर्यमें न जाने क्या नशा रहा होगा। सुन्दर गौर वर्ण समस्त विशेषताओंके साथ जीवित

इसी दुनियाके आदमी इंसान और इमानके गुण-दोषोंको कलेजेसे लगाये—यह थे मिर्ज़ा या मीरज़ा ग़ालिब।

बचपन दुलारमें पला। पर दुलारकी कड़ियाँ टूटती गयीं। टूटीं और मिलीं। मिलीं और टूटीं। पिता गये। चचा आये। चचा गये। यार दोस्त आये। उनका हुजूम बढ़ा। मजलिसें जमीं। प्यालोंमें कादम्बरीका नर्तन हुआ—ऐसा नर्तन जिसने जिन्दगीको अपने आलिंगनमें दबोच लिया। जवानीमें तो उसने गौरवर्णमें एक अपूर्व कान्ति पैदा की। खूनमें दौड़ी। रंगमें चहकी। दिलमें गर्मी पैदा की। पर बुढ़ापेमें खूनको पानी कर गयी, पाँवकी उँगलियोंमें सूजन बनकर उभरी हाथकी उँगलियोंमें दर्दके साथ ऐंठी। हाजमेको उड़ा ले गयी। फिर जिस्मपर फूट-फूटकर निकली।

प्रौढ़ावस्था आई बुढ़ापा आया पर इनकी आदत न गयी। बहुत दिनों तक दाढ़ी मुँड़ाते रहे। जब देखा बाल खिचड़ी हो रहे हैं और स्याहीपर सफ़ेदी चढ़ती ही जाती है तो दाढ़ी मुँड़ाना बन्द कर दिया। दो-चार अंगुल की दाढ़ी रखने लगे। अक्सर जो दाढ़ी रखते हैं वे सिरके बाल भी बढ़ाते हैं। इनके ज़मानेमें भी यही तरीक़ा था। पर इनका ढंग निराला था। दाढ़ी रखी तो सिर मुँड़ा लिया। इस तरह परम्परासे कुछ भिन्नता रखी।

वस्त्र-विन्यास और भोजन

रईसज़ादा थे और जन्म भर अपनेको वैसा ही समझते रहे। इसलिए वस्त्र-विन्यासका बड़ा ध्यान रखते थे। जब घरपर होते प्रायः पाजामा और अंगरखा पहिनते थे। सिरपर कामदानी की हुई मलमलकी गोल टोपी लगाते थे। जाड़ेमें गरम कपड़ेका नलीदार पाजामा और मिर्ज़ई। बाहर जाते तो अक्सर चूड़ीदार या तंग मोहरीका पाजामा कुर्ता सदरी या चपकन और ऊपर क़ीमती लबादा होता था। पाँवमें जूती और हाथमें मूठदार, लम्बी छड़ी। ज़्यादा ठण्ड होती तो एक छोटा शाल भी

लम्बे और पीठपर। सिरपर लम्बी टोपी। कभी-कभी टोपीपर मुगलई पगड़ी या पग्गड़। रेशमी लुंगीके शौकीन थे।* रंगोंका बड़ा ख्याल रखते थे।

खाने-खिलानेके शौकीन स्वादिष्ट भोजनोंके प्रेमी थे। गर्मी-सर्दी हर मौसिममें उठते ही पहिले ठण्डाई पीते थे जो बादामको पीसकर मिश्रीके शर्बतमें घोली जाती थी। फिर पहर दिन चढ़े नाश्ता करते थे। दुपहरमें एक ही बार, दोपहरको खाना खाते रातको कभी न खाते। खानेमें गोश्त जरूर रहता—शायद ही कभी नागा हुआ हो। गोश्तके साथ बेरेशा पकनेपर मुलायम और स्वादिष्ट रहनेकी शर्त फिर मसे भी उसमें पककर पड़े हों और शोरबा आधा सेरके लगभग। बकरी एवं दुम्बेका गोश्त ज्यादा पसन्द था भेड़का बिल्कुल न लगता था। पक्षियोंमें मुर्ग कबूतर और बटेर पसन्द था। गोश्त और तरकारीमें अपना बस चलते चनेकी दाल जरूर डलवाते थे।§

---

* जैसा कि उर्दू ए मोअल्ला पृ ११६ के जवाहरसिंहके नाम लिखे पत्रमें रेशमी लुंगीकी तीव्र कामना प्रकट करनेसे स्पष्ट है। रेशमी लुंगी भी वह जो पेशावर और मुल्तानमें बनती थी।

§ बाकर अलीखाँकी पत्नी बुग्गा बेगम अपने ससुराल आनेके बाद की एक घटना इस सम्बन्धमें बताती थी— 'जब ब्याहतीके बाद घरमें आई तो मेरी खातिर गोश्तमें दाल न डाली गयी। जब मीरजा साहब दोपहरको खानेपर बैठे तो देखा कि सालनमें दाल नहीं पड़ी है। उन्होंने समझा कि शायद दाल घरमें खत्म हो चुकी है। कहने लगे—भई अगर दाल खत्म हो चुकी थी तो या खुद किसीको भेजके मँगवा ली होती या मुझसे कहा होता कि मैं मँगवा देता। इसपर बेगम साहिबा बोलीं कि नहीं दाल तो घरमें मौजूद है लेकिन बहू चनेकी दाल नहीं खाती इसलिए नहीं डाली गयी। झट बोल उठे—ओ हो फिर तो बहू दालसे बच गयी। अरे भला

चनेकी दाल, बेसन कढ़ी और फुलकियाँ बहुत खाते थे। बुढ़ौती एवं बीमारीमें जब मेदा ख़राब हो गया तो रोटी-चावल दोनों छोड़ दिये और सेर भर गोश्तकी गाढ़ी यख़नी और कभी-कभी ३-४ तले शामामी कबाब लेते थे। फलोंमें अंगूर और आम बहुत पसन्द थे। आमोंको तो बहुत ही ज्यादा चाहते थे जिनके लिए फ़रमाइश करते रहते थे। और इसके बारेमें अनेक लतीफ़े इनकी ज़िन्दगीसे सम्बद्ध हैं।

हुक्का पीते थे—पेचवानको ज्यादा पसन्द करते थे। पान नहीं खाते थे। शराब जन्म-भर पीते रहे। पर बुढ़ापेमें तन्दुरुस्ती ख़राब होनेपर, नामको चन्द तोले शामको पीते। बिना पिये नींद न आती थी। सदा विलायती शराब पीते थे। ओल्ड टाम और कास्टेलन ज्यादा पसन्द थी। शराबकी तेज़ी कम करनेको आधेसे ज्यादा गुलाबजल मिलाते थे। जामको कपड़ेसे लपेटते और गर्मीके दिनोंमें कपड़ेको बर्फ़से तर कर देते। ख़ूब ही कहा है—

जाहदा बाद ख़ातिरे ग़ालिब कि ख़ूए दोस्त
आमेख़्तन ब बादए साफ़ी गुलाब रा।

शराबकी चुस्की लेते और साथ-साथ बीचमें तले नमकीन बादाम खाते। जब दुर्बल हुए तो इन्हें पूर शराब पीनेपर अनुताप होता था पर आदत छूटती न थी। फिर भी मात्रा कम करनेके लिए एक समय

तो यह चीज़ है कि इसपर ख़ुद अल्ला मियाँकी भी राल टपक पड़ी थी। जब यह चनेकी दाल नहीं बाती तो यह मुझसे भी बड़ी हुई। अरे ख़ुदाके सामने चला गया और शिकायत की कि बारी तआला यह क्या बात है कि मुझे लोग तरह-तरहसे तंग करते हैं, भूनते हैं, दलते हैं, पीसते हैं। आख़िर मेरा गुनाह क्या है? ख़ुदाने चनेकी तरफ़ देखा और कहा—दूर हो नहीं मैं भी तुझे खा जाऊँगा।

—अहवाले ग़ालिब

१

एकान्तमें या दो-एक ख़ास दोस्तोंकी उपस्थितिमें पीते थे। कहीं ज़्यादा न पी लें इसलिए जिस सन्दूक़में बोतलें रखते थे उसकी चाबी इनके वफ़ादार सेवक कल्लू दारोग़ाके पास रहती थी और उसे ताकीद कर रखा था कि रातको कभी नशे या सुरूरमें मैं ज़्यादा पीना चाहूँ और माँगूँ तो मेरा कहा न मानना और तंग करने पर भी कुंजी न देना। लोगोंके पूछनेपर कि यों नाम करनेसे क्या फ़ायदा छोड़ ही न दें 'ज़ौक़' का शेर पढ़ते थे—

छुटती नहीं है मुँह से यह काफ़िर लगी हुई।

जैसा कि जीवन रेखामें लिखा जा चुका है ग़ालिबका असल वतन आगरा था पर किशोरावस्थामें ही यह दिल्ली आ गये थे। कुछ दिन तो

निवास

ससुरालमें रहे, फिर अलग रहने लगे। पर ससुरालमें या अलग ज़िन्दगीका ज़्यादा हिस्सा दिल्लीकी 'गली क़ासिमजान'में ही बीता। सच पूछें तो इस गलीके चप्पे-चप्पेसे उनकी ज़िन्दगी जुड़ी हुई है। ५०-५५ वर्ष दिल्लीमें रहे जिसका अधिकांश इसी गलीमें बीता। यह गली चाँदनी चौकसे मुड़कर बल्लीमारान के अन्दर जाने पर शम्सी दवाख़ाना और हकीम शरीफ़ख़ाँकी मस्जिदके बीच पड़ती है। इसी गलीमें ग़ालिबके चचाका ब्याह क़ासिमजान (जिनके नामपर यह गली है) के भाई आरिफ़ज़ानकी बेटीसे हुआ था और बादमें ग़ालिब ख़ुद दूल्हा बने आरिफ़ख़ानकी पोती और लोहारूके नवाबकी भतीजी उमराव बेगम को ब्याहने इसी गलीमें आये। और साठ साल बाद जब बूढ़े शायरका जनाज़ा निकला तो इसी गलीसे गुज़रा। इस गलीके कई मकानोंमें यह रहे। जनाब हमीद अहमदख़ाँने ठीक ही लिखा है—'गलीके परले सिरेसे चलकर इस सिरे तक आइए तो गोया आपने ग़ालिबके बचपनसे लेकर वफ़ात तककी तमाम मंज़िलें तय कर लीं। *

---

* अहवाले ग़ालिब पृ ७८ ७९।

एकान्तमें या दो-एक ख़ास दोस्तोंकी उपस्थितिमें पीते थे। ज़्यादा न पी लें इसलिए जिस सन्दूकमें बोतलें रखते थे उसकी चाबी इनके वफ़ादार सेवक कल्लू दारोग़ाके पास रहती थी और उसे ताकीद कर रखा था कि रातको कभी नशे या सुरूरमें मैं ज़्यादा पीना चाहूँ और माँगूँ तो मेरा कहा न मानना और तक़ाज़ा करने पर भी कुंजी न देना। लोगोंके पूछनेपर कि यों नाम करनेसे क्या फ़ायदा छोड़ ही न दें 'ज़ौक़' का शेर पढ़ते थे—

छुटती नहीं है मुँह से यह काफ़िर लगी हुई।

जैसा कि जीवन-रेखामें लिखा जा चुका है, ग़ालिबका असल वतन आगरा था पर किशोरावस्थामें ही यह दिल्ली आ गये थे। कुछ दिन तो ससुरालमें रहे, फिर अलग रहने लगे। पर ससुरालमें या अलग ज़िन्दगीका ज़्यादा हिस्सा दिल्लीकी गली क़ासिमजान'में ही बीता। सच पूछें तो इस गलीके चप्पे-चप्पेसे उनकी ज़िन्दगी जुड़ी हुई है। ५०-५५ वर्ष दिल्लीमें रहे जिसका अधिकांश इसी गलीमें बीता। यह गली चाँदनी चौकसे मुड़कर बल्लीमारान के अन्दर जाने पर शम्सी दवाख़ाना और हकीम शरीफ़ख़ाँकी मस्जिदके बीच पड़ती है। इसी गलीमें ग़ालिबके चचाका ब्याह क़ासिमजान (जिनके नामपर यह गली है) के भाई आरिफ़जानकी बेटीसे हुआ था और बादमें ग़ालिब ख़ुद दूल्हा बने आरिफ़जानकी पोती और लोहारूके नवाबकी भतीजी उमराव बेगम को ब्याहने इसी गलीमें आये। और साठ साल बाद जब मुर्दे ग़ालिबका जनाज़ा निकला तो इसी गलीसे गुज़रा। इस गलीके कई मकानोंमें यह रहे। जनाब हमीद अहमदख़ाँने ठीक ही लिखा है—'गलीके परले सिरेसे चलकर इस सिरे तक आइए तो गोया आपने ग़ालिबके लड़कपनसे लेकर बुढ़ापे तककी तमाम मंज़िलें तय कर लीं।★

निवास

★ अहवाले ग़ालिब पृ० ७८-७९।

पत्रका जवाब लिखकर देते थे। अक्सर तीसरे पहरका वक़्त इसमें जाता था। ग़दरके दिनोंमें जब सब तरफ़से कटकर घरकी चार दीवारीमें बन्द हो गये थे तब तो मित्रोंको पत्र लिखना ही समय काटनेका एक मात्र साधन रह गया था। उर्दू-ए-मोअल्ला (५९) में तुफ़्ताके नाम लिखे एक पत्रसे जान पड़ता है कि ग़दरके दिनोंमें पत्रलेखनकी उनके जीवनमें क्या महत्ता थी —

मैं इस तनहाईमें सिर्फ़ ख़तोंके भरोसे जीता हूँ। यानी जिसका ख़त आया मैंने जाना कि वह शख़्स तशरीफ़ लाया। ख़ुदाका एहसान है कि कोई दिन ऐसा नहीं होता जो अतराफ़ व जवानिबसे दो-चार ख़त नहीं आ रहते हों। बल्कि ऐसा भी दिन होता है कि दो-चार डाकका हरकारा ख़त लाता है।...मेरी दिल-लगी हो जाती है। दिन उनके पढ़ने और जवाब लिखनेमें गुज़र जाता है।

इनके पत्रोंकी हस्तलिपि काफ़ी अच्छी है। बहुत पत्रकी बात गुम न हो जायें इसलिए उन्हें बैरंग भेजते थे और मित्रोंको भी यही लिखते कि बैरंग भेज दिया करें।

काव्य-रचनाके लिए उन्होंने कभी किसीको अपना उस्ताद नहीं बनाया और मीरकी भाँति बिना किसीसे इस्लाह लिये अपनी कल्पना एवं चिन्तनके बल पर बढ़े हुए। नव-नवीनताको काव्यकी आत्मा मानते थे। कहा करते कि शायरी मानी-आफ़रीनी है, क़ाफ़िया पैमाई नहीं। इनकी ग़ज़लें लम्बी नहीं। अक्सर बिना काग़ज़-क़लमके शेर बनाते जाते और याद कर लिया करते थे। फिर बादमें लिखते एवं संशोधन करते। मौलाना हाली लिखते हैं —

काव्य-रचना

मिर्ज़ाका यह तरीक़ा था कि अक्सर रातको आलमे सरख़ुशीमें फ़िक्र किया करते थे और जब कोई शेर सरंजाम हो जाता था तो कमर बन्दमें एक गिरह लगा लेते थे। इस तरह आठ-आठ दस-दस गिरहें लगा-

किताबें खरीदते न थे। किसीसे ले लेते और पढ़कर लौटा देते थे। स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि जो कुछ एक बार पढ़ लेते भूलते न थे।

पत्र-लेखन

बीच-बीचमें अखबार भी देखते रहते थे। पत्र-लेखन-कलामें तो उस्ताद ही थे। अन्तिम जीवन तक मित्रों एवं स्नेहियोंको पत्र लिखते रहे। इनके पत्र क्या हैं साहित्यकी अमूल्य निधि हैं। उनका ऐतिहासिक मूल्य और महत्त्व भी है। उनके जीवनके विविध अङ्गोंपर इन पत्रोंसे बड़ा प्रकाश पड़ा है। मालिकरामने ठीक ही लिखा है—

ये खुतूत लिखनेवालेकी जिन्दगी और करदारका आईना है।— इनके एक-एक लफ़्ज़में एक जिन्दा धड़कता हुआ दिल बोल रहा है। यही इनकी इन्फ़रादी खुसूसियत है।

इन पत्रोंकी विशेषता उनकी शैली है। यों मालूम होता है कोई सामने बैठा बातें कर रहा हो। वह तहरीर (लेखन) को तक़रीर (वक्तृता) बनानेकी चेष्टा करते थे।* इसीलिए इनमें विशेषण या शिरनामे उनमें नहीं मिलते। झट मतलब पर आ जाते हैं—गोया आपसे बात कर रहे हैं।

इमलाकी दास्तानकी और इसी क़दर—को एक जिल्द बोस्ताने ख़यालकी आ गयी है। सत्रह बोतलें बादए नाबकी तोशकख़ानेमें मौजूद हैं। दिन-भर किताब देखा करते हैं, रातभर शराब पिया करते हैं—

> कसे की मुरादश मयस्सर शुवद।
> अगर जम न बाशद सिकन्दर शुवद।

—उदू-ए मोअल्ला पृ १२४

* १८२८ में कलकत्तासे भी मुहम्मद अलीको उनर अमीन बौंदाको लिखा था— मैं चाहता हूँ तहरीर तक़रीरसे कम न हो।

—कुल्लियाते नस्र १६६

उनके मित्रोंका दायरा बहुत बड़ा था। उसमें हर जाति, धर्म और प्रान्तके लोग थे। किसी मित्रको कष्टमें देखते तो इनका हृदय रो पड़ता था। उसका दुःख दूर करनेके लिए जो कुछ सम्भव होता करते। स्वयं न कर पाते तो दूसरोंसे सिफ़ारिश करते। इनके पत्रोंमें मित्रोंके प्रति सहानुभूति एवं चिन्ताके झरने बहते हुए दिखाई देते हैं। उन्हें कष्टमें देख ही नहीं सकते थे। दिल धड़कने लगता था। देखिए, भरतपुर-नरेशकी मृत्युकी ख़बर सुनकर, उनसे सम्बन्धित या उनके आश्रित लोगोंकी जीविका का क्रम अस्त-व्यस्त हो जानेकी चिन्ता करते हुए 'तुफ़्ता'को लिखते हैं —

'भाई आज मुझको बड़ी तशवीश[1] है और यह ख़त मैं तुमको कमाल आसीमगी[2] में लिखता हूँ। जिस दिन मेरा ख़त पहुँचे अगर वक़्त डाक-का हो तो उसी वक़्त जवाब लिखकर रवाना करो...वास्ते ख़ुदाके न मुख़्तसर[3] न सरसरी बल्कि मुफ़स्सल[4]...जो कुछ मालूम हुआ हो और जो सूरत हो मुझको लिखो और जल्द लिखो कि मुझपर ख़ौफ़ो हिरास[5] है। कल शामको मैंने सुना आज सुबह लिखे नहीं बना...और यह ख़त लिखकर अब रहे एहतियातन[6] बैरंग रवाना किया। तुम भी इसका जवाब बैरंग रवाना करना...ज़्यादा क्या लिखूँ कि परेशान हूँ।

मीर मेंहदी मजरूहको लिखते हैं—

"ऐ मीर मेंहदी तू दरमांदा व आजिज़[7] पानीपतमें पड़ा रहे, मीर साहब यहाँ पड़े हुए रोटी देखनेको तरसा करें, सरफ़राज़ हुसैन नौकरी ढूँढ़ता फिरे और मैं इन बनहाय वा पुरसा[8] की राह चाहूँ? मक़दूर[9] होता तो दिखा देता कि मैंने क्या किया?"*

---

१ चिन्ता घबराहट २ अत्यन्त व्याकुलता ३ संक्षिप्त ४ ब्यौरेवार, ५. भय और भ्रम ६ सावधानीके लिए, ७ निराश्रित और बेबस ८ प्राणरक्षक दुआ ९ सामर्थ्य।

*उर्दूए-मोअल्ला ११८।

कर सो रहते थे और दूसरे दिन सिर्फ़ याद पर सोच-सोचकर तमाम अशआर क़लमबंद कर लेते थे। ★

ख़ास-ख़ास मुशायरोंमें भी शरीक होते थे। आवाज़ बुलन्द और मधुर थी। बहुत अच्छा पढ़ते थे। बादशाह ज़फ़रने इनका क़सीदा सुनकर कहा था— मीरज़ा, तुम पढ़ते ख़ूब हो। मौलाना हालीने इनकी शेर ख़्वानीकी प्रशंसा करते हुए लिखा है — 'शेर पढ़नेका अन्दाज़ भी ख़ासकर मुशायरोंमें इससे ज़्यादा दिलकश व मोअस्सर था। 'एक मुशायरेमें मिर्ज़ाने अपना फ़ारसी क़सीदा दरिया मरसियत और उनका मरसियत जो जनाब इमाम हुसेनकी मनक़बतमें उन्होंने लिखा था पढ़ा। सुना है कि मजलिसे मुशायरा मातमे अज़ा बन गयी थी। जबतक क़सीदा पढ़ा गया लोग बराबर रोते रहे। †

जो कुछ लिखते मित्रोंको भेज दिया करते थे। प्रतिलिपि बहुत कम रखते थे। इसीलिए दूर-दूर तक बिखरी हुई इनकी सब रचनाएँ आजतक भी संग्रहीत न हो सकीं।

विनोद एवं हास्य उनके जीवनके अंग थे। विनोद व्यंग एवं हास्य-का कोई मौक़ा वह चूकते न थे। इस विषयकी चर्चा हम स्वतंत्र रूपसे आगे करेंगे। वार्तालाप-परायण थे।

मित्रोंके विषयमें पहिली बात तो यह है कि वह अत्यन्त मित्र एवं मित्रपरायण थे। जो कोई उनसे मिलने आता उससे खुले दिल मिलते थे।

मित्रता एवं मित्रपरायणता

इसलिए जो आदमी एक बार इनसे मिलता उसे सदा इनसे मिलनेकी इच्छा बनी रहती थी। मित्रोंके प्रति अत्यन्त वफ़ादार थे—उनकी ख़ुशीमें ख़ुश उनके दुःखमें दुखी। मित्रोंको देखकर बाग़-बाग़ हो जाते थे।

★ यादगारे ग़ालिब हाली पृ ५८-५९।

† यादगारे ग़ालिब पृ ५६-५७।

इन घटनाओंकी विस्तृत चर्चा हम इनकी जीवनीमें कर चुके हैं। एक शेरमें कहा है कि उपासनामें भी मैं इतना स्वाधीन और आत्माभिमानी रहा हूँ कि यदि काबेका दरवाज़ा मेरे आगमनपर खुला न मिला तो उल्टे पाँव लौट आये—

बन्दगीमें भी वह आज़ाद व ख़ुदबीं हैं कि हम,
उल्टे फिर आये दरेकाबा अगर वा न हुआ।

वैसे यह शीया मुसलमान थे पर मज़हबकी भावनाओंमें बहुत उदार और स्वतन्त्र चेता थे। इनकी मृत्युके बाद ही आगरासे प्रकाशित होनेवाले मासिक पत्र 'नसीरा आलमोनियम' के मार्च १८६९ के अंकमें इनकी मृत्युपर जो सम्पादकीय लेख छपा था और जो शायद इनके सम्बन्धमें लिखा सबसे पुराना और पहिला लेख है, उससे तो एक नई बात यह मालूम होती है कि यह बहुत पहिले चुपचाप 'फ्रीमैसन' हो गये थे और लोगोंके बहुत पूछनेपर भी उसकी गोपनीयताकी बाक़ायदा रक्षा करते रहे। बहरहाल यह जो भी रहे हों इतना तो तय है कि मज़हबकी दासता उन्होंने कभी स्वीकार नहीं की। इनके मित्रोंमें हर जाति धर्म और मज़हबके लोग थे।

धार्मिक औदार्य

सच्चे एवं उत्कृष्ट कलामके प्रेमी थे पर भरतीकी रचनाओंके निन्दक थे। औरोंकी तरह, परम्परा निभानेके लिए, हर शेर पर दाद देना इनके स्वभाव एवं प्रकृतिके प्रतिकूल था। बुरे शेरको बर्दाश्त न कर सकते थे। हाँ जो शेर वाक़ई अच्छा होता और इनके दिलमें चुभ जाता उसकी प्रशंसा खुले दिल से करते थे।

दूसरे कवियोंके प्रशंसक

उन्नीसवीं सदीमें मेरठमें एक नामी शायर सैय्यद अहमद हसन गुज़रे हैं। फ़ारसीमें 'कुफ़ामी' और उर्दूमें 'नाक़ी' एवं 'नाफ़ी' तख़ल्लुस करते थे। इनके पिता सय्यद ज़ियाउल्लाह भी 'तनहा' के नामसे शायरी करते

यूसुफ मिर्ज़ाको लिखते हैं—

यहाँ अमनियाँ[1] और अमरा[2] के अज़वाज[3] व औलाद भीख माँगते फिरें और मैं देखूँ। इस मुसीबतकी ताब लानेको जिगर चाहिए। §

दुखमें रत था इसलिए प्रेम उमड़ पड़ता था। मित्रों तथा शागिर्दोंसे भी बहुत प्रेम करते थे। उनको इस्लाह ही नहीं देते थे संशोधनोंका कारण भी लिखते थे। बराबर ध्यान देते थे।

आमदनी कम थी। खुद कष्टमें रहते थे फिर भी पीड़ितोंके प्रति बड़े उदार थे। कोई भिखारी इनके दरवाजेसे खाली हाथ नहीं लौटता था।

उदारता

उनके मकानके आगे अन्धे लँगड़े-लूले अक्सर पड़े रहते थे। उनकी मदद करते रहते थे। एकबार खिलअत मिली। चपरासी इनाम लेने आये। पास पैसे नहीं थे। तुरन्त गये खिलअत बेच आये और चपरासियोंको अच्छा इनाम दिया।

इस उदार वृत्तिके बावजूद आत्माभिमानी थे—'मीर' जैसे तो नहीं जिन्होंने दुनियाकी हर नामत अपने सम्मानके लिए ठुकराई, फिर भी अपनी इज्जत-आबरूका बड़ा ख्याल रखते थे।

आत्माभिमान

शहरके अनेक संभ्रान्त लोगोंसे परिचय था पर जो इनके यहाँ न आता उसके यहाँ न जाते थे। कैसी ग़रीबी हो बाज़ारमें बिना पालकी या हवादारके नहीं निकलते थे। कलकत्ता जाते हुए जब लखनऊ ठहरे थे तो आगामीरसे इसीलिए नहीं मिले कि उसने उठकर इनका स्वागत करनेकी शर्त मंजूर न की। इसी प्रकार कष्टके दिनोंमें भी देहली कालेजकी अध्यापकी इसलिए ठुकरा दी कि जब टामसन साहबसे मिलने गये तो इनकी अगवानी करने कोई नहीं आया।

---

१ जमाअत २ अमीर, ३ स्त्रियाँ।

§ उर्दूए मोअल्ला २५५।

इसी तरह जब एक बार मोमिनका यह शेर सुना—

तुम मेरे पास होते हो गोया,
जब कोई दूसरा नहीं होता।

तो बड़ी तारीफ़ की और कहा— 'काश मोमिनख़ाँ मेरा सारा दीवान ले लेता और सिर्फ़ यह शेर मुझको दे देता।' अपने पत्रोंमें इस शेरकी बार-बार चर्चा की है।

एक बार देखा गया कि नवाब मिर्ज़ा दाग़के निम्नलिखित शेरको बार-बार पढ़ते थे और झूमते थे—

रुखे रोशनके[1] आगे शमा[2] रखकर वह यह कहते हैं,
उधर जाता है देखें या इधर परवाना[3] आता है।

अच्छा शेर यदि शागिर्दोंका होता तो भी तारीफ़ करनेसे न चूकते थे। वह स्वयं काव्यके अच्छे पारखी थे। शेरफ़हमी उनमें बहुत थी। कैसा ही मज़मून हो एक सरसरी नज़रमें उसकी तह तक पहुँच जाते थे। नवाब मुस्तफ़ाख़ाँने 'गुलशन बेख़ार' में मिर्ज़ाकी सुख़नफ़हमीकी बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने इसीसे एक घटनाका जिक्र किया था जिससे मिर्ज़ाकी शेरफ़हमीपर प्रकाश पड़ता है। मौलाना आज़ुर्दाने 'दूर नहीं' 'दूर नहीं' इस ज़मीनमें ग़ज़ल लिखी थी। उसमें इस्तिआरेसे मतला बहुत अच्छा निकल आया था। मौलानाने अपनी ग़ज़ल दोस्तोंको सुनाकर उनसे कहा— मतले बहर दूसरी है मगर इस रदीफ़ व क़ाफ़ियेमें नज़ीरीकी भी एक ग़ज़ल है जिसका मतला है—

इश्क़ अज़ियमानस्त अगर मस्तूर नेस्त।
कुश्तए जुर्मे ज़बाँ मग़फ़ूर नेस्त।

---

१ प्रकाशमण्डित आनन २ मोमबत्ती (दीपक) ३ पतंग।

थे। १८६२ से १८६८ तक यह दिल्ली कमिश्नरीमें मीर मुंशी रहे। उस समय 'फ़ुरक़ती' भी पिताके साथ दिल्ली रहते थे। इस वक़्त ग़ालिबसे इनका परिचय हुआ। एक बारकी बात है कि फ़ुरक़ती ने ग़ालिबको अपना यह क़सीदा सुनाया—

> ख़त वच्चे कि दर तुर्रए संबुल शिकन उफ़्ताद।
> बा ग़ारंए गुलशाम च दर मक़्रन उफ़्ताद।

जब उन्होंने यह मतला सुना भावविभोर होकर, कमजोरीमें भी कोशिश करके उठ खड़े हुए, कविका माथा चूम लिया और उपस्थित लोगोंसे कहा— यह मुन्शी महमद हुसन ग़ालिब जिन्दा है, असदउल्लाखाँ ग़ालिब मुर्दा है। सब लोगोंको इनसे फ़ायदा उठाना चाहिए, मेरे पास आनेकी ज़रूरत नहीं। बादमें फ़ुरक़तीको बहुत मानने लगे थे।

मौलाना हालीने भी 'यादगारे ग़ालिब' में ऐसी कई घटनाओंकी चर्चा की है। जिन्दगी भर 'ज़ौक़' से इनकी छेड़छाड़ चलती रही। पर एक दिन जब यार-दोस्त बैठे थे और यह शतरंज खेलनेमें तल्लीन थे मुंशी गुलाम अली नामके एक व्यक्तिने 'ज़ौक़' का निम्नलिखित शेर किसी दूसरे उपस्थित मित्रको सुनाया—

> अब तो घबराके यह कहते हैं कि मर जायेंगे।
> मरके भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे।

मिर्ज़ाके कानमें भनक पड़ गयी। फ़ौरन शतरंज छोड़ दी और गुलाम अली ख़ाँसे कहा— भैया तुमने क्या पढ़ा?' उन्होंने शेर सुनाया। पूछा—किसका शेर है? उत्तर मिला—ज़ौक़का। सुनकर चकित हुए। उनसे बार-बार शेर पढ़वाते थे और सिर धुनते थे। अपने कई ख़तोंमें इस शेरका जगह-जगह ज़िक्र किया है।

दोनोंकी सुखनफ़हमी और सुखनसंजी इनायत हुई है। हालाँ कि मैं शेर कहता हूँ और शेर कहना जानता हूँ मगर जबतक मैंने इस बुज़ुर्गवारको नहीं देखा यह नहीं समझा कि सुखनफ़हमी क्या चीज़ है और सुखनफ़हम किसको कहते हैं? मंज़ूर है कि खुदाने कुल्लके दो हिस्से किये आधा मुझको दिया और आधा तमाम बनी नूअ इन्सानको। कुछ ताज्जुब नहीं कि इसमें सखुन और पोलमानीके भी दो हिस्से किये गये हों और आधा मुफ़्ती नवाबसाहबके और आधा तमाम दुनियाके हिस्सेमें आया हो। गो ज़माना और आसमान मेरा कैसा ही मुख़ालिफ़ हो मैं इस दानाकी दोस्ती-की बदौलत ज़मानेकी दुश्मनीसे बेफ़िक्र हूँ और इस नामवरपर दुनियाके जनम।

पारिवारिक जीवन

मिर्ज़ाका पारिवारिक जीवन कभी सुखी नहीं रहा। वह रिन्दाना तबीयतके आदमी थे। इनको बीबी ऐसी मिली जो एक राजवंशकी परम्पराओंमें पली थी—धार्मिक नियम व्रत-पूजा नमाज़रोज़ा रखनेवाली परहेज़गार। मिर्ज़ा जितने एकदम स्वच्छन्द वह परम्पराओंका आग्रहपूर्वक पालन करनेवाली। यहाँ तक कि खाने-पीनेके बर्तन भी दोनोंके अलग थे। फिर भी बीबी इनका बड़ा ख्याल रखती थी। हाँ दोनोंमें वह हार्दिक सौख्य न था जो जीवनके अन्धकारमें किरण बनकर फूटता है। इस सम्बन्धमें हम आगे विस्तृत रूपसे लिखेंगे। बहरहाल यह एक तथ्य है कि उनका पारिवारिक जीवन न केवल सुखी नहीं था वरन् एक सीमातक दुःखदायी था।

मौलिकता एवं नवीनता के प्रति आकर्षण

न केवल धर्म बल्कि जीवनमें भी मिर्ज़ा मौलिकता एवं नवीनताके प्रति सदा आकर्षणका अनुभव करते रहे। अपनी पेन्शनके सिलसिलेमें आगरा और कलकत्ता देखकर वह रोशन ख्याल हो गये थे। वह हर पुरानी बातको केवल उसके पुराने होनेके कारण मानना इनकार करते थे और कहा करते थे कि क्या पुरानोंमें गधे नहीं होते थे। अंग्रेजी सभ्यता एवं

अगर नज़ीरी हिन्दी होता और हमारी ज़मानेकी ज़मीनमें उर्दू ग़ज़ल लिखता तो उसका मतला इस तरह होता—

इश्क़ आसियाँ है अगर मसलहती न मस्तूर नहीं ।
क़ुदरतए जुर्मे जवाँ नामी व मग़फ़ूर नहीं ॥

आओ आज मिर्ज़ा ग़ालिबके यहाँ चलें और बिना लेखकका नाम बताये अपना और नज़ीरीके मतलेका यही उर्दू तर्जुमा मिर्ज़ाको सुनायें और पूछें कि कौन-सा मतला अच्छा है। चूँकि नज़ीरीका मतला उर्दू तर्जुमेमें बहुत पस्त हो गया था उसको यक़ीन था कि मिर्ज़ा नज़ीरीके मतलेको नापसन्द करेंगे और मौ॰ आज़ुर्दाके मतलेको तर्जीह देंगे। पर जब नज़ीरीके मतलेका यही उर्दू तर्जुमा पढ़ा गया कि मिर्ज़ा सुनकर सिर धुनने लगे और इस क़दर तारीफ़ की कि···मौलाना आज़ुर्दाने अपना मतला नहीं पढ़ा। * इसी प्रकार काव्यके पारखियोंकी भी बड़ी इज़्ज़त करते थे। जो हाली लिखते हैं—

'मुंशी नबीबख़्श 'हक़ीर' तख़ल्लुस जो एक ज़मानेमें कोलमें सर रिश्तेदार थे और जिनकी सुख़नफ़हमी और सुख़नसंजीकी बड़े-बड़े लोगोंसे तारीफ़ सुनी गयी है, जहाँ वह दिल्ली आये हैं और मिर्ज़ाके मकानपर उतरे हैं। उनकी निस्बत हरगोपाल तुफ़्ताको एक फ़ारसी ख़त लिखते हैं जिसका तात्पर्य यह है—'ख़ुदाने मेरी बेकसी और तन्हाईपर रहम किया और एक ऐसे शख़्सको मेरे पास भेजा जो मेरे ज़ख़्मोंका मरहम और मेरे दर्दका दर्माँ[1] अपने साथ लाया और जिसने मेरी अँधेरी रातको रोशन कर दिया। उसने अपनी बातोंसे एक ऐसी शमा रोशन की जिसकी रोशनीमें मैंने उसके कमालकी ख़ूबी जो तीरबख़्ती[2] के अँधेरेमें ख़ुद मेरी निगाहसे मख़्फ़ी[3] थी देखी। मैं हैरान हूँ कि इस फ़र्ज़ानए यगाना[4] यानी मुंशी नबीबख़्शको किस

---

* हाली यादगारे ग़ालिब पृ॰ १२।

१ इलाज उपचार २ दुर्भाग्य ३ प्रच्छन्न ४ अद्वितीय व्यक्ति।

शेरोंकी सुखनफ़हमी और सुखनसंजी इनायत हुई है। इसको कि मैं शेर कहता हूँ और शेर कहना जानता हूँ मगर अबतक मैंने इस गुनुम्मारको नहीं देखा यह नहीं समझा कि सुखनफ़हमी क्या चीज़ है और सुखनफ़हम किसको कहते हैं? मशहूर है कि यूनान हुस्नके दो हिस्से किये आधा यूसुफ़को दिया और आधा तमाम बनी नूअ इन्सानको। कुछ ताज्जुब नहीं कि इसमें सखुन और सौकमानीके भी दो हिस्से किये गये हों और आधा मुंशी नवलकिशोरके और आधा तमाम दुनियाके हिस्सेमें आया हो। यो ज़माना और आसमान मेरा कैसा ही मुख़ालिफ़ हो मैं इस मख़दूमकी दोस्ती-की बदौलत ज़मानेकी दुश्मनीसे बेफ़िक्र हूँ और इस नामवरपर दुनियासे बेग़म।

पारिवारिक जीवन

मिर्ज़ाका पारिवारिक जीवन कभी सुखी नहीं रहा। यह रिन्दाना तबीयतके आदमी थे। इनको बीवी ऐसी मिली जो एक राजवंशकी परम्परामें पली थी—धार्मिक निष्ठा व्रत-पूजा नमाज़रोज़ा रखनेवाली परहेज़गार। मिर्ज़ा धर्मके क्षेत्रमें स्वच्छन्द यह परम्पराओंका आग्रहपूर्वक पालन करनेवाली। यहाँ तक कि खाने-पीनेके बर्तन भी दोनोंके अलग थे। फिर भी बीवी इनका बड़ा ख़्याल रखती थी। हाँ दोनोंमें वह हार्दिक सौजन्य न था जो जीवनके अन्धकारमें किरण बनकर फूटता है। इस सम्बन्धमें हम आगे स्वतन्त्र रूपसे लिखेंगे। अभिप्राय यह एक तथ्य है कि इनका पारिवारिक जीवन न केवल सुखी नहीं था वरन् एक सीमातक दुःखदायी था।

मौलिकता एवं नवीनता के प्रति आकर्षण

न केवल काव्य बल्कि जीवनमें भी मिर्ज़ा मौलिकता एवं नवीनताके प्रति सदा आकर्षणका अनुभव करते रहे। अपनी यात्राके सिलसिलेमें बनारस और कलकत्ता दोनोंपर यह रीझ गये थे। यह हर पुरानी बातको केवल उसके पुराने होनेके कारण माननेसे इनकार करते थे और कहा करते थे कि क्या पुरखोंमें बच्चे नहीं होते थे। अंग्रेज़ी सभ्यता एवं

शासनके प्रति उनमें एक लगाव थी क्योंकि उसमें सुव्यवस्था थी और अनिश्चितताओंसे भरे अध्यात्मका उससे अन्त हो जाता था। जब सर सैयद अहमद खाँने बड़े परिश्रम एवं लगनसे 'आईने-अकबरी' का सम्पादन किया तब मिर्ज़ाने यही कहा था कि उनसे अच्छे क़ानूनोंके मौजूद रहते इस ग्रन्थ-में माथा-पच्ची करना फ़िज़ूल है। यह चीज़ उनके जीवन एवं काव्यमें सर्वत्र दिखाई देती है—नवीनता एवं व्यवस्थाके प्रति आकर्षण। इसे वह जीवनका चिह्न समझते थे। इस धारणापर ही उनके समस्त जीवन एवं काव्यकी उठान है।

ग़ालिब   दाम्पत्य जीवन

यह बात पहिले लिखी जा चुकी है कि ग़ालिबका दाम्पत्य जीवन कभी सुखी नहीं रहा। यह दुःखकी एक लम्बी कहानी है जिसमें नायक और नायिका दोनों हाहाकारसे भरे चिरपिपासित वेदनाओंका भार ढोते हुए जिन्दगीके दिन पूरा कर रहे हैं। निश्चय ही इस तथ्यने ग़ालिबके जीवन और उनके दृष्टिकोणपर गहरा प्रभाव डाला। दो दिल, सम्पूर्ण जीवन एकत्र रह कर एकत्र होकर भी एकत्र न हो सके। मानो एकत्र हुए हों सिर्फ टकरानेके लिए। युगोंका साहचर्य जहाँ स्वप्नोंकी एक मोह-निशाकी सृष्टि न कर सका ऐसा दाम्पत्य जहाँ एक दूसरेके लिए कल्पनाकी स्रोतस्विनी दिलोंकी मरुभूमिमें न फूटी जहाँ दिल एक दूसरेके लिए कभी न तड़पे कभी न रोये कभी जहाँ अपनी भूलोंपर अनुतापके अश्रुबिन्दु न झरे, कभी जहाँ मौन आलिंगनका बाहुपाश नहीं बँधा जिसमें सब कुण्ठा और वितृष्णा का अन्त हो जाता है, कभी जहाँ हृदयसे हृदय नहीं बोले—अपने सामने बैठकर जबान और लफ्जोंकी भाषामें नहीं आत्मार्पणकी भाषामें अवसर अपना सब कुछ भूल जानेकी भाषामें 'मैं' और 'तू' नहीं 'हम' की भाषामें ऐसा लम्बा दाम्पत्य जीवन था ग़ालिबका—नारकीय यन्त्रणाओंकी लम्बी शृंखलामें बँधा हुआ जहाँ दोनोंको बन्धनकी अनुभूति तो थी पर बन्धनको यह बाहुपाश बनानेकी चेष्टा नहीं थी जो दो प्राणोंको एक कर देता है और जहाँ जिन्दगी अपनी नहीं दूसरोंकी हो जाती है, जहाँ इन्सान अपने लिए उतना नहीं जीता जितना दूसरोंके लिए जीता है।

टकरानेके लिए
मिलन

बहरहाल यह एक सत्य है कि ग़ालिबका दाम्पत्य जीवन दुःखपूर्ण था।

अनायास सवाल उठता है कि क्यों ऐसा हुआ? उर्दूका एक बहुत बड़ा शायर, भारतमें फ़ारसीयतका नेता भावनाओंके क्षेत्रमें दूर रहनेवाला और अपने युगकी चिन्तनशीलता एवं बौद्धिकताका प्रतिनिधि ग़ालिब एक औरतकी ज़िन्दगीको क्या ऐसी न बना सका कि उसके साधनाका प्रकाश उसके दिलको भी छूले उसकी ज़िन्दगीमें भी कभी बहार आती—बहार न सही उसके एकाध झोंके ही सही।

१७९९ में दिल्लीके एक शरीफ़ प्रतिष्ठित और प्रभावशाली घरानेमें एक लड़की पैदा हुई। उसके पिता नवाब इलाहीबख्शखाँका जीवन वैभव एवं सुखकी प्रतिमूर्ति था—राजकुमारोंके सुख-भोगसे पूर्ण। किसी चीज़की कमी नहीं। युवाकालमें इलाहीबख्शका जीवन इस तरहका था कि वह 'शहज़ादए गुलफ़ाम'[1] के नामसे प्रसिद्ध थे। इससे कल्पना की जा सकती है कि उस लड़की उमराव बेगमका बचपन किस प्रकार बीता होगा उसका पालन-पोषण किस प्रकार हुआ होगा और किन फूलों और बहारोंमें पली होगी। वह ज़माना ऐसा था कि शरीफ़ोंमें बेटियाँ कम उम्रमें ब्याह दी जाती थीं। उनके अपने निर्वाचनका तो सवाल ही नहीं था। उमरावकी शादी सिर्फ़ ग्यारह सालकी आयुमें ८ अगस्त १८१० ई० को आगराके एक रईसज़ादा असदउल्लाखाँसे कर दी गयी।

उमरावका बचपन

जिस रईसज़ादे असदउल्लाखाँसे उमरावकी शादी हुई उसकी उम्र भी कच्ची—सिर्फ़ तेरह सालकी थी। यद्यपि उसे वह सुख नसीब न हुआ था जो उमरावको बचपनमें प्राप्त था पर उसका बचपन भी बड़े प्यार दुलारमें बीता। बाप तो अक्सर बाहर रहते थे और यह छोटे ही थे कि मर गये परन्तु चचाने जो एक उच्चाधिकारी थे इन्हें अपनी ही सन्तान समझकर पाला। वह भी कुछ समय बाद दुनियासे चले गये। नतीजा

---

१ कुसुमकोमल राजकुमार।

पैसा-पूरा था किसी प्रकारका अभाव न था। जहाँ रहे। बड़े आराम और आसाइशकी जिन्दगी थी। इस तरह हम देखते हैं कि बचपन और अल्पवयस्कता पति और पत्नी दोनोंका बचपन आराम और आसाइशमें बीता।

एक अन्तर

पर एक अन्तर था। लड़कियोंकी जिन्दगियाँ तो अन्तःपुरकी सीमामें सिमटी थीं। उन्हें बातचीतका सलीका, उठने बैठनेका ढंग और घर-गृहस्थीकी बातें सिखाई जाती थीं। उमरावके माँ बाप थे। उनकी छायामें वह पली बढ़ी। किन्तु अल्पवयस्कताके ऊपर कोई देख-रेख करनेवाला उनके जीवनको दिशा और मोड़ देनेवाला न था। बाप तो दूर ही दूर रहे, चचा भी जल्दी ही संसारसे प्रयाण कर गये। नानी और माँका दुलार मिला। पर बाहर कोई बड़ा-बूढ़ा देख-रेख करनेवाला न होनेसे जल्दी उसमें ही मौज-मजाकी आदत पड़ गयी। यार-दोस्त जुट गये। और बचपन उस नियन्त्रण और प्रशिक्षणसे छूटकर वह कच्चा जिसपर भावी जीवन बनता है। मुगल सल्तनतके उस पतन कालमें जब वातावरण तमसाच्छन्न हो रहा था और अँधेरा गहरा होता जा रहा था रईसजादोंकी जिन्दगी भी एक ऐसे ढर्रे पर चलती थी। यह कच्चेपनमें ही ताक-झाँक घूमा-घाटी गप-शप सैर-सपाटेकी जिन्दगी बन जाती थी। अल्पवयस्कता या शालिनके जीवनके सम्बन्धमें यह बात बहुत ध्यान रखनेकी है। अनियन्त्रित अभाव का नाम न जाननेवाले, पतन संस्कारोंसे हीन यारबाशोंके बचपनमें उस चिर-निराशाकी नींव पड़ी जिसने भोगवादी भावनाओंको शालिनमें सदा प्रबल रखा और कभी उन्हें अन्तःस्थ नहीं होने दिया।

जब लड़कीके घरवालोंने पतिके रूपमें शालिनको पसन्द किया तो सोचा अच्छे खानदानका लड़का है, देखनेमें सुन्दर, पढ़ा-लिखा मृदु भाषी; आगे चलकर अपने बड़ोंकी तरह फौजी नौकरीमें नाम कमायेगा खाने-पीनेकी कोई तकलीफ लड़कीको न रहेगी। एक धनाढ्य घराना

खूबसूरत शौहर हर तरहकी आसूदगी लड़कीको मिल रही है, और क्या चाहिए। यह बात भी थी कि ग़ालिबकी चाची उसकी उमरावकी सगी फूफी थी। इसलिए ख्याल था कि लड़की जाने-पहचाने एक तरहसे अपने ही घरमें जा रही है। पर सब कुछ होकर भी यह आशा पूरी न हुई। असदउल्लाने जीविकोपार्जनकी ओर न कोई लक्ष्य प्राप्त करके एक औसत गृहस्थका तृप्त जीवन बितानेकी ओर कभी ध्यान न दिया। बचपनकी स्वच्छन्दता जिन्दगी भर बनी रही। विवाहित जीवनके चन्द साल किसी प्रकार बेफ़िक्रीमें बीते पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया गृहस्थ जीवनसे निश्चिन्तता समाप्त होती गयी। बेकारी और बेरोजगारी जिन्दगीपर छाती गयी। ज्यों-ज्यों उम्रमें बढ़ते गये आर्थिक एवं दैनिक जीवनकी मुसीबतें बढ़ती ही गयीं। यहाँ तक कि २४ सालके बाद तो उमरावके जीवनसे सुखके सपने सदाके लिए विदा हो गये।

अपना सोचा कहाँ होता है ?

कुछ पत्नियाँ ऐसी होती हैं जो चरण पकड़कर सिरपर चढ़ जाती हैं, पतिकी कमजोरियोंसे व्यथित होकर भी वे जानती हैं कि जो मिल गया है बुरा-भला उसे ही लेकर अपनी दुनिया बनानी है। वे धीरजसे काम लेती हैं और अपने स्नेह, सेवा और निष्ठासे धीरे-धीरे पति-हृदयपर अधिकार कर लेती हैं। दूसरी वे होती हैं जिनका अहंकार चोटीला होकर जिन्दगीकी सतहपर आ जाता है, आँखोंमें विकृत पतिके लिए उपेक्षा जिसमें अपनी किस्मत फूट जानेकी रह-रहकर उमड़ पड़नेवाली अनुभूति अन्तरमें अन्तरके दर्दकी तीक्ष्णता भर जाती है। जो बात पत्नीके लिए सही गयी है वही पतिके लिए भी है। समझदार, सहृदय पति पुरानी जिन्दगी और सपनोंको भूलकर शान्तिके लिए ही यही जो उनको मिली उसे ही सहेजने-सँवारनेकी कोशिश करते हैं।

जिनके बीच खाई बढ़ती गयी

दूसरे किस्मतने और ज़मानेने उसे लात मारकर, उसमें और उसके बीच एक ऐसी दीवार खड़ी कर दी है जो उम्र बढ़नेके साथ-साथ टूटनेकी जगह और दृढ़ होती जाती है। दुर्भाग्य कि ग़ालिब और उमराव दोनों इस दूसरी तरहके पति-पत्नी निकले। दोनोंमें गहरी अहंवृत्ति थी। कोई किसीके आगे झुकनेको तैयार नहीं। उमराव ज़रा झुककर ग़ालिब पर हावी हो सकती थीं पर उन्हें एक नवाबकी लड़की होनेकी चेतना थी और उनका अहंकार उन्हें ऐसा करनेकी इजाज़त न दे सकता था। ग़ालिब की सगी बहिनके पोते नवाब सरवरुलमुल्कने लिखा है—

बचपनमें जब मैं अपनी वालिदा मरहूमा[1] के साथ उनके हाँ जाया करता था तो दादी (बेगम ग़ालिब) मुझको एक दुअन्नी दिया करती थीं। अजीब बात यह है कि इन दोनों मियाँ बीवीमें हमेशा अनबन रही। बीबियाँ इस ज़मानेकी निहायत मोहज़्ज़ब व पारसा[2] मगर कमाल दर्जा मग़रूर व मुतकब्बिर[3] थीं।.....'

उमरावका अहंकार एक ओर, ग़ालिबका दूसरी ओर। मिलनेकी जगह दोनों टकराते गये टकराते गये और कटते गये कटते गये और टकराते गये।

जब घरमें दिलकी छाया न प्राप्त न हो जब पत्नी जीवनकी आशी-र्वादकी जगह जीवनका बोझ बन जाये उसमें प्रेम और मृदुलताका अभाव

दूसरी औरतका आकर्षण

उनके स्थानपर विष-बुझी वाणीके बाण बरसें पुरुष घरसे बाहर भागता है। ग़ालिब पर तो बचपनसे ही स्वच्छन्दताके संस्कार प्रधान थे अब जो दोनोंके दिल फट गये तो वह बाज़ारू औरतोंकी ओर झुके। इसी सिलसिलेमें एक गायिका (डोमनी) पर बुरी तरह आसक्त हो गये। वह भी इनसे प्यार करने लगी। इससे उमरावके दिलपर क्या

---

१ स्वर्गीया माँ २ सभ्य और पवित्र, ३ अहंकारी।

खूबसूरत शौहर हर तरहकी आसूदगी लड़कीको मिल रही है, और क्या चाहिए। यह बात भी थी कि ग़ालिबकी चाची उमरावकी सगी फूफी थीं। इसलिए ख्याल था कि लड़की अपने पहचाने एक तरहसे अपने ही घरमें जा रही है। पर सब कुछ होकर भी यह आशा पूरी न हुई। असदउल्लाने जीविकोपार्जनकी ओर या कोई अच्छा पद प्राप्त करके एक औसत गृहस्थका तृप्त जीवन बितानेकी ओर कभी ध्यान न दिया। बचपनकी स्वच्छन्दता जिन्दगी भर बनी रही। विवाहित जीवनके चन्द साल किसी प्रकार बेफ़िक्रीमें बीते पर ज्यों-ज्यों उमर बीतता गया गृहस्थ जीवनसे निश्चिन्तता समाप्त होती गयी। बेकारी और बेरहमी जिन्दगीपर छाती गयी। ज्यों-ज्यों उम्रमें बढ़ते गये आर्थिक एवं दैनिक जीवनकी मुसीबतें बढ़ती ही गयीं। यहाँ तक कि २४ सालके बाद तो उमरावके जीवनसे सुखके सपने सदाके लिए विदा हो गये।

अपना सोचा कहाँ होता है ?

कुछ पत्नियाँ ऐसी होती हैं जो चरण पकड़कर सिरपर चढ़ जाती हैं पतिकी कमजोरियोंसे व्यथित होकर भी वे जानती हैं कि जो मिल गया है बुरा-भला उसे ही लेकर अपनी दुनिया बनाती हैं। वे धीरजसे काम लेती हैं और अपने स्नेह, सेवा और निष्ठासे धीरे-धीरे पति-हृदयपर अधिकार कर लेती हैं। दूसरी वे होती हैं जिनका अहंकार कुण्ठित होकर जिन्दगीकी सतहपर आ जाता है, आँखोंमें निकृष्ट पतिके लिए उपेक्षा जिसमें अपनी किस्मत फूट जानेकी रह-रहकर उमड़ पड़नेवाली अनुभूति जबानमें अन्दरके दर्दकी तीक्ष्णता भर जाती है। जो बात पत्नीके लिए सही रही है वही पतिके लिए भी है। समझदार, घायल पति पुरानी जिन्दगी और सपनोंको भूलकर शान्तिके लिए ही सही जो कभी मिली उसे ही सहेजने-सँवारनेकी कोशिश करते हैं।

दिलोंकि बीच खाई बढ़ती गयी

इश्क़ने पकड़ा न था ग़ालिब अभी वहशतका[1] रंग,
रह गया था दिलमें जो कुछ ज़ौक़-ए-ख़्वारी[2] हाय हाय।

इंसान मरे हुएको एक दिन तो भूल ही जाता है—कबतक कोई किसी को याद रखता है पर परम मौजीस दिल न लगनेके कारण ग़ालिबको इस माशूक़ाको याद बुढ़ापे तक रही। फिर वैसा आपीखाला प्रेम उनकी ज़िन्दगीमें न आया। घटनाके चालीस-बयालीस बरस बाद भी अपने एक प्रिय मित्र हातिम अली 'मेहर' की प्रियतमाकी मृत्यु पर जो पत्र उन्होंने लिखा था उससे मालूम होता है उस बुढ़ौतीमें भी जवानीकी इस प्रियतमाका वियोग कसक रखता थी :—

"मुग़ल बच्चे भी ग़ज़ब होते हैं। जिसपर मरते हैं उसको मार रखते हैं। मैं भी मुग़ल बच्चा हूँ। उम्र भर एक सितमपेशा डोमनीको मैंने भी मार रखा है। ख़ुदा उन दोनोंको बख़्शे और हम तुम दोनोंको भी कि ज़ख़्मे मर्गे दोस्त[3] खाये हुए हैं मग़फ़िरत[4] करे। चालीस बयालीस बरसका यह वाक़या है बावजूदेकि[5] यह कूचा[6] छुट गया इस फ़नसे बेगाना महज़[7] हो गया हूँ लेकिन अब भी कभी-कभी वह अदाएँ याद आती हैं। उसका मरना ज़िन्दगी भर न भूलूंगा।

मतलब यह कि दिली जीवनमें जो ख़ाई थी वह इस घटनासे स्थायी हो गयी। अगर आमदनी काफ़ी होती मानो ग़ालिब कमाऊ होते तो दिलका

उमरावकी गृह वेदना

प्यार भूला ही नहीं जीवनकी बाहरी आवश्यकताएँ तो पूरी होती रहतीं और ज़िन्दगी एक ढर्रेपर तो चल सकती। किन्तु उमरावकी क़िस्मतमें यह भी न था। शादी के चौदह वर्ष बाद जो पुत्र जन्मा था वह भी विदा हुआ। ग़ालिबने

१ पागलपन २ बरबादीकी उत्कण्ठा ३ प्रियतमका घाव ४ क्षमा ५ यद्यपि ६ गली ७ बिल्कुल अपरिचित।

बीती होगी इसकी कल्पना की जा सकती है। उसके जोबनकी बहार कटकर बिलकुल खत्म हो गयी। कई सालों तक गालिब और उनकी इस प्रियतमाका प्रेम-व्यापार चलता रहा। फिर जान पड़ता है उसकी मृत्यु हो गयी। उस वक्त यह २ २२ के पट्ठे थे। उन्होंने उसकी मृत्युपर जो शोकपूर्ण रचना की है उससे इनकी गहरी मर्मव्यथाका पता चलता है। यह रचना प्रबल भावावेगसे पूर्ण है। देखिए इसके कुछ शेर —

तेरे दिलमें गर न था आशोबे ग़मका[1] हौसला,
तूने फिर क्यों की थी मेरी ग़मगुसारी[2] हाय हाय।
उम्र भरका तूने पैमाने वफ़ा[3] बाँधा तो क्या?
उम्रको भी तो नहीं है पायदारी[4] हाय हाय।
ज़ह्र लगती है मुझे आबोहवाए ज़िन्दगी,
यानी तुझसे थी उसे नासाज़गारी हाय हाय।
शर्मे-रुसवाईसे जा छुपना नक़ाबे-ख़ाकमें[5],
ख़त्म है उल्फ़तकी तुझपर पर्दादारी हाय हाय[6]।
किस तरह काटे कोई शबहाय तारे बर्शगाल[7],
है नज़र ख़ूकर्दए[8] अख़्तरशुमारी[9] हाय हाय।
गोश महजूरे पयाम[10] व चश्म महरूमे जमाल[11],
एक दिल तिसपर य' नाउम्मीदवारी हाय हाय।

---

१ दुःख और मुसीबतकी हलचल २ सहानुभूति हमदर्दी ३ निष्ठाकी प्रण वफ़ादारीकी क़सम ४ स्थिरता ५. मिट्टीके पर्देमें तुम बदनामीके डरसे मिट्टीके पर्देमें जा छिपीं ६ इस प्रकार प्रेमके छिपानेकी कलाकी सीमा तुममें समाप्त है, ७ वर्षाकी अँधेरी रातें ८ अभ्यस्त ९. तारे गिनकर १० सन्देशसे रहित कान ११ दर्शनसे बिछुड़ी आँखें।

इश्क़ने पकड़ा न था ग़ालिब अभी वहशतका[1] रंग,
रह गया था दिलमें जो कुछ ज़ौक़ख़्वारी[2] हाय हाय ।

इंसान मरे हुएको एक दिन तो भूल ही जाता है—बशर्ते कोई किसीको याद रखता है पर घरमें बीवीसे दिल न लगनेके कारण ग़ालिबको उस माशूक़की याद बरसों तक रही। फिर वैसा आपीवाला प्रेम उनकी ज़िन्दगीमें न आया। घटनाके चालीस-पैंतालीस वर्ष बाद भी अपने एक प्रिय मिर्ज़ा हातिम अली 'मेह्र'की प्रियतमाकी मृत्यु पर जो पत्र उन्होंने लिखा था उससे मालूम होता है उस बुढ़ापेमें भी जवानीकी इस प्रियतमासे बिछुड़नेकी कसक उनमें थी —

मुग़ल बच्चे भी ग़ज़बके होते हैं। जिसपर मरते हैं उसको मार रखते हैं। मैं भी मुग़ल बच्चा हूँ। उम्र भर एक सितमपेशा डोमनीको मैंने भी मार रखा है। ख़ुदा इन दोनोंको बख़्शे और हम तुम दोनोंको भी कि ज़ख़्मे मर्गे दोस्त[3] खाये हुए हैं, मग़फ़िरत[4] करे। चालीस बयालीस बरसका यह वाक़या है बावजूदे कि[5] यह कूचा[6] छूट गया इस फ़नमें बेगाना महज़[7] हो गया हूँ लेकिन अब भी कभी-कभी वह अदाएँ याद आती हैं। उसका मरना ज़िन्दगी भर न भूलूँगा।

मतलब यह कि मियाँ बीवीमें जो खाई थी वह इन घटनाओंसे स्थायी हो गयी। मगर आमदनी काफ़ी होती यानी ग़ालिब कमाऊ होते तो दिलका

उमरावकी एक वेदना

[illegible] ही सही जीवनकी बाह्य आवश्यकताएँ तो पूरी होती रहतीं और ज़िन्दगी एक ढर्रेपर तो चल सकती। किन्तु उमरावकी क़िस्मतमें यह भी न था। शादीके चौदह वर्ष बाद जो कुछ भरम था वह भी बिखर गया। ग़ालिबने

---

१ पागलपन २ बदनामीकी तत्परता ३ प्रियमरणका घाव ४ क्षमा ५. यद्यपि ६ गली ७ बिलकुल अपरिचित।

शायरी मित्र-मण्डली और अपनी हास्यप्रियतामें अपने दु:खको निमग्न कर दिया था शराब भी उसको भुलानेमें उनकी सहायता करती थी पर बेचारी उमराव अपने दु:खको कहाँ भुलाती । इसलिए वह दूर-दूर होती गयी एकान्तप्रिय होती गयी और परम्परागत धर्ममें धर्मनिष्ठ होती गयी ।

यह अभिशप्त जीवन कदाचित् कुछ शीतल हो उठता यदि दाम्पत्य सुख-स्नेहके अभावमें भी एकाध बच्चे होते । पर यहाँ भी दोनों अभागे सन्तानके अभावकी व्यथा सहे । बच्चे तो सात हुए, पर बरस-सवा बरससे ज्यादा एक न जिया । माँकी जिन्दगी और तन-मनकी गर्मी बच्चोंको पेटमें रख-रखकर जन्म देने और फिर कलेजेके टुकड़ोंके एकके बाद एक मौतके भयानक पंजों द्वारा छीन लिये जानेके ग़ममें ही ख़त्म हो गयी । उस माँकी निराशा भरे जीवनकी कल्पना भी अत्यन्त व्यथाजनक है जिसे पतिका प्रेम न मिला उसके अभावमें सन्तानकी किलकारियाँ न मिलीं या मिलीं तो यों कि उनका मिलना न मिलनेसे भी अधिक कसक और करक पैदा करनेवाला फिर दैनिक जीवनकी निश्चिन्तता भी नहीं कहीं हार्दिक सहानुभूतिका एक शब्द नहीं एक बात नहीं । उल्टे पतिके व्यंग और चौंड़ी हँसीकी चोट ।

नहीं कहता कि सन्तानहीनताका ग़म ग़ालिबको कुछ कम रहा होगा । कोई प्यारा बच्चा जी गया होता तो शायद उसके माध्यमसे दोनों कुछ नज़दीक आते पर दुर्भाग्यकी सीमा थी कि एक न जिया । यहाँ तक कि ग़ालिबने बड़ी साधोंसे बड़े चावसे यानी बीबीके भांजे आरिफ़को गोद लिया तो वह भी दाग़ दे गया और मिर्ज़ा तथा उमराव दोनोंको समुद्रमें डूबते हुएको जो तिनकेका सहारा मिला था वह भी छिन गया । दोनों छटपटा कर रह गये । ग़ालिबको इस घटनाने बेतरह प्रभावित किया जैसा आरिफ़की मृत्युपर लिखी उनकी शोकपूर्ण रचनासे विदित होता है :—

जाते हुए कहते हैं क़यामतको मिलेंगे
क्या ख़ूब क़यामतका है गोया कोई दिन और ।

सम्भवतः प्रायः पति-पत्नीके झगड़ते झगड़ते टूटते दिलोंको जोड़ देती है, पर यहाँ तो दोनोंका सारा निजी जीवन गृह-जीवन एक ऐसा रेगिस्तान बनकर रह गया दिखाई देता है जिसमें एक हरित भूमिखण्ड नहीं है—चटियल घबराई हुई धरती घबराये कलेजेमें घबराई उमंगें और घबराई आँखें लिये ताक रही है।

कभी-कभी निराशाएँ और विपत्तियाँ भी हृदयोंको नजदीक लाती हैं। पर ऐसा प्रायः तभी होता है जब दोनोंके अन्तरमें कहीं सहानुभूतिका सोता भले मुँह बन्द किये पड़ा हो या कमसे कम दूसरे प्रबल आकर्षण एवं प्रवृत्तियाँ न हों पर यहाँ यह बात भी न थी। ग़ालिबकी प्रकृति रसमय थी—वह बन्धनोंमें बँधकर रहनेवाले न थे। उधर बीबी गम्भीर, कुछ अहंकारी चोट खाई हुई कम बोलनेवाली और बन्धन एवं परम्पराके प्रति आसक्त। ग़ालिबको पत्नीमें कभी वह गहरा आकर्षण न मिला जो जीवनको सोहागका वह वरदान देता है जिसपर सौ-सौ स्वर्ग निछावर किये जा सकते हैं। वह बीबीको सदा बंधन और फन्दा ही समझते रहे। फ़ारसी शेरोंमें उनके भाव स्पष्ट हो गये हैं—

दूरी पैदा करनेवाली निराशा

न आदमज़ाद न शैतां तौक़े लानत,
सुपुर्देन्द अज़ रहे तक़दीमा तज़म्मीक़।
सर्ग़िन दर असीरी तौक़े आदम
गिरांतर आमद अज़ तौक़े अज़ाज़ील।

शादी उस समय हुई थी जब किशोरता बाल्यावस्थाओंमें बीतती थी—उन्मुक्त थे। दुनियाके मजे सामने थे। स्वभावतः विवाहका बन्धन रुचा नहीं।

'उर्दू-ए-मुअल्ला' (पृ० २९५) में नवाब अलाउद्दीन अहमद खाँको लिखे गये पत्रमें अपनी शादीके विषयपर लिखते हैं—

'एक बेड़ी (यानी बीबी) मेरे पाँवमें डाल दी और दिल्ली शहरको ज़िन्दान मुकर्रर किया और मुझे इस ज़िन्दानमें डाल दिया।'

इससे भान पड़ता है कि मुझसे ही इन्होंने बीबीको बेड़ी समझ लिया था और निबाहसे कभी खुश न रहे:—

आज़ूए ख़ाना आबादीने वीरां तर किया,
क्या करूँ गर सायए दीवार सैलाबी करे।

मैं कह चुका हूँ कि दोनोंके स्वभाव भिन्न थे—एक गम्भीर दूसरा ठिठोलिया। एक धर्मातुर, दूसरा रिन्दशौक। प्रोफेसर हमीद अहमदने ठीक ही लिखा है कि 'वह शोखाना हास्य जिसके पीछे ग़रीबी अनिश्चितता और ख़ानाबदोशीका भयानक चेहरा हो उस बीबीके लिए कोई अर्थ नहीं रखता था जिसे अपने मान-मर्यादाको बनाये रखनेके लिए न जाने क्या-क्या कष्ट सहन करना पड़ता था। बेचारी उमरावबेगम लेकर क्या करती उसे तो एक शौक़ीन एवं अपव्ययी पर बेकार शौहरकी घर-गृहस्थीको चलाना पड़ता था। ग़ालिबकी हँसी-दिल्लगी छेड़छाड़का जो लक्ष्य था वह अन्दर ही अन्दर दुखी उमरावके दिलमें व्यंगके तीरकी तरह चुभता था। उनकी यह आदत उमरावके लिए बोझ हो गयी। उधर सुरापेक्ष ग़ालिबकी यह आदत न गयी।

शोखीके हास्यके पीछे
भयानक चेहरा

इन बातोंका परिणाम यह हुआ कि पहले खिंच और पीछे ही गये। दोनोंने निजत्वके आगे कब्ज़ा डाल दिया था और कभी दूसरे विशेषतर मरहम लगानेकी चेष्टा भी न की। बल्कि मामला इतना तूल पकड़ गया कि दोनों एक साथ रहते हुए भी अलग-अलग बैठ रहे। अपने जीवनके उत्तरकालमें ग़ालिब प्रायः सारा वक़्त अपने बैठकख़ानेमें ही गुज़ारते और सिर्फ़ एकबार लाठी टेकते-टेकते अन्दर जाते थे। इसके पूर्व जीवनमें भी उनका ज़्यादा समय बाहर

नोक-झोंक

या घरके पुरुष-कक्षमें ही बीतता था। मगर आते तब भी कुछ न कुछ व्यंग्य उनके मुँहसे निकल ही जाता था। वह आज़ाद तबीयत पूर्णतः इसी दुनियाके आदमी थे जबकि पत्नी कुछ संस्कार-वश कुछ इनके कारण दुःखी हो उसके सिवाके पर-बिछावनपर चलनेवाली नमाज़रोज़ेकी पाबन्द और परहेज़गार थीं। इसलिए दोनोंमें अक्सर नोक-झोंक हो जाती थी। ग़ालिब बीबीको 'हज़रत मूसाकी बहिन' कहते थे और ज़्यादा बिगड़ते तो यहाँतक कह जाते थे कि 'मेरा तो नाकमें दम कर दिया है।' बहू (मिर्ज़ा बाक़रअली ख़ाँकी पत्नी बुग्गासी बेगम उर्फ़ बुग्गा बेगम§) के सामने ये बातें होती थीं। इससे उमराव बेगम बड़ी दुःखी हो जाती थीं। वह चुप रह जातीं और बहूसे कहतीं—"बेटी तू तो बच्ची है। मुझेभी बातोंका ख़्याल न किया कर। बुड्ढा तो दीवाना हो गया है।

बुग्गा बेगमने कई ऐसी घटनाओंका ज़िक्र किया है* जिनसे इस स्थितिपर विशेष प्रकाश पड़ता है। वह कहती हैं—

'मिर्ज़ा पिछले पहर हवाख़ोरीको जाया करते थे। एक रोज़ असर[1] के बाद वह वापिस आये। मैं और मेरी सास असरकी नमाज़ पढ़ रही थीं। दोनों ही उसी तख़्तपर। मुसल्ले पर ही बैठे। जब हमने सलाम फेरा तो कहने लगीं— 'वाह वा! ख़ूब! बहूको भी अपना-सा कर लिया। तुम्हारी भुँगका कीड़ा अपने घर ले जाती है तो चालीस दिनमें उसे अपना-सा करके निकाल देती है।

'बरसातके दिन थे। मेंह बहुत बरसने लगा। पोतों (बाक़र एवं हुसैन) ने खाना खाया और चले गये। मियाजानकी (मुलाज़िम) भी

---

§ १ मई १९४९ को ९१ सालकी उम्रमें इनकी मृत्यु हो गयी।

* महनामा ग़ालिब में प्रो० हमीद अहमदख़ाँके लेख (पृ० ७८-८७ एवं २६६-२७६)।

१ गोधूलि बेला सूर्यास्तके पूर्व।

"एक बेड़ी (यानी बीवी) मेरे पाँवमें डाल दी और दिल्ली शहरको ज़िन्दान मुक़र्रर किया और मुझे इस ज़िन्दानमें डाल दिया।"

इससे पता चलता है कि शुरूसे ही इन्होंने बीवीको बेड़ी समझ लिया था और निबाहसे कभी ख़ुश न रहे:—

> आरज़ूए ख़ाना आबादीने वीरां कर दिया,
> क्या करूँ गर सायए दीवार सैलाबी करे।

मैं कह चुका हूँ कि दोनोंके स्वभाव भिन्न थे—एक गम्भीर दूसरा छिछोरिया। एक धर्मभीरु, दूसरा निर्भीक। प्रोफ़ेसर हमीद अहमदने ठीक ही लिखा है कि यह शोखका हास्य जिसके पीछे ग़रीबी अनिश्चितता और फ़ाक़ामस्तीका भयानक चेहरा हो उस बीवीके लिए कोई अर्थ नहीं रखता था जिसे अपने मान-मर्यादाको बचाये रखनेके लिए न जाने क्या-क्या कष्ट सहन करना पड़ता था। बेचारी धार्मिकाको लेकर क्या करती उसे तो एक शौक़ीन एवं रसिक पर बेकार शौहरकी घर-गृहस्थीको चलाना पड़ता था। ग़ालिबकी हँसी-दिल्लगी छेड़छाड़का जो शौक़ था वह अक्सर ही अन्दर दुखी उमरावके दिलमें साँपके विषैले तीरकी तरह चुभता था। उनकी यह आदत उमरावके लिए बोझ हो गयी। उधर मुक्तस्वभाव ग़ालिबकी यह आदत न गयी।

शोखके हास्यके पीछे भयानक चेहरा

इन बातोंका परिणाम यह हुआ कि रूठे दिल और रूठते ही गये। दोनोंने निगाहोंके आगे पर्दा डाल दिया था और कभी भूलके दिलोंपर मरहम लगानेकी चेष्टा भी न की। बल्कि मामला इतना तूल पकड़ गया कि दोनों एक साथ रहते हुए भी अलग-अलग बैठ रहे। अपने जीवनके उत्तरकालमें ग़ालिब प्रायः सारा वक्त अपने बैठकख़ानेमें ही गुज़ारते और सिर्फ़ एकबार लाठी टेकते टेकते अन्दर आते थे। इसके पूर्व जीवनमें भी उनका ज़्यादा समय बाहर

नोक-झोंक

चला गया। (मिर्ज़ा साहब) बैठे बीबीसे बातें करते थे। मैं भी बैठी थी गावतकियेके कोनेसे लगी हुई। कहने लगे— 'एक बीबी दूसरा मैं। तीसरा आँखोंमें ठीकरा! यह मैं और मेरी बीबी बैठे हैं तुम क्यों बैठी हो?' * इसपर मेरी सास बोलीं— ऐ तोबा! बड़ा तो दीवाना है। उसे तो ठट्ठेके लिए कोई चाहिए। बस बहू ही मिल गयी।

मैंने पीछे किसी अख़बारमें लिखा पाया है कि एकबार मकान बदलनेके सिलसिलेमें ग़ालिबने उमराव बेगमको मकान देखने भेजा। देखकर आने पर पूछा— 'कहो मकान पसन्द आया?' बेगमने जवाब दिया— 'उस घरमें तो लोग बला बताते हैं।' ग़ालिबने कहा— 'मगर क्या दुनियामें तुमसे भी बढ़कर कोई बला है?'

एक बार अन्दर गये और किसीसे पूछा कि बेगम क्या कर रही हैं। उसने कहा— 'नमाज़ पढ़ रही हैं।' कुढ़कर बोले— 'अब आओ नमाज़! अरे इसने तो घरको फ़तहपुरीकी मस्जिद बना दिया।'

इनके अनेक पत्र भी ऐसे मिलते हैं जिनसे यह बात प्रमाणित होती है कि ज़िन्दगीमें कभी बीबीसे खुश नहीं रहे। बल्कि गृहजीवनके कटु अनुभवोंने वैवाहिक जीवनके प्रति इनके दृष्टिकोणको ही विकृत कर दिया था। जब एक पत्नीके मरनेपर किसीको विवाहके लिए उद्यत देखते तो इन्हें हैरत होती थी। दूसरी पत्नीकी मृत्युपर तीसरीसे शादी करनेके लिए तैयार उमराव सिंहके बारेमें १९ दिसम्बर १८५८के पत्रमें लिखते हैं—

'अल्ला-अल्ला! एक वह है कि दो बार उनकी बेड़ियाँ कट

---

* हमीदा सुल्तानने जिनका दुम्मा बेगमसे काफ़ी नज़दीकी सम्बन्ध था इस घटनाका वर्णन यों किया है— '...ऐ है बीबी देखो कितना प्यारा मौसिम है। कैसी घनघोर घटाएँ चल रही हैं। इस वक़्त पै तुम हो और मैं हूँ। यह बहू तो बीचमें तीसरा आँखोंमें ठीकरा बनी बैठी है।'

ग़ालिबका जीवन, हाजिरजवाबी तथा व्यंग-विनोद वृत्ति

मिर्ज़ा ग़ालिबकी अधिकांश जिन्दगी कठिनाइयोंमें बीती—यद्यपि कुछ हदतक ये कठिनाइयाँ खुद उनकी पैदा की हुई थीं। रईसज़ादगीकी अहंवृत्ति उन्हें अपनी शक्तिसे अधिक व्यय करने और एक उच्चतर रहन-सहन ग्रहण करनेको विवश करती थी। आमदनी कम खर्च ज्यादा था। इस प्रकार बाहर कठिनाइयाँ महाजनोंका कर्ज़ और तक़ाज़ा, साहित्यमें विरोधियोंसे संघर्ष इसपर अनमेल बीबीके कारण घरमें वह प्यार नहीं जो मानव-जीवनका एक प्रसाद और आशीर्वाद है। इन प्रतिकूलताओंके बीच स्वभावतः यह आत्मविश्वासके सहारे जिन्दगीका सफ़र पूरा करते रहे। कुछ तो उनमें जन्मजात उत्फुल्लता और विनोदवृत्ति थी कुछ प्रतिकूल वातावरणमें रक्षा-कवच रूपमें उभर आई थी। इस प्रतिकूल एवं कठोर परिस्थितिके कारण ही उनके विनोदमें तीव्र एवं प्रच्छन्न व्यंग्योंका स्पर्श है। काव्य एवं जीवन दोनोंमें तीक्ष्ण व्यंग—सरकाज़्म—का स्वर हमें मिलता है। मिर्ज़ाका सारा जीवन ही ऐसे लतीफ़ोंसे भरा हुआ है जिनमें उनके मज़ाक़ और नश्तर-सी चुभनेवाली उनकी व्यंग-वृत्तिके दर्शन होते हैं। अन्दरसे दुखी पर ऊपरसे चुहल और खुशीसे भरे हुए ग़ालिबके जीवनका यह एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। यहाँ चन्द घटनाएँ लिखी जाती हैं जिनसे उनकी हाज़िरजवाबी—'विट'-विनोदवृत्ति तथा प्रच्छन्न-व्यंग-कलापर प्रकाश पड़ता है।

बिताये जा सकते हैं। अक्सर कवि और कलाकार इतने आत्मकेन्द्रित होते हैं कि एक ओर उनका व्यक्तित्व और वह तथा दूसरी ओर संसारकी वास्तविकताओंसे भागकर कल्पनाकी आनन्द-वाटिकामें विचरण करनेकी वृत्ति गार्हस्थ्य जीवनके ब्यौरोंके प्रति ध्यान करनेमें बाधक होती है। पर ग़ालिब तो कल्पना-प्रधान नहीं बुद्धिप्रधान चिन्तनशील कवि माना जाता है। उसने अपनी बीबीके प्रति ऐसा क्यों किया इसीकी विवेचना हम करते रहे हैं। बचपनसे ही स्वच्छन्दताके संस्कार सांसारिक भोगविलासके प्रति आकर्षण इस दुनियाके बाहरकी वस्तुओंपर अनास्थाका ग़ालिबके जीवनमें बहुत बड़ा भाग है पर दाम्पत्य जीवनकी असफलताने उनके जीवन और काव्यपर जो प्रभाव डाला है वह सर्वप्रधान है। इस दुःखने परम्परागत आस्थाओंको टुकड़े-टुकड़े कर दिया है और एक संसारीको और अधिक संसारी एक स्वच्छन्द आत्माको और स्वच्छन्द तथा निर्बन्ध कर दिया है। यदि उनका दाम्पत्यजीवन सुखी होता उसमें प्रेयसीके कष्टकमनकी जगह मादक आकर्षणोंकी शय्या मिली होती तो वही चिन्तनी ऐसे फूलोंसे भर जाती जहां कांटे भी स्नेहकी अंगुलियोंसे मृदुल होते हैं—और जहां दुनियाके बहरोंसे बंध अमृतके फौव्वारे उमड़ते हैं।

एवं मौलाना फ़ख़रुद्दीन कुतबसिराजके पोते थे। इन्हींके कारण क़िलेसे मिर्ज़ाका सम्बन्ध स्थापित हुआ था। मिर्ज़ासे बड़ी मुहब्बत रखते थे। जीवन-रेखा अध्यायमें हम बता चुके हैं कि किस प्रकार मिर्ज़ा जुएके अभियोगमें पकड़ लिये गये थे। जब मिर्ज़ा जेलसे छूटे तो काले साहब उन्हें अपने घर ले गये और अरसे तक वहाँ रखा। उनके आराम-आसाइशकी सब सुविधाएँ कर दीं। एक रोज़ मिर्ज़ा काले साहबके पास बैठे थे कि किसीने आकर क़ैदसे छूटनेकी मुबारकबाद दी। मिर्ज़ा कब चूकनेवाले थे झट बोल उठे— 'कौन भड़वा क़ैदसे छूटा है? पहिले गोरेकी क़ैदमें था अब कालेकी क़ैदमें हूँ।

गोरेकी क़ैद बनाम कालेकी क़ैद

× ×

हाज़िरजवाबी और विनोद वृत्तिके कारण ही अनेक बार कठिनाइयों एवं विपत्तियोंसे छूट जाते थे। यहाँ एक घटना दी जाती है।

ग़दरके दिनोंकी बात है। उन दिनों अंग्रेज़ सभी मुसलमानोंको शुब्हेकी निगाहसे देखते थे। दिल्ली मुसलमानोंसे ख़ाली हो गयी थी। पर ग़ालिब और कुछ दूसरे लोग चुपचाप अपने घरोंमें पड़े रहे। एक दिन कुछ गोरे इन्हें भी पकड़कर कर्नल ब्राउनके पास ले गये। उस वक़्त 'कुलाह' (ऊँची टोपी) इनके सिरपर थी। अजीब वेशभूषा थी। कर्नलने मिर्ज़ाकी यह वज़ा देखी तो पूछा कि 'वेल टुम मुसलमान?'

आधा मुसलमान हूँ

मिर्ज़ाने कहा— 'आधा।'

कर्नलने पूछा— 'इसका क्या मतलब है?'

मिर्ज़ा बोले— शराब पीता हूँ सुअर नहीं खाता।

कर्नल सुनकर हँसने लगा और इन्हें घर लौटनेकी इजाज़त दे दी।

×

लखनऊकी एक गोष्ठीमें जिसमें संयोगवश मिर्ज़ा मौजूद थे लखनऊ एवं दिल्लीकी ज़बानपर बात चल पड़ी। एक सज्जनने मिर्ज़ासे कहा कि जिस अवसरपर दिल्लीवाले 'अपने तईं' बोलते हैं वहाँ लखनऊके लोग 'आपको' बोलते हैं। आपकी रायमें शुद्ध 'आपको' है या 'आपके तईं'?' मिर्ज़ाने कहा— 'फ़सीह (शुद्ध) तो यही मालूम होता है जो आप बोलते हैं मगर इसमें दिक़्क़त यह है कि मसलन आपकी ही निस्बत यह अर्ज़ करूँ कि मैं तो 'आपको' कुत्तेसे भी बदतर समझता हूँ तो सख़्त मुश्किल वाक़ेअ होगी। मैं तो अपनी निस्बत कहूँगा और आप—मुमकिन है कि अपनी निस्बत समझ जायँ। उपस्थित सब लोग इसे सुनकर फड़क उठे कि क्या जवाब दिया है और कैसा प्रच्छन्न व्यंग किया है। फिर अपने-अपने स्थानपर 'आपको' और 'अपने तईं' दोनोंके उपयोगका प्रकारान्तरसे समर्थन भी है।

लखनऊ एवं दिल्लीकी ज़बान

× ×

शब्दोंके सम्बन्धमें मिर्ज़ाका एक और लतीफ़ा भी मशहूर है। दिल्लीमें 'रथ'को कुछ लोग स्त्रीलिंग[1] कुछ पुल्लिंग[2] बोलते हैं। किसीने मिर्ज़ासे पूछा कि 'हज़रत रथ मोअन्नस' है या मुज़क्कर?' यह बोले— 'भैया! जब रथमें औरतें बैठी हों तो मोअन्नस कहो जब मर्द बैठे हों तो मुज़क्कर समझो।

पुल्लिंग या स्त्रीलिंग ?

× ×

ग़ालिबके ज़मानेमें हज़रत मुहम्मद नसीरुद्दीन उर्फ़ मियाँ काले साहब अपनी विद्वत्ता एवं उच्चाचरणके लिए प्रसिद्ध थे। यह बहादुर शाहके पीर

---

१ स्त्रीलिंग २ पुल्लिंग।

एवं मौलाना फ़खरुद्दीन फ़रखसियरके पोते थे। इन्हींके कारण किलेसे मिर्ज़ाका सम्बन्ध स्थापित हुआ था। मिर्ज़ासे बड़ी मुहब्बत रखते थे। जीवन-रेखा अध्यायमें हम बता चुके हैं कि किस प्रकार मिर्ज़ा जुएके अभियोगमें पकड़ लिये गये थे। जब मिर्ज़ा जेलसे छूटे तो काले साहब उन्हें अपने घर ले गये और अरसे तक वहीं रखा। उनके आराम-आसाइशकी सब सुविधाएँ कर दीं। एक रोज मियाँ काले साहबके पास बैठे थे कि किसीने आकर क़ैदसे छूटनेकी मुबारकबाद दी। मिर्ज़ा कब चूकनेवाले थे झट बोल उठे— 'कौन भड़ुआ क़ैदसे छूटा है? पहिले गोरोंकी क़ैदमें था अब कालोंकी क़ैदमें हूँ।

गोरोंकी क़ैद बनाम कालोंकी क़ैद

× ×

हाज़िरजवाबी और विनोद वृत्तिके कारण ही अनेक बार कठिनाइयों एवं विपत्तियोंसे छूट जाते थे। यहाँ एक घटना दी जाती है।

'आधा मुसलमान हूँ'

गदरके दिनोंकी बात है। उन दिनों अंग्रेज सभी मुसलमानोंको गुस्सेकी निगाहसे देखते थे। दिल्ली मुसलमानोंसे खाली हो गयी थी। पर गालिब और कुछ दूसरे लोग चुपचाप अपने घरोंमें पड़े रहे। एक दिन कुछ गोरे इन्हें भी पकड़कर कर्नल ब्राउनके पास ले गये। उस वक्त 'कुलाह' (ऊँची टोपी) इनके सिरपर थी। अजीब वेशभूषा थी। कर्नलने मिर्ज़ाकी यह वज़ा देखी तो पूछा कि 'वेल टुम मुसलमान?'

मिर्ज़ाने कहा—"आधा।

कर्नलने पूछा— 'इसका क्या मतलब है?'

मिर्ज़ा बोले— 'शराब पीता हूँ सुअर नहीं खाता।

कर्नल सुनकर हँसने लगा और इन्हें घर लौटनेकी इजाज़त दे दी।

× ×

ग़दरके बाद जब पेन्शन बन्द हो गयी थी और दरबारमें आनेकी इजाज़त भी बन्द था, लेफ्टिनेण्ट गवर्नर पंजाबके मीर मुंशी पं० मोतीलाल एक बार इनसे मिलने आये। मिर्ज़ाने उनसे कहा— 'तमाम उम्रमें एक दिन शराब न पी हो तो काफ़िर और एक दफ़ा नमाज़ पढ़ी हो तो गुनहगार[1]। फिर मैं नहीं जानता कि सरकारने किस तरह मुझे बाग़ी मुसलमानोंमें शुमार[2] किया?'

बाग़ी कैसे गिना गया?

× × ×

जब रामपुरके नवाब यूसुफ़अलीख़ाँका देहान्त हो गया और नये नवाब कल्बअलीख़ाँ गद्दीपर बैठे तो मातमपुर्सी और नये नवाबके प्रति सम्मान-प्रदर्शनके लिए मिर्ज़ा रामपुर गये थे। चंद दिनों बाद नवाब कल्बअली लेफ्टिनेण्ट गवर्नरसे मिलने बरेली जा रहे थे। रुख़सतगीके वक्त परम्परानुसार, मिर्ज़ासे कहा— 'ख़ुदाके सुपुर्द।' मिर्ज़ा झट बोल उठे— 'हज़रत! ख़ुदा ने तो मुझे आपके सुपुर्द किया है। आप फिर उलटा मुझको ख़ुदाके सुपुर्द करते हैं।' सुनकर लोग हँस पड़े।

ख़ुदा या आप?

× × ×

जब मिर्ज़ाके ख़िलाफ़ तूफ़ान उठ खड़ा हुआ था उन दिनों विरोधी अश्लील बातें एवं गालियाँ लिखकर ख़तोंमें भेजते थे। इस तरहके ख़त अक्सर गुमनाम होते थे। इसी ज़मानेकी बात है। मौलाना हाली मिलने उनके यहाँ गये थे। यह लिखते हैं — "मिर्ज़ा साहब खाना खा रहे थे। चिट्ठीरसाँने एक लिफ़ाफ़ा लाकर दिया। लिफ़ाफ़ेकी बेरब्ती[3] और कातिब[4]के नामकी अजनबीयतसे उनको यक़ीन हो गया कि यह किसी मुख़ालिफ़[5]का वैसा ही गुमनाम ख़त है जैसे पहिले आ चुके हैं।

गाली देनेकी भी कला होती है

१ अपराधी २ गणना ३ अस्तव्यस्तता ४ लेखक ५. विरोधी।

लिफ़ाफ़ा मुझको दिया कि इसको खोलकर पढ़ो। मैं खूब देखता हूँ तो··· फ़िलहक़ीक़त[1] सारा ख़त फ़हश व दुश्नाम[2] से भरा हुआ था। पूछा किसका ख़त है? और क्या लिखा है?' मुझे उसके दिखाने में तअम्मुल[4] हुआ। फ़ौरन मेरे हाथसे लिफ़ाफ़ा छीनकर ···मज़मून[3] आख़िर तक पढ़ा। इसमें एक जगह माँकी गाली भी लिखी थी। मुसकराकर कहने लगे कि 'इस बेवकूफ़को गाली देनी भी नहीं आती। बुड्ढे या अधेड़ आदमी को बेटीकी गाली देते हैं ताकि उसको ग़ैरत[5] आये। जवानको जोरूकी गाली देते हैं क्योंकि उसको जोरूसे ज़्यादा ताल्लुक़ होता है। बच्चेको माँकी गाली देते हैं कि वह माँके बराबर किसीसे मानूस[6] नहीं होता। यह······जो बहत्तर बरसके बुड्ढेको माँकी गाली देता है, इससे ज़्यादा कौन बेवकूफ़ होगा?'

× ×

एक गोष्ठीमें मिर्ज़ा मीरतक़ीकी तारीफ़ कर रहे थे। शेख़ इब्राहीम 'ज़ौक़' भी मौजूद थे। ज़ौक़ और मिर्ज़ामें अक्सर छेड़-छाड़ चलती रहती थी। ज़ौक़ कुछ 'ठस' क़िस्मके आदमी थे।

तुम सौदाई हो।

ग़ालिब जो कहते उसे काटनेकी ही नीयत उनकी रहती थी। ग़ालिब द्वारा मीरकी तारीफ़ सुनकर उन्होंने 'सौदा' को मीरसे श्रेष्ठ बताया। मिर्ज़ाने झट चोट की— मैं तो तुमको मीरी समझता था मगर अब मालूम हुआ कि आप सौदाई हैं।! *

× ×

---

१ वास्तवमें २. गाली-गलौज ३ कथन अभिव्यक्ति ४ संकोच ५. शर्म ६ हिला हुआ प्रेमी।

* यहाँ मीरी और सौदाई दोनोंमें श्लेष है। मीरीका एक अर्थ है मीरका समर्थक दूसरा है नेता आगे चलनेवाला। इसी प्रकार 'सौदाई'का एक अर्थ है 'सौदा' का अनुगामी दूसरा अर्थ है—पागल।

मिर्ज़ाके बैठकख़ानेके पास ही एक छोटी-सी अँधेरी कोठरी थी जिसका दरवाज़ा इतना छोटा था कि उसमेंसे झुककर जाना पड़ता था।

शैतानकी कोठरी

उसमें सदा फ़र्श बिछा रहता और गर्मी एवं लूके मौसिममें मिर्ज़ा दिनके दस बजेसे शाम चार बजे तक यहीं रहते थे। एक दिन जब गर्मीके दिन थे और रमज़ान का महीना चल रहा था मौ॰ आज़ुर्दा ठीक दोपहरके वक्त मिर्ज़ासे मिलने आ गये। उस वक्त मिर्ज़ा इसी कोठरीमें थे और किसी दोस्तके साथ चौसर या शतरंज खेल रहे थे। मौलाना वहीं पहुँच गये और रमज़ानके महीनेमें इन लोगोंको चौसर खेलता हुआ देखकर कहने लगे—"हमने हदीस[1] में पढ़ा था कि रमज़ानके महीनेमें शैतान मुक़य्यद[2] रहता है मगर आज इस हदीसकी सेहत[3] में तरद्दुद पैदा हो गया।

मिर्ज़ाने कहा— "क़िबला हदीस बिल्कुल सही है। मगर आपको मालूम रहे कि वह जगह जहाँ शैतान मुक़य्यद रहता है, यही कोठरी तो है!

× ×

पहिले लिखा ही जा चुका है कि आम इन्हें निहायत पसन्द थे। आमोंके सम्बन्धमें इनके कई लतीफ़े मशहूर हैं। एक रोचक बात है कि

आमोंपर नाम

बादशाह बहादुरशाह, आमोंके मौसिममें एक दिन बाग़में टहल रहे थे। उस वक्त अन्य मुसाहिबोंके अलावा मिर्ज़ा भी मौजूद थे। आमके पेड़ रंग-बिरंगके ख़ूबसूरत आमोंसे लद रहे थे। यहाँके आम बादशाह, राजकुमारों और बेगमोंके सिवा किसीको न मिल सकते थे। मिर्ज़ा बार-बार आमोंकी तरफ़ टकटकी लगाते। जब कई बार बादशाहने इन्हें ऐसा करते देखा तो पूछा—"मिर्ज़ा

१ हज़रत मुहम्मद द्वारा फ़रमाई बातोंका संकलन २ क़ैदी ३ पुख़्ता ४ वहम भ्रम।

इतने ध्यानसे क्या देख रहे हो ?' मिर्ज़ाने हाथ रोककर कहा— 'पीरो मुर्शिद यह जो किसी बुजुर्गने कहा है—

बरसरे दाना बनविश्ता अयाँ,
कि ई फलाँ इब्न फलाँ इब्न फलाँ।

यही देख रहा हूँ कि किसी दानेपर मेरा और मेरे बाप-दादाका नाम भी लिखा है या नहीं ?'

बादशाह मुसकराये और उसी रोज एक बहँगी चुने आमोंकी मिर्ज़ाको भेजवा दी।

× ×

बेशक गधा नहीं खाता।

मिर्ज़ाके एक दोस्त व हकीम रज़ीउद्दीन खाँ। उन्हें आम अच्छे नहीं लगते थे। एक दिनकी बात है कि वह मिर्ज़ाके साथ उनके मकानपर बरामदेमें बैठे थे। एक गधेवाला अपने गधे लिये हुए गलीसे गुज़रा। गलीमें आमके छिलके पड़े थे। गधेने सूँघकर छोड़ दिये। हकीम साहबने कहा— 'देखिए, आम ऐसी चीज़ है जिसे गधा भी नहीं खाता।

मिर्ज़ाने कहा— 'बेशक गधा नहीं खाता।

× ×

पीड़ामें भी विनोद

बीमारीके दिनोंकी बात है। [illegible] बहुत था। मिर्ज़ा पलंगपर लेटे दर्दसे कराह रहे थे। उस वक्त उनके प्रिय शिष्य मीर मेहदी मजरूह बैठे थे। मिर्ज़ाको कराहता देख मजरूह पाँव दाबने लगे। मिर्ज़ाने कहा— 'भई, तू सय्यदज़ादा है, मुझे क्यों गुनहगार करता है ?' मजरूहने न माना और कहा कि 'आपको ऐसा ही ख्याल है तो पैर दाबनेकी उजरत दे दीजिएगा।

मिर्ज़ाने कहा— "हाँ इसका मुज़ायक़ा नहीं।

जब मजरूह पैर दाब चुके उन्होंने उजरत माँगी।

मिर्ज़ाने कहा— 'भैया! कैसी उज्रत? तुमने मेरे पाँव दाबे मैंने तुम्हारे पैसे दाबे। हिसाब बराबर हो गया!"

× ×

शराबीको और क्या चाहिए ?

किशोरावस्थामें जो शराब उनके मुँह लगी वह आखीर दमतक न छूटी। यद्यपि अपनी इस कुअभ्यासपर मन ही मन वह लज्जित थे पर जब कोई शराबपर आक्षेप करता तो उसे ऐसा जवाब देते कि बोलती बन्द हो जाती। शराब की निस्बत उनकी विनोद-व्यंगपूर्ण बातें प्रसिद्ध हो गयी हैं। एक बारकी बात है कि एक व्यक्तिने उनके सामने शराबकी बड़ी बुराई की और कहा कि शराब पीना महान् पाप है।

ग़ालिबने बड़ी गम्भीरतासे पूछा— 'अच्छा कोई पिये तो उसका क्या होता है?

उसने कहा— 'छोटी-सी बात यह है कि शराब पीनेवालेकी दुआ क़बूल नहीं होती।"

मिर्ज़ा बोले— 'भाई जिसे शराब मयस्सर है उसको और क्या चाहिए जिसके लिए दुआ माँगे?'

× ×

जाड़ेमें भी ?

जाड़ेका मौसिम था। एक दिन नवाब मुस्तफ़ा ख़ाँ मिर्ज़ाके घर पहुँचे। मिर्ज़ाने उनके आगे शराबका गिलास भरकर रख दिया। वह उनका मुँह ताकने लगे। मिर्ज़ाने कहा— 'नोश फ़र्माइए।' चूँकि उन्होंने शराब पीनी छोड़ दी थी इसलिए बोले— 'मैंने तो तोबा[1] कर ली है।

मिर्ज़ाने आश्चर्यसे पूछा— 'हैं! क्या जाड़ेमें भी?'

× ×

---

१ किसी धर्म-विरुद्ध वस्तुको ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा।

एक महाशय मुरादाबादसे दिल्ली घूमनेके लिए आये थे। वह मिर्ज़ासे भी मिले। कट्टर आदमी थे धार्मिक सिद्धान्तों और परम्पराओंके माननेवाले थे। जब वह पहुँचे मिर्ज़ा साग़र व मीना[1] सामने रखे बैठे थे। पी रहे थे। आगन्तुकको मालूम न था कि मिर्ज़ा शराब पीते हैं। उन्होंने शराबका शीशा शर्बतका गिलास समझकर हाथमें उठा लिया। इसपर पास बैठे दूसरे व्यक्तिने कहा—'जनाब यह शराब है।' हज़रतने तुरन्त गिलास रख दिया और कहा—'मैंने तो शर्बतके धोखेमें उठा लिया था।'

धोखेमें नजात मिल गयी।

मिर्ज़ाने मुसकराकर उनकी तरफ़ देखा और कहा—'वाह रे नसीब[2]! धोखेमें नजात[3] हो गयी।'

× ×

मिर्ज़ाकी एक बहिन बीमार थीं। यह उनका हाल पूछने गये। बहिन बोलीं—'भैया अब तो चला-चलीका वक़्त है। ख़ैर, उसका क्या? पर क़र्ज़का फ़िक्र व अफ़सोस है कि गरदनपर लिये जाती हूँ।' मिर्ज़ाने कहा—'भला यह भी कोई फ़िक्रकी बात है? ख़ुदाके यहाँ मुफ़्ती सदरुद्दीन थोड़े बैठे हैं जो डिगरी इजरा करके पकड़वा बुलायेंगे?'

यहाँ कौन पकड़ेगा?

× ×

एक दिन मिर्ज़ाके एक शिष्यने उनसे आकर कहा—"हज़रत आज मैं अमीर ख़ुसरोके मक़बरेपर गया था। वहाँ एक खिरनीका पेड़ है। मैंने ख़ूब खिरनियाँ खाईं। खिरनियोंका खाना था कि मेरा ज़मीर रोशन हो गया। (लोगोंका ऐसा विश्वास था कि वहाँकी खिरनियाँ खानेसे योग्यता बढ़ जाती है)। मिर्ज़ा बोले—"अरे मियाँ! तीन कोस जाकर

मेरे पीपलके पत्ते क्यों न खा लिये

---

१ प्याला और सुराही, २. भाग्यकी बात है, ३ मुक्ति।

गये। मेरे पिछवाड़ेके पीपलकी पत्तियाँ या बेचे तो इससे भी ज़्यादा फ़ायदा होता।

× ×

पूर्वजोंकी छोड़ी हुई सम्पत्ति जब मिर्ज़ाके ख़र्चीले और उदार स्वभावके कारण ख़त्म हो गयी तो रुपयेकी तंगी सदा रहने लगी। यहाँ तक कि कभी-कभी पासमें एक टका न होता। बच्चे गिड़गिड़ाकर रह जाते और उन्हें पैसे न मिलते। एक दिन हुसेन अलीख़ाँ खेलता हुआ इनके पास आया और कहा— 'दादा जान! मिठाई लूँगा।" इन्होंने उत्तर दिया— बेटे पैसे नहीं हैं। वह सन्दूकची खोलकर पैसे इधर-उधर टटोलने लगा। पर वहाँ क्या था? इन्होंने झट यह शेर कहा—

चीलके घोंसलेमें मांस कहाँ ?

दिरमो दाम अपने पास कहाँ!
चीलके घोंसलेमें माँस कहाँ!

× ×

रमज़ानका महीना था। नवाब हुसेन मिर्ज़ाके यहाँ बैठे थे। मिर्ज़ा तो रोज़ा-नमाज़ कुछ रखते न थे। इन्होंने पान मँगवाकर खाये। वहाँ एक धर्मनिष्ठ मुसलमान मौजूद थे। उन्होंने आश्चर्यसे पूछा— क़िबला! आप रोज़ा नहीं रखते?

शैतान ग़ालिब है

मिर्ज़ाने मुसकराकर उत्तर दिया— शैतान ग़ालिब है। †

× ×

–

किसी दुकानदारने उधार की गयी शराबके दाम वसूल न होनेपर मुकदमा चला दिया। मुकदमेकी सुनवाई मुफ्ती सदरउद्दीनकी अदालतमें हुई। आरोप सुनाया गया। इनको जवाबदेही क्या करना था, शराब तो उधार मँगवाई ही थी और दाम भी चुकते न कर पाये थे। इसलिए कहते क्या? आरोप सुनकर सिर्फ यह शेर पढ़ दिया—

क़र्ज़की शराब

क़र्ज़की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ,
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन

मुफ्ती साहबने वादीको अपने पाससे रुपये दे दिये और मिर्ज़ाको छोड़ दिया।

× ×

यह बात पहिले लिखी जा चुकी है कि इनका पारिवारिक जीवन सुखी न था। इसलिए अन्तरकी टीस एवं व्यंग-वृत्ति दोनोंके मिश्रणसे कभी-कभी बड़ी कठोर बातें लिख या कह जाते थे। इनके शिष्योंमें एक उमराव सिंह था।

पत्नी या फाँसीका फन्दा?

उसकी दूसरी पत्नी मर गयी जिसके नन्हें-नन्हें बच्चे थे। किसी परिचितने उसका हाल लिखा और यह भी कि इन नन्हें बच्चोंके लिए बेचारा तीसरी शादी न करे तो क्या करे? बच्चोंकी पर्वरिश कैसे हो?' मिर्ज़ाने उसके जवाबमें लिखा— 'उमराव सिंहके हालपर उसके वास्ते रहम और अपने वास्ते रश्क आता है। अल्लाह-अल्लाह! एक वह है कि दो-दो बार उसकी बेड़ियाँ कट चुकी हैं और एक हम हैं कि एक ऊपर पचास बरससे जो फाँसीका फन्दा गलेमें पड़ा है तो न फन्दा ही टूटता है, न दम ही निकलता है। उसको समझाओ कि भाई तेरे बच्चोंको मैं पाल लूँगा तू क्यों बलामें फँसता है?'

× ×

मियाँ तोते! तुम्हें क्या फ़िक्र है?

जाड़ेका मौसिम था। तोतेका पिंजरा सामने रखा था। सर्द हवा चल रही थी। तोता सर्दीके कारण परोंमें मुँह छिपाये बैठा था। मिर्ज़ाने देखा और उनकी अन्दरकी चुभन बाहर निकली। बोले— 'मियाँ मिट्ठू! न तुम्हारे जोरू न बच्चे। तुम किस फ़िक्रमें यों सर झुकाये हुए बैठे हो?'

× ×

आपसे बढ़कर भी बला है!

इसी तरह एकबारकी बात है कि जिस मकानमें रह रहे थे उसमें कई त्रुटियाँ थीं इसलिए तकलीफ़ थी। मकान बदलना चाहते थे। एक दिन खुद एक मकान देखकर आये। उसका बैठकखाना तो पसन्द आ गया पर जल्दीमें अन्तःपुरवाला हिस्सा न देख सके। फिर यह भी बात रही होगी कि मेरे उस हिस्सेके देखनेसे क्या फ़ायदा? जिसे वहाँ रहना है वह खुद देखे और पसन्द करे। इसलिए बाहरी हिस्सा देखनेके बाद जब लौटे तो बीबीसे ज़िक्र किया और अन्दरका हिस्सा देखनेके लिए खुद उन्हें भेजा। वह गयीं और देखकर आईं तो उनसे पूछा— 'पसन्द है या नापसन्द?' बीबीने कहा— 'उसमें तो लोग बला बताते हैं।'

मिर्ज़ा कब चूकने वाले थे। बोले— 'क्या दुनियामें आपसे बढ़कर भी कोई बला है?'

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके हास्य और व्यंग्यमें जो गहरा विष है। यह विष उनके जीवनका एक अंग है जिसकी समीक्षा हम स्वतन्त्र रूपसे आगे करेंगे।

ग़ालिब जीवन एवं काव्यकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जब ग़ालिब पैदा हुए, दिल्लीकी बादशाहतके अन्तिम दिन थे। औरंगजेबके बाद मुग़ल साम्राज्यका जो पतन आरम्भ हुआ था वह अपनी चरम काष्ठाको पहुँच गया था। 'मीर' के ज़मानेमें निराशा और आत्मपलायनके कारण मुहम्मद शाह इत्यादि आकण्ठ विलासके पंकमें धँस गये थे। राज-काजकी ओर कोई ध्यान न देता था। दरबार षड्यन्त्रोंका एक अड्डा बन गया था। यद्यपि ग़ालिबके जीवन-कालके अन्तिम तीसों मुग़ल सम्राट् नामके रूपमें बहुत बचे थे पर शासनका शीराज़ा बिखर चुका था। मुग़लोंकी प्यारी दिल्लीका यौवन-वसन्त बीत चुका था यह शिशिरके दिन थे। लुटी लुटी अपमानित दिल्ली बैठी थी और अपने वर्तमान पर अतीतका भयानक अट्टहास सुनकर सिहर-सिहर उठती थी। पर इस लुटी कोई वंचिता विधारिणीमें न जाने कैसा यौवन था कि बार-बार खोकर, लुटकर पददलित होकर भी वह उठ खड़ी होती थी। उसके गर्वित सौन्दर्यमें भी न जाने कैसा जादू था कि मिटकर भी नहीं मिटता था। जैसे इतिहासके खण्डहर आकर्षित करते हैं वैसे ही वह आकर्षित करता था। अभिशप्त साम्राज्यकी श्मशानभूमि दिल्लीके मुल्क अभियान-मार्गमें कितने राजाओं नवाबों सरदारोंको कत्ल-काटकर छोड़ देती थी वे निर्जीव होकर गिर पड़ते थे तब दूसरे उनका स्थान ग्रहण कर लेते थे।

साम्राज्योंकी श्मशान भूमि

ग़ालिबके जन्मके पूर्व वह अनेक बार लुट चुकी थी। बंगाल, अवध, रुहेलखण्ड, राजस्थान, हैदराबाद, महाराष्ट्र, पंजाबके भूभाग तथा राज्य बहुत कुछ स्वतन्त्र हो चुके थे। बंगाल-बिहारमें तो ईस्ट इण्डिया कम्पनीके पाँव अच्छी तरह जम चुके थे परिणामतः बनिया देशमें पूर्व द्वारसे आकर दूरतक फैल चुका था मद्रास तथा बम्बईके राजमार्गपर ब्रिटिश राजपुरुषके चरणोंकी धमक दूर-दूरतक सुनाई पड़ती थी। अब वह अपना वणिक्रूप छद्मवेष बहुत-कुछ उतार चुका था और अपने वास्तविक शासक वेषमें दिखाई पड़ने लगा था। अब वह शासन-व्यवस्थामें हस्तक्षेप करने लगा था। लोग कुढ़ते थे खीझते थे पर उसकी कृपा और उसके दाँवपर टूट पड़ते थे। सारे देशमें अराजकताकी स्थिति थी कोई व्यापक शासकीय बन्धन तो था नहीं नैतिक बन्धन भी टूट गया था। आज जो दोस्त बनता दोस्तीकी शपथ लेता कुरान माथेसे लगाकर साथ देनेका आश्वासन देता वही मौका मिलते कलेजेमें कटार भोंक देता। किसीपर किसीका विश्वास न था। स्वार्थ-लिप्सा अब नंगी होकर नाचने लगी थी। सुव्यवस्थित शासन एवं प्रजापालनका कार्य भूल चुके थे और विलासी तथा लुटेरे हो रहे थे। लूटके कार्यमें स्थिति और समयके अनुसार कभी मित्रता होती कभी शत्रुता। बेटा बाप और भाई भाईको क्षण-भरमें भूल जाता था।

राज-मार्गपर ब्रिटिश चरण

नैतिक विशृंखलता

बादशाह बादशाह तो थे पर सामन्तोंके अत्याचारसे प्रजाकी रक्षा न कर सकते थे। बार-बार लुटकर दिल्ली श्री-हीन हो चुकी थी उसमें कोई आर्थिक स्थिरता न थी। सैनिकों एवं राजकर्मचारियोंको नियमित वेतन नहीं मिल पाता था। इससे वे भी लूटपाट करके काम चलाते थे और बादशाहका नियन्त्रण स्वीकार न करते थे। कौन किसके साथ है इसका कुछ पता न चलता था। रोज जोड़-तोड़ नये सौदे होते रहते थे।

दिल्लीकी बादशाहत अन्तिम साँस ले रही थी। अकबर बादशाह

वज़ीर और अमीर-उमराके हाथकी कठपुतली बनकर जीता था। वे उसे अपने मतलबके लिए रखते थे और मतलब हल न होनेपर साँठ-गाँठकर क़त्ल करा देते, मरवा देते या अपदस्थ कर देते। उसे बनाये इसलिए रखते थे कि देहलीके बादशाह ही पुरानी पत्न-सम्बन्ध कर सकता है। इस पतन-कालमें भी दिल्लीके बादशाहका जनतामें सम्मान अक्षय था। इसलिए उसे ख़त्म करते न बनता था।

बेताजो-तख़्त शाह आलम

ग़ालिबके बचपनमें शाह आलम द्वितीय (पहिलेके शाहज़ादा अली गौहर) तख़्तपर थे। इस ज़मानेके बादशाहकी सारी ज़िन्दगी एक दुखद कहानी है। पिता आलमगीर द्वितीय (१७५४-१७५९) की मृत्यु* के बाद उसे १२ सालतक तो बिहारमें ही तख़्तसे दूर रहना पड़ा। उस समय दिल्लीकी हालत ऐसी अनिश्चित और भयानक थी कि उधर जानेका ही साहस न हुआ। बापकी मृत्युके बाद १७६१में पानीपतकी लड़ाईमें मराठोंकी भयानक पराजय एवं उसके बाद अब्दाली द्वारा दिल्लीकी लूटमें स्थिति बहुत ख़राब भी थी। इसलिए उसका बड़ा बेटा अली गौहर (भावी शाह आलम) दूर-दूर मारा-मारा फिरता रहा। उसका बहुत समय इलाहाबाद और बिहारमें बीता। वह तख़्तसे दूर असहाय फिर रहा था उधर अंग्रेज़ बढ़े आ रहे थे। उसे यह बात खटकी थी। पटनामें पहले उसने मीर क़ासिमको बंगालका नवाब बनाया जिसे पहिले तो अंग्रेज़ोंने स्वीकार किया किन्तु बादमें मीर क़ासिमकी स्वतन्त्र नीतिसे चिढ़कर उसे बंगालसे निकाल दिया। शाह आलम मीर क़ासिम एवं अवधके नवाब

---

* मृत्यु क्या क्यों वस्तुतः इसे इमादुल्मुल्कने क़त्ल करा दिया था। बड़ा नमाज़ी पर परले सिरेका विलासी था। इसे बुढ़ौतीमें भी नई-नई शादियाँ करनेकी धुन थी। ६ सालकी उम्रमें जब इसे [illegible] थे इसने एक नर्तकीसे विवाह किया।

वजीर शुजाउद्दौलाने अंग्रेजोंके विरुद्ध लड़नेके लिए आपसमें गठबन्धन किया। १७६४में बक्सरकी लड़ाईमें तीनोंकी पराजय हुई और शाह आलम नजरबन्द कर लिया गया। अंग्रेज उसे मातहतीकी मुहर बनाना चाहते थे इसलिए उन्होंने सन्धि कर ली। १२ अगस्त १७६५को कुछ सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए वे बादशाहसे इलाहाबादमें मिले जहाँ उसे इन दिनों रखा गया था। बादशाह (शाह आलम) ने उन्हें बंगाल बिहार और उड़ीसाकी दीवानी दे दी। अंग्रेजोंने बादशाहको २६ लाख वार्षिक देना स्वीकार किया। १७६५ से १७७१ ई० तक वह अंग्रेजोंके संरक्षणमें रहा पर अपनी अपमानजनक स्थितिसे अन्दर ही अन्दर वह बड़ा असन्तुष्ट था। वह बराबर दिल्ली जानेके लिए अधीर था और तदर्थ प्रयत्न कर रहा था। अन्तमें उसकी इच्छा पूरी हुई। मराठों विशेषतः माधवराव सिन्धियाकी सहायतासे २५ दिसम्बर १७७१को उसने बादशाहके रूपमें दिल्लीमें प्रवेश किया।

अंग्रेजोंके संरक्षणमें

दिल्लीमें क्या था? टूटा सिंहासन था लूटे महल थे दरोदीवारसे हसरत टपकती थी। स्थिति अत्यन्त निराशाजनक थी। खजाना खाली था शाही परिवारको जब-तब भूखों मरनेकी नौबत आ जाती। कोई बिना मतलब इस वक्त सहायता करनेको तैयार न था। सबको लक्ष्मीकी भूख थी और उसी चीज का अभाव था। मराठे सहायता करनेको तैयार थे परन्तु उसके बदले ४ लाख रुपये एवं कुछ प्रदेश चाहते थे। सौदा पटता न होते देख उन्होंने दिल्लीको घेर लिया। विवश होकर सम्राट्ने कोड़ा एवं इलाहाबादके इलाके उन्हें सौंप दिये।

दिल्लीमें

यह सब करनेपर भी उसकी चिन्ता कम न हुई। सच पूछें तो उसे जीवनभर कठिनाइयोंसे छुट्टी न मिली। दरबार षड्यन्त्रोंका अड्डा बन गया था। दिल्लीपर मराठोंका आतंक था। उधर बादशाहके पूर्व सहायक अवधके नवाब शुजाउद्दौला भी अंग्रेजोंसे मिल गये थे। सहारनपुरकी ओर

सिंधियाने दिल्लीको अपने अधिकार और संरक्षणमें ले लिया। १८ ३में अंग्रेजोंके सेनापति लार्ड लेकने दिल्ली ले ली किन्तु शाह आलमको बादशाह बनाये रखा। १९ नवम्बर १८ ६ को शाह आलमकी मृत्यु हो गयी। उस समय गालिब सिर्फ नौ सालके थे।

शाह आलम अन्तिम मुगलोंमें काफ़ी योग्य था। अरबी फ़ारसी तुर्की संस्कृत तथा हिन्दी भलीभाँति जानता था। उर्दू, फ़ारसी हिन्दी और पंजाबीमें कविता करता था जैसा कि रामपुरसे प्रकाशित उसके काव्य-संग्रह 'नादिराते शाही' से प्रकट होता है। बीन का इत्यादि अंग्रेजोंने जो उसके सम्पर्कमें आये उसके गुणोंकी प्रशंसा की है पर उसकी योग्यता किसी काम न आई। जमानेने उसका साथ नहीं दिया और सारा जीवन कठिनाइयों एवं मुसीबतोंमें ही बीता।

अकबर द्वितीय

शाह आलमके बाद अकबर शाह द्वितीय गद्दीपर बैठा। इसमें न बाप की योग्यता थी न साहित्यिक प्रतिभा। हाँ यह सीधा-सादा भलामानस था। अंग्रेज जान चुके थे कि दिल्लीका बादशाह नाममात्रका बादशाह है उसकी अपनी कोई ताक़त नहीं है इसलिए उसकी अधीनता स्वीकार करनेको तैयार न थे ज्यादासे-ज्यादा बराबरीका दर्जा देनेको राजी थे। अकबरशाह द्वितीय नाम-मात्रका सम्राट् रहा। उसे पेंशन मिलती रही। वस्तुतः बादशाहकी उपाधि एक सम्मानकी निशानी मात्र रह गयी थी। जबतक महादजी सिंधिया जीवित रहे, दिल्लीपर अंग्रेजोंका प्रभाव बढ़ने न पाया। वह एक प्रबल योद्धा ही नहीं थे कुशल राजनीतिज्ञ, साहसी एवं गुणी पुरुष भी थे। किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसे भी वह जानते-समझते थे। उनके मरते ही अंग्रेजोंका प्रभाव बढ़ने लगा। अब कोई उनका प्रतिद्वन्द्वी न रह गया था। जैसा मैं कह चुका हूँ कि अकबर द्वितीय व्यक्तिगत रूपसे सीधा और भला था पर उसमें शाहआलमकी-सी शासन-क्षमता न थी। शाह आलम भाग्य-[illegible]ला था। जीवनके उत्थान-पतनसे गुजरा था। कठिनाइयों

एवं मुसीबतोंके बीच बड़ा था उसमें सूझ-बूझ थी ऊँच-नीच समझनेकी ताकत थी पर अकबर द्वितीय दरबार एवं अन्तःपुरकी पतनशील प्रवृत्तियोंसे पूर्ण वातावरणमें पला था। उसने राज-कार्यमें जरा भी दिलचस्पी न ली सारा काम बेगमोंपर छोड़ दिया। उसकी माँ कुदसिया बेगम बड़ी चतुर महिला थी। वह उसकी पत्नी मुमताजमहलके साथ साथ राज-काज देखती। अंग्रेज रेजीडेण्ट उनसे बातें करनेकी जरूरत पड़ती तो वे ही बीचमें पर्दा डालकर बातें करती थीं।

सच पूछें तो बादशाह अंग्रेजोंका वजीफाख्वार मात्र रह गया था। जनतामें बादशाहकी इज्जत थी इसलिए जनताको दिखानेके लिए वह उसे बादशाह बनाये हुए थे पर उस महत्त्व देनेको तैयार न थे। जमाना बदल गया था। कम्पनीके

सबसे प्रिय पुत्र तथा मृत्य-को बढ़ती हुई शक्ति

बनिये भारतके शासक थे। यहाँ तक कि अब परन्तु एवं किलेके राजकोष मामलामें भी अंग्रेज हस्तक्षेप करने लगे थे। युवराजके निर्वाचनके लिए भी उनकी स्वीकृति आवश्यक हो गयी थी। मुमताजमहल अपने सबसे छोटे राजकुमार मिर्जा जहाँगीरको युवराज बनाना चाहती थीं पर अंग्रेज उसे युवराजके रूपमें माननेको तैयार न थे वे ज्येष्ठ पुत्र अबुज्फरको युवराज बनाना चाहते थे। इस समस्याको लेकर बादशाह और अंग्रेजोंमें संघर्ष भी हो गया। अकबरशाहके स्वाभिमानको गहरी चोट लगी। इसलिए यह शान्तिप्रिय बादशाह भी अपनी ऐसी हीन स्थिति माननेको तैयार न हुआ। उसने अंग्रेजोंके मतको उपेक्षा करके मिर्जा जहाँगीरके अभिषेककी घोषणा भी कर दी। ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि अंग्रेजोंकी शक्ति बहुत बढ़ गयी थी किन्तु उन्हें जनमतका भय था और चूँकि जनतामें दिल्लीका बादशाह तत्कालीन भारतीय शक्तिका प्रतीक मानकर पूजा जाता था इसलिए इच्छा न होते हुए भी अंग्रेजोंको बादशाहका विशेष सम्मान करना पड़ता था। वास्तविक तथ्य जो हो पर कागजपर दिल्लीका बादशाह एक स्वतन्त्र सम्राट् था। वह

सिंधियाने दिल्लीको अपने अधिकार और संरक्षणमें ले लिया। १८ ३में अंग्रेज़ोंके सेनापति लार्ड लेकने दिल्ली ले ली किन्तु शाह आलमको बादशाह बनाये रखा। १९ नवम्बर १८ ६ को शाह आलमकी मृत्यु हो गयी। उस समय ग़ालिब सिर्फ़ नौ सालके थे।

शाह आलम अन्तिम मुग़लोंमें काफ़ी योग्य था। अरबी फ़ारसी तुर्की संस्कृत तथा हिन्दी भलीभाँति जानता था। उर्दू, फ़ारसी हिन्दी और पंजाबीमें कविता करता था जैसा कि रामपुरसे प्रकाशित उसके काव्य-संग्रह 'नादिराते शाही' से प्रकट होता है। चीन का इत्यादि अंग्रेज़ोंने जो उसके सम्पर्कमें आये उसके गुणोंकी प्रशंसा की है पर उसकी योग्यता किसी काम न आई। ज़मानेने उसका साथ नहीं दिया और सारा जीवन कठिनाइयों एवं मुसीबतोंमें ही बीता।

शाह आलमके बाद अकबर शाह द्वितीय गद्दीपर बैठा। इसमें न बाप-की योग्यता थी न साहित्यिक प्रतिभा। हाँ वह सीधा-सादा भलामानस था। अंग्रेज़ जान चुके थे कि दिल्लीका बादशाह नाममात्रका बादशाह है, उसकी अपनी कोई ताक़त नहीं है इसलिए उसकी अधीनता स्वीकार करनेको तैयार न थे ज़्यादासे-ज़्यादा बराबरीका दर्जा देनेको राज़ी थे। अकबरशाह द्वितीय नाम-मात्रका सम्राट् रहा। उसे पेंशन मिलती रही। वस्तुतः बादशाहकी उपाधि एक सम्मानकी निशानी मात्र रह गयी थी। जबतक महादजी सिंधिया जीवित रहे, दिल्लीपर अंग्रेज़ोंका प्रभाव बढ़ने न पाया। वह एक प्रबल योद्धा ही नहीं थे कुशल राजनीतिज्ञ सहृदय एवं गुणी पुरुष भी थे। किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसे भी वह जानते-समझते थे। उनके मरते ही अंग्रेज़ोंका प्रभाव बढ़ने लगा। अब कोई उनका प्रतिद्वन्द्वी न रह गया था। जैसा मैं कह चुका हूँ कि अकबर द्वितीय व्यक्तिगत रूपसे सीधा और भला था पर उसमें शाहआलमकी-सी शासन-क्षमता न थी। शाह आलम आपदाओंकी गोदमें पला था, जीवनके उत्थान-पतनसे गुज़र चुका था, कठिनाइयों

अकबर द्वितीय

जबतक अकबर-पेलेसको सबसे प्रिय पुत्र तथा भूल्यं किया करता था। अंग्रेजोंको यह बात खटकती थी। अकबरशाहने लार्ड मिण्टोको इसी प्रकार सम्बोधित करते हुए मिर्ज़ा जहाँगीरको ही युवराज बनाने तथा उसके अभिषेकोत्सवकी सूचना दी। एक स्वतन्त्र शासकके रूपमें उसे ऐसा करने-का पूर्ण अधिकार था। पर वह अंग्रेजोंका पेंशनर या वज़ीफ़ाख़ार था इसलिए उसके इस अधिकारपर अंग्रेजोंकी स्वीकृति अनिवार्य थी। लार्ड मिण्टोने बादशाहके पत्रको स्वीकार नहीं किया इस प्रकारके पत्रको भविष्यमें स्वीकार करनेमें असमर्थता प्रकट की और दिल्लीके रेज़ीडेण्टको ऐसे समारोहमें सम्मिलित होनेसे मना कर दिया। उन्होंने रेज़ीडेण्टके ज़रिये यह सन्देश भी भेज दिया कि वक्त आ गया है कि मुग़ल बादशाह तथा अंग्रेज सरकारके मध्य जो वास्तविक वैधानिक सम्बन्ध है उसका निर्णय हो जाना चाहिए।

अंग्रेजोंके साथ संघर्ष

बादशाहने अपने प्रतिनिधि शाह हल्दीके द्वारा कलकत्ता बड़े लाटके पास खिलअत भेजी जिसे लेनेसे उसने इन्कार कर दिया। यही नहीं भविष्य-में मुग़ल बादशाहके किसी प्रतिनिधिको राजदूतके रूपमें स्वीकार करनेमें भी असमर्थता प्रकट कर दी। इससे बादशाह और बेगमोंको बड़ा दुःख और चिन्ता हुई। आपसमें सलाह हुई बेगमोंने सोचकर एक राह निकाली। उन्होंने राजा प्राणकृष्ण नामके एक आदमीको रेज़ीडेण्टकी बिना जानकारीके कलकत्ता होते हुए विलायत सम्राट्के दरबारमें मुग़ल राजदूतके रूपमें भेजनेकी व्यवस्था की पर राजा प्राणकृष्णके कलकत्ता पहुँचते-पहुँचते बात खुल गयी। लार्ड मिण्टोने इस आदमीकी मुहर तथा रेज़ीडेण्टके बादशाहके नाम लिखा प्रत्ययपत्र छिनवा लिया।

कुदसिया बेगमको अंग्रेजोंका यह व्यवहार बहुत चुभा। वह चुप बैठनेवाली महिला न थी। अपने पति शाह आलमके ज़मानेमें उन्होंने बड़े-बड़े उतार-चढ़ाव देखे थे। वह बेटे मिर्ज़ा जहाँगीरके साथ स्वयं

तो क्रुद्ध हुए परन्तु सम्राट्-सरकारपर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। बोर्ड आफ कण्ट्रोलके अध्यक्ष सर जास्स हास्ट तो बड़े ही प्रभावित हुए। उन्होंने राजा राममोहन रायके पक्षको स्वीकार किया और उनका स्मृतिपत्र विलियम चतुर्थके सामने उपस्थित कर दिया। सम्राट् तथा उनके मन्त्रियों-पर भी काफ़ी असर पड़ा क्योंकि यह स्मृतिपत्र बड़े ही अच्छे ढंगपर तैयार किया गया था और इसमें कम्पनी-सरकारके विरुद्ध तथ्योंके आधार पर, अनेक आरोप थे। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें आरोप ही नहीं थे ऐसे उचित सुझाव भी थे जिनसे दोनों पक्षोंका सम्मान सुरक्षित रहता था।

नियतिका उलटा चक्र

पर नियतिका चक्र किसी और दिशामें चल रहा था। सम्राट्-सरकार द्वारा स्मृतिपत्रपर कुछ निर्णय होनेके पूर्व विलायतमें ही राजा राममोहन रायकी मृत्यु हो गयी। कम्पनीके डाइरेक्टरोंमें अनेक प्रभावशाली लोग थे। वे सब इस स्मृति-पत्रके विरुद्ध थे और उसकी बातोंको असत्य बताते थे। सम्राट् तथा उनके मन्त्रियोंका रुख अनुकूल था पर राजा राममोहन रायकी मृत्युके बाद उस प्रश्नपर बोलने और अपना पक्ष सिद्ध करनेवाला कोई न रह गया और बातें जहाँकी तहाँ रह गयीं।

हास्यजनक स्थिति

इस परिस्थितिका उलटा परिणाम हुआ। कम्पनी-सरकार और चिढ़ गयी। जब नया रेज़ीडेण्ट हाकिन्स दिल्ली आया तो उसने बादशाह एवं क़िलेपर होनेवाले व्ययमें और कमी कर दी। नज़र देनेका वक्त आया तो नज़र देनेका विरोध किया और देना स्वीकार भी किया तो एक हाथसे नज़र दी। उसने बेगमों के स्वागतमें खड़ा होनेसे भी इनकार किया। इससे स्पष्ट है कि बादशाहकी स्थिति हास्यजनक थी। यह एक परम्पराको बनाये रखनेकी स्थिति थी— एक ऐसी परम्पराको जिसके संचालनकी शक्ति उसमें न रह गयी हो। यह स्थिति पूर्णतः अंग्रेज़ोंके ऊपर निर्भर थी। अपितु इस परम्पराको केवल

इस प्रकार बादशाहको अपने पहिलेके रुखको छोड़कर पीछे आना पड़ा। दोनों पहिली बार समान स्थितिमें मिले। कोई चारा न था क्योंकि शक्ति न थी कि वह अपनी स्वाधीनता एवं स्वतन्त्र वृत्तिकी रक्षा कर सकता। उसने यह भी सोचा कि ऐसा करनेसे हमारी वृत्ति (अलाउन्स) की वृद्धि किये जानेके मार्गमें जो अड़चनें आ गयी हैं वे दूर हो जायेंगी। पर उसकी यह आशा भी फलवती न हुई। अंग्रेज दिल्लीकी कुव्यवस्था एवं विफलतासे पूर्णतः परिचित हो चुके थे और उसका लाभ उठा रहे थे। इससे बादशाहको बड़ी निराशा हुई तथा क्षोभ हुआ और १८११ में जब लार्ड मिंटो आये और मुलाकातका सवाल उठा तो बादशाहने मिलनेसे इनकार कर दिया। अब बादशाहको अनुभव हुआ कि कम्पनी-सरकारसे बातचीत व्यर्थ है। वह इस नतीजेपर पहुँचा कि कम्पनी-सरकार के विरुद्ध इंग्लैण्डके सम्राट्से अपील करनेके सिवा दूसरा चारा नहीं है। सौभाग्यसे उसे इस कार्यके लिए एक योग्य आदमी मिल गये। बंगालमें इस समय राममोहन रायका प्रकाश फैल रहा था। बादशाह एवं बेगमोंने उनसे सम्बन्ध स्थापित किया। उन्हें 'राजा'की उपाधि प्रदान की और इंग्लैण्डके सम्राट्के दरबारमें उन्हें मुगल राजदूत बनाकर भेजनेका निश्चय हुआ। राजा राममोहन रायने इस कार्यको स्वीकार किया। सम्राट् विलि-यमको दिये जानेवाला मेमोरियल (स्मृति-पत्र) तैयार किया गया। सबने उसे पसन्द किया। कम्पनी-सरकारके बीच बड़ी सनसनी फैली। उन लोगोंने हर तरहसे इसका विरोध किया अड़ंगे डाले पर इस बार बादशाह अपनी तेजस्विनी माँ एवं पत्नीके कारण जरा भी विचलित न हुआ। अड़चनोंके बावजूद राजा राममोहन रायने समयपर विलायतके लिए प्रस्थान किया। विलायत पहुँचकर उन्होंने मित्र व विख्यात ह्यूमसे बात की और अपना पक्ष उपस्थित किया उसके कम्पनीके डाइरेक्टर

इंग्लैण्डके सम्राट्को स्मृतिपत्र

राजा राममोहन राय द्वारा बादशाहका प्रतिनिधित्व

तो प्रसन्न हुए परन्तु सम्राट्-सरकारपर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। बोर्ड आफ कन्ट्रोलके अध्यक्ष सर चार्ल्स ग्रान्ट तो बड़े ही प्रभावित हुए। उन्होंने राजा राममोहन रायके पक्षको स्वीकार किया और उनका स्मृतिपत्र विलियम चतुर्थके सामने उपस्थित कर दिया। सम्राट् तथा उनके मन्त्रियों पर भी काफी असर पड़ा क्योंकि यह स्मृतिपत्र बड़े ही अच्छे ढंगपर तैयार किया गया था और इसमें कम्पनी-सरकारके विरुद्ध तथ्योंके आधार पर, अनेक आरोप थे। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें आरोप ही नहीं थे ऐसे उचित सुझाव भी थे जिनसे दोनों पक्षोंका सम्मान सुरक्षित रहता था।

नियतिका उलटा चक्र

पर नियतिका चक्र किसी और दिशामें चल रहा था। सम्राट्-सरकार द्वारा स्मृतिपत्रपर कुछ निर्णय होनेके पूर्व विलायतमें ही राजा राममोहन रायकी मृत्यु हो गयी। कम्पनीके डाइरेक्टरोंमें अनेक प्रभावशाली लोग थे। वे सब इस स्मृतिपत्रके विरुद्ध थे और उसकी बातोंको असत्य बताते थे। सम्राट् तथा उनके मन्त्रियोंका रुख अनुकूल था पर राजा राममोहन रायकी मृत्युके बाद उस प्रश्नपर बोलने और अपना पक्ष सिद्ध करनेवाला कोई न रह गया और बातें जहाँकी तहाँ रह गयीं।

हास्यजनक स्थिति

इस परिस्थितिका उलटा परिणाम हुआ। कम्पनी-सरकार और चिढ़ गयी। जब नया रेजीडेण्ट हाकिन्स दिल्ली आया तो उसने बादशाह एवं क़िलेमें होनेवाले व्ययमें और कमी कर दी। अकबर शाहके पास आया तो नज़र देनेका विरोध किया और देना स्वीकार भी किया तो एक हाथसे नज़र दी। उसने बेगमों के स्वागतमें खड़ा होनेसे भी इनकार किया। इससे स्पष्ट है कि बादशाहकी स्थिति हास्यजनक थी। यह एक परम्पराको बचाये रखनेकी स्थिति थी— एक ऐसी परम्पराकी जिसके ढाँचामात्रकी शक्ति उसमें न रह गयी हो। यह स्थिति [गोरे' अंग्रेजोंके ऊपर निर्भर थी। यदि इस परम्पराको केवल

इसलिए जारी रखे हुए थे कि शक्तिहीन होते हुए भी प्रजाके बीच दिल्लीश्वरकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। वे बादशाहकी वास्तविक दुर्बलताको जानते थे इसलिए उसकी बातोंकी ज्यादा परवाह नहीं करते थे।

अन्तमें अकबर बादशाह निराश अपनी भग्न कामनाओंके साथ ही इस संसारसे चले गये।

क़िलेकी हालत

अब स्थिति यह थी कि समस्त दिल्ली अंचलमें कम्पनीके शासनमें थी। उसीके अफ़सर थे अदालतें थीं पुलिस थी प्रबन्ध था। केवल क़िलेके अन्दर सम्राट्की हुकूमत थी। पर क़िलेके अन्दर भी हालत अच्छी न थी। खजाना खाली था। सैनिकोंको वेतन देनेका उपाय न था। बेगमें और अन्य आश्रितगण मुश्किलसे पेट भर पाते थे। प्रजामें दो वर्ग थे बहुतसे उच्च वर्गके लोग जिनका ऐश्वर्य समाप्त हो रहा था अंग्रेजोंके विरुद्ध थे। दूसरे ऐसे थे जो इस विषयमें निरन्तरकी कठिनाइयोंके कारण उदासीन हो गये थे और कौन आता है, कौन जाता है, इसमें उनकी कोई खास दिलचस्पी नहीं रह गयी थी। उनके लिए सब बराबर था। इसी ज़मानेमें विलियम फ्रेज़रकी हत्यासे दिल्लीमें सनसनी फैल गयी। हम इस घटनाका वर्णन ग़ालिबकी जिन्दगीमें विस्तारके साथ कर चुके हैं। इसलिए यहाँ दोहराना व्यर्थ समझते हैं।

बहादुर शाह 'ज़फ़र' के ज़मानेमें भी वही परम्परा चलती रही जो उनके पिताके समयमें चलती थी। यह १८१७ ई० में गद्दीपर बैठे जब ग़ालिब प्रौढ़ यौवनकालमें थे और उनके जीवन और काव्यका एक निश्चित ढाँचा बन चुका था। बहादुर शाह एक साधु प्रकृतिके बादशाह थे। जिनके मजे शायरीपसन्द पवित्र जीवनके अभ्यासी और धार्मिक मामलोंमें अत्यन्त उदार। इतने उदार कि उन्होंने खुद कहा है:—

मये मुहब्बतकी हमको मस्ती है,
बुतपरस्ती खुदापरस्ती है।

ऐसे उदार धर्मसे दूर रहनेवाले खाने-पीनेके शौक़ीन शेरो-शायरीमें मस्त दिन बितानेवाले झगड़े-झंझटसे दूर रहनेवाले शान्तिके प्रेमी। सच पूछें तो अन्तिम तीनों मुगल सम्राट् निजी चरित्र स्वाभिमान धार्मिक औदार्य सज्जनता शिष्टतामें बहुत ऊँचे थे। अंग्रेजों और युरोपीय यात्रियोंने भी उनकी प्रशंसा की है। उनकी ऊपरी शान-शौकत वही थी जो मुगल साम्राज्यके वैभवकालमें थी। उन्हें सारी परम्पराओंका पालन करना पड़ता था। यद्यपि अन्तिम मुगल सम्राटोंकी शासन सीमा किलेके छोटे-से क्षेत्रमें ही सीमित थी पर किलेमें राजवंशके सम्बन्धियों—सलातीन—की भरमार थी। इनका और इनके कुटुम्बियोंका पालन सम्राट्को ही करना पड़ता था। दान भेंट उपहारकी परम्परा पुरानी ही थी। खिलअत उसी तरह दी जाती थी। परिणाम यह हुआ कि आमदनी कम और खर्च ज़्यादा होनेके कारण आर्थिक संकट बढ़ता गया। ऊपरी टीम-टामके बावजूद अन्दरसे वे खोखले होते गये। १८५७के गदरके साथ अवध और दिल्ली दोनोंकी आर्थिक स्वतन्त्रता भी समाप्त हो गयी। अवध के अन्तिम बादशाह वाजिदअली शाह और दिल्लीके अन्तिम ताजदार बहादुर शाहकी अन्तिम घड़ियाँ वतन और साथियोंसे दूर मटियाबुर्ज और रंगूनकी कोठरियोंमें बीतीं। दोनों कवि गुणी रसिक धर्मनिष्ठ और योग्य थे पर जिस तख्तोंपर बैठे थे वही धसक गयी और वे भू-गर्भमें समा गये।

सल्तनतकी ऊपरसे
भरी पर अन्दरसे
खोखली ज़िन्दगी

ग़ालिबके जीवन-काल (१७९७–१८६९ ई) में मुगल साम्राज्यका अन्त हो गया। उनके समयमें अन्तिम तीन मुगल सम्राट् हुए—१ शाह आलम द्वितीय (१७५९–१८ ६) २ अकबर द्वितीय (१८ ६–१८३७)

तथा ३ बहादुरशाह (ज़फ़र) द्वितीय (१८३७–१८५७)। मतलब यह कि ग़ालिबका बचपन शाह आलमके अन्तिम कालमें कटा। उनकी जवानी

कहानी ख़त्म हो गयी

अकबर द्वितीयके कालमें गुज़री और प्रौढ़ावस्था तथा वार्द्धक्य बहादुर शाहके ज़मानेमें और उसके बाद भी चलता रहा। तीनों अच्छे थे पर शासन-क्षमताकी दृष्टिसे असफल और साधनहीन थे। इनके कालमें मुग़ल-साम्राज्य कहानी बनकर रह गया था और अन्तमें यह कहानी भी ख़त्म हो गयी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग़ालिबके जन्मके समय दिल्ली सल्तनतकी जड़ें टूट चुकी थीं शासन-तन्त्र भी खोखला होने लगा था। उनके जीवन-कालमें जितने भी बादशाह हुए, नामके बादशाह थे। दिल्ली शहरमें भी उनका शासन न चलता था। वहाँ भी कम्पनीका इन्तज़ाम था। बादशाह वस्तुतः क़िलेमें घिरे हुए, कहनेको स्वतन्त्र पर वस्तुतः सम्मानित बन्दी मात्र थे। वे पिंजरबद्ध पंछी थे। इन बादशाहोंको अपना महत्त्व निभानेके लिए कभी मराठे कभी अंग्रेज संरक्षण एवं

ग़ालिबके जीवनकालकी राजनीतिक स्थिति

पेन्शन देते रहे। देशकी अवस्था बिलकुल अनिश्चित और निराशाजनक थी। जनता बार-बार सामन्तों एवं युद्ध-पिपासु सरदारों द्वारा लूटी जाती थी। कभी अफ़ग़ान कभी मराठे कभी अंग्रेज कभी सिख कभी राजपूत सिर उठाते और कुछ न कुछ हड़प लेते। रोज़ लूट-खसोट झगड़े युद्ध और भाग्य-परिवर्तन होते रहते थे। कलका बादशाह आजका भिखारी था। दक्षिणके मराठोंने एक सार्वभौम राज्य स्थापित करनेके लिए जो प्रयत्न किये मध्यवर्ती अनेक सफलताओं-विफलताओंके बाद १८१८में पेशवाशक्ति ख़त्म होते ही उसका भी अन्त हो गया। उसके बाद इस स्वप्नको पूर्ण करनेका काम अंग्रेजोंने अपने हाथमें ले लिया।

लेनपूलने ठीक ही लिखा है — जैसे किसी राजाकी मृत देहको गुम

मुर्दाको एक एकान्तमें ताज पहिनाकर उत्सव आरम्भ करनेके पूर्व प्रभावशाली बना-सजाकर रखा जाय किन्तु प्रकृतिकी एक फूँकमें वह भूमिसात् हो जाय यही दशा मुग़ल साम्राज्यकी थी।

सजा हुआ मुर्दा

सच पूछें तो मुग़ल-साम्राज्यके ह्रासके बीज उसके वैभवकालमें ही पड़ गये थे। मुग़ल बादशाहगण भारतकी वस्तुकला और जीवनके नाना भोगोंके अभिलाषी थे। वैभव एवं विलास का जीवन था। मुग़ल सम्राटोंके इर्द-गिर्द अनेक जागीरदार, सरदार या मनसबदार इकट्ठे हो गये थे। इस प्रकार एक सामन्तशाहीकी सृष्टि हुई थी। उन्होंने समाजको भी सामन्ती ढाँचेमें ढालनेका प्रयत्न किया। सम्राट् स्वयं एक प्रधान जागीरदार होता था। उसके बाद सरदारों या मनसबदारोंका स्थान था जो राज्यके प्रधान पदोंपर नियुक्त होते थे। जिसको जैसा मनसब मिलता समाजमें उसका उतना ही आदर होता था। इन मुग़ल सरदारों एवं मनसबदारोंका जीवन भी प्रायः भोग-विलासपूर्ण होता। राज्यकी बहुत बड़ी आय उनको प्राप्त होती थी। उनका जीवन बाहुल्यका जीवन था। वे भी बड़े-बड़े महलोंमें रहते सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनते अनेक हरम और रखैलियाँ रखते और शराब रागरंग एवं कामलिप्सासे पूर्ण जीवन बिताते थे। इस प्रकार एक उच्चवर्ग बन गया जो मुग़ल साम्राज्यके ह्रासके दिनोंमें उसका ही विनाशक बन गया।

मुग़लकालीन सामाजिक व्यवस्था

उच्चवर्गोंके बाद एक मध्यवर्ग था जिसमें छोटे सरकारी कर्मचारी सौदागर और महाजन इत्यादि थे। इनके पास साधारणतः धन तो होता था पर वे ऊपरसे अपना जीवन सीधा-सादा और आडम्बरहीन रखते थे क्योंकि उन्हें सदा डर लगा रहता था कि कहीं सूबे और सरदार उनका धन लूट या छीन न लें।

निम्न वर्ग सबसे बड़ा था। इसमें मजदूर किसान और दस्तकार

इत्यादि थे। इनका जीवन बड़ा कष्टमय था। मजदूरी कम मिलती थी उनसे अक्सर काम कराया जाता था या बेगार लिया जाता था। लूट-पाट या लड़ाई-झगड़ोंके कारण निश्चिन्तता न थी कि वे खेती और लघु उद्योग-धन्धोंकी उन्नति कर पाते। उनकी स्थिति विषम थी।

ज्यों-ज्यों मुग़ल साम्राज्यकी केन्द्रीय सत्ता क्षीण होती गयी इन दोनों वर्गोंका भी अधिकाधिक पतन होता गया। औरंगज़ेबमें दृढ़ता थी चरित्र था लगन थी यद्यपि सूझ-बूझ न थी। वह कठिनाइयोंमें भी अडिग रहा। पर उसके बाद जो आये वह चारों ओरके विरोध एवं तूफ़ानमें ठहरने लायक न थे।

मुग़लोंका पतन

अधिकांश परीक्षाओंसे घबराकर सुरा-सुन्दरी द्वारा अपना ग़म ग़लत करनेवाले थे। सम्राटोंकी देखादेखी सामन्तोंमें भी विलासिता आई। जब मुग़ल भारतमें पहले आये थे एक परिश्रमी जाति थे। पर भारतमें धन विलास एवं वैभव-बाहुल्यने उनका चरित्र गिरा दिया। रंगीनियोंकी भीड़में षड्यन्त्रोंको फूलने-फलनेके लिए अनुकूल भूमि प्राप्त हुई। सर यदुनाथ सरकारने ठीक ही लिखा है कि 'जब सुकाल होता तब भी खेतीकी सारी आय मुग़ल सामन्तोंकी जेबोंमें जाती थी और यह धन उन्हें उस विला-सिताके लिए प्रोत्साहित करता जिसकी कल्पना प्राच्य या मध्य एशियामें कोई राजा भी नहीं कर सकता था।

फिर देशमें अच्छी शिक्षाका कोई प्रबन्ध न था। मुग़लोंने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया। इसीलिए उनमें उच्च बौद्धिक शक्तियोंका अभाव रहा और वे राजनीतिज्ञ एवं नेता उत्पन्न करने में बिल्कुल असफल रहे।

रईसज़ादोंकी हालत

मुग़ल सरदारों एवं सामन्तोंके पुत्रोंके लिए अच्छी शिक्षाकी कोई ठीक व्यवस्था न होनेके कारण वे आवारागर्दी करते हिजड़ों एवं खूबसूरत लौंडियोंसे घिरे रहते उनके चोंचलोंपर मुग्ध होते जीवनारम्भसे ही वे शराब-कबाब और औरतके नशेमें पड़ जाते। विलासिताकी जोंकें उनका खून पी जातीं। फिर अपने

सामाजिक महत्त्व एवं अहंकारके कारण व जन-जीवनसे भी कटे-कटे रहते। अतः जीवनकी विस्तृत पाठशाला भी उनको शिक्षा देने एवं बढ़ानेमें असमर्थ थी। दरबारोंमें षड्यन्त्र चला ही करते इसलिए सदा ही बड़ा होते थे दलबन्दियों एवं गुटमें बँट जाते थे।

भ्रष्टाचार

राजासे लेकर सामान्य अधिकारीतक प्रत्येक कामके लिए रिश्वत लेता था। इससे शासनमें भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया था। मन्त्री एवं सम्राट्के निकट रहनेवाले अधिकारी खूब धन बटोरते थे सामन्त लूट-पाट करते थे और प्रजा दिन-दिन गरीब होती जा रही थी। शासनके प्रति उसकी निष्ठा टूट गयी थी। राज-कोष खाली होनेके कारण सेनाको महीनों तनख्वाह न मिलती इसलिए सैनिक भी जनता एवं व्यापारियोंको लूटते रहते थे।

काव्यका समादर एवं उर्दूका संरक्षण

परन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि जहाँ मुगल साम्राज्यके अन्तिम युग-में राजनीतिक अनिश्चितता आर्थिक दुर्दशा तथा चारित्रिक पतनका क्रम बोलबाला था वहाँ साहित्य एवं काव्य बराबर फलता-फूलता रहा। कदाचित् इसलिए कि यह विलास-प्रधान सौन्दर्यका बखाता था। विलासी एवं रसिक होनेके कारण मुगल काव्यके प्रेमी थे। अधिकांश स्वयं कवि थे और उनके दरबारमें बराबर कवियों विद्वानों एवं कलाकारोंका सम्मान होता रहा। शाह आलम द्वितीय तो उर्दू, फ़ारसी हिन्दी और पंजाबीका अच्छा कवि था। उसका हिन्दी काव्य पर्याप्त मात्रामें मिलता है। यह 'आफ़ताब' और 'मुईन' के उपनामसे फ़ारसी-उर्दू तथा शाह आलम के उपनामसे हिन्दीमें कविता करता था। उर्दू तो उसके संरक्षणमें खूब पनपी। अभीतक दरबारकी ज़बान (राजभाषा) फ़ारसी थी। उसने पहिली बार उर्दूको यह स्थान दिया। इस समयतक दक्षिण—बीजापुर एवं गोलकुण्डा-में उर्दू या रेख़्ता पनप रही थी। वली जब दिल्ली आये तो इस नई ज़बान-

न दिल्लीवालोंको मुग्ध कर लिया। शाह आलमके कारण उस वक़्त दिल्लीमें अनेक कवि एकत्र हो गये थे।

उर्दू ज़बान थी तो इस देशकी बेटी पर उसके मन प्राण एवं हृदयमें फ़ारसीयतका प्राधान्य था। इसलिए फ़ारसीसे इसमें भी ग़ज़ल आई इसीसे आये मसनवी आई। पर विलासी जीवनमें इश्क़िया शायरीकी भूख ग़ज़लमें ही मिट सकती थी। इसलिए ग़ज़लोंका प्राधान्य हुआ। इसमें प्रेम-पीड़ा वार्तालापके रूपमें व्यक्त होनेके कारण सजीव हो उठती थी। इसने हिन्दू-मुसलमान दोनोंके दिलोंको खींचा। काव्य-प्रेमकी मस्तीमें हिन्दू-मुसलिम भेदभाव बहुत कम हो गया। इस समयकी दिल्लीकी जो हालत थी उसपर मीर, सौदा, दर्द, ज़ौक़, ग़ालिब सब समान आँसू बहाये हैं। कुछ अजब तमाशा था। छूटे हुए दिल लुटी हुई और पामाल जवानियोंपर हसरत भरी निगाहें डालते और सिसकते थे। भली प्रकार रो भी न सकते थे। 'सौदा' ने ठीक ही लिखा है—

> हैफ़ ! दर चश्मे ज़दन सोहबते यार आख़िर शुद ।
> रूए गुल सेर न दीदम व बहार आख़िर शुद ॥

(अफ़सोस ! पलक झपते मित्रका साथ छूट गया। फूलके आननको जीभर देख भी न पाई थी कि बसन्त समाप्त हो गया।)

शाह आलमकी ज़िन्दगी दुःख-दर्दसे भरी ज़िन्दगी है। गुलाम क़ादिरने जिस प्रकार उसकी आँखें निकालीं, उसका बयान पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पर यह वह ज़माना था जब आँखें रहते भी लोग अन्धे हो रहे थे। दिल्ली तख़्तके चतुर्दिक तूफ़ान उठ रहे थे। कहीं मराठे कहीं अंग्रेज़ कहीं रुहेले कहीं सिख कहीं राजपूत कहीं जाट विद्रोह करके स्वतन्त्र हो चुके थे। लूट-पाट एवं शोषणका सर्वत्र बोलबाला था। पर सबसे बड़ी बात यह थी कि किसान क्षुब्ध और निम्न मध्यवर्ग शोषित था तथा राजा नवाब सरदार मतलब उच्चवर्गका भयंकर आत्म-पतन हो चुका था।

उड़ चुकी थी। जो आता वही उसे लूटता और उससे खिराज माँगता। वह किस-किसका पेट भरती और कबतक भरती। अनिश्चितता एवं नित्यकी लड़ाइयोंके कारण खेती व्यापार और गृह-उद्योग सब तबाह हो गये थे। उधर उच्चवर्गके लोगों—नवाबजादों, रईसजादोंके सामने जीवनका कोई ध्येय न था। वे स्वच्छन्द जीवनके अभिलाषी ऐशोइशरत-के लिए प्रजाको दबाकर, उससे छीन-झपटकर अपने विलासकी सामग्री जुटाते बचपनसे ही इश्ककी बातें करते और विलासी जीवन बिताने लगते थे। मुर्ग और बटेर लड़ाते पतंगबाजी करते शतरंज और चौसर खेलते काव्य-गोष्ठियों और नाच-रंगकी महफ़िलोंमें जाते शराब व शायरीका शौक करते। देशका बहुसंख्यक वर्ग इस अवस्थासे ऊब गया था। पर उसे सूझती न थी कि वे क्या कर सकते हैं। इस मानसिक दुर्बलताका अंग्रेजोंने लाभ उठाया। वे जहाँ गये वहाँ भले ही मनमानी सही एक व्यवस्था तो दे गये। एक निज़ाम तो था। भले उसमें ग़ुलामी थी। पर ज़िन्दगीका सलीक़ा तो था।

निराशाका युग

मतलब राजनीतिक दृष्टिसे देश निष्प्राण एवं जर्जर हो पड़ा था। मध्य एवं उत्तरकालीन भारतीय इतिहासमें सदैव विदेशियोंसे लोहा लेने वाले व्यक्ति पैदा होते रहे, प्रतिरोधक संगठित प्रयत्न भी जब-तब हुए पर सदियोंसे भारतीय भावना इतने निम्न स्तर पर गिर गयी थी और इतनी संकुचित हो गयी थी कि वह विस्तृत एवं जनगत केन्द्रित हो ही न सकी। सत्ताधिकारियोंके संपर्कके बाद जैसे बहुसंख्यक वर्ग अनिश्चितताते ऊबकर, थम-सा रहा था। लोगोंमें अपनी हीनताका भाव इसीलिए विदेशियोंके प्रति आक्षेप तो था पर जैसे नियतिके आगे अधिकाधिक सब झुकते जा रहे थे। मतलब ग़ालिबके कैशोर कालमें एक ओर दिल्ली क्या सारा देश राज-नीतिक दृष्टिसे अशक्त था देशकी राजकीय शक्ति तेजीसे बिखर रही थी और जो कुछ कर सकते थे उन सामन्तों और रईसों तथा उनके

भारतमें मुगल साम्राज्यके क्षय एवं अंग्रेजी राज्यके विस्तारका इतिहास न केवल मनोरंजक वरं शिक्षाप्रद भी है। अंग्रेजोंने एक ओर देश-व्यापी अव्यवस्था फूट तथा हमारे नैतिक एवं सामाजिक पतनका लाभ उठाकर अपना रंग जमाया तो दूसरी ओर अपने अधीनस्थ प्रदेशोंको सुव्यवस्था दिया न्याय-पद्धतिका भी दान किया।। उन्होंने समझा कि केवल तन जीतनेसे काम नहीं चलेगा इस देशके लोगोंका मन भी जीतना होगा। इसलिए उन्होंने शिक्षित वर्गोंको प्रोत्साहित किया। नवीन औद्योगिक क्रान्तिके लाभ उन्हें दिये। यह आचरण और नवीन शिक्षाका ही परिणाम था कि १८२३ ई॰ में राममोहन राय प्रभृतिने मुद्रण-स्वातन्त्र्यके लिए एक निवेदनपत्र ब्रिटिश सम्राट्को भेजा था। यह संक्रान्तिका काल था। अतः अंग्रेज भी दो दलोंमें बँटे हुए थे। एक दल भारतीयोंको शिक्षित करने उन्हें मुद्रण-स्वातन्त्र्य प्रदान करने आधुनिक सभ्यताका लाभ उन्हें देनेके पक्षमें था दूसरा इसके विरुद्ध था। लार्ड विलियम बैंटिक सर टामस मनरो भारतीयोंको मुद्रण-स्वातन्त्र्यकी सुविधाएँ देनेके विरुद्ध थे पर १८३५ ई॰ में जब सर चार्ल्स मेटकाफ गवर्नर जेनरल हुए उन्होंने भारतीयोंको मुद्रण-स्वातन्त्र्यका अधिकार दे दिया। हाँ प्रगति-विरोधी गुटके प्रभावके कारण इस 'अपराध'में वह अपने पदसे च्युत किये गये। फिर भी वह अपने विचारोंपर दृढ़ रहे। उन्होंने लिखा था—

अंग्रेजोंमें भी दो वर्ग

'यदि यह कहा जाता है कि ज्ञान-प्रसारणके फल-स्वरूप हमारे भारतीय राज्यका अन्त हो जायगा तो इसपर मेरा जवाब यह है कि नतीजा कुछ भी हो उन्हें ज्ञान-दान कराना हमारा कर्तव्य ही है। यदि हिन्दुस्तानियोंको अज्ञानमें रखनेसे ही यह देश हमारे साम्राज्यमें रह सकता तो हमारा प्रभुत्व इस देशके लिए शाप रूप ही सिद्ध होगा और उसका अन्त हो जाना ही जरूरी हो जायगा।

ज्ञान या अज्ञान

'मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि यह मानना अधिक युक्तियुक्त और साधार है कि लोगोंको अज्ञान बनाये रखनेमें ही अधिक भय है। मैं तो यह सोचता हूँ कि ज्ञान-प्रसारसे हमारा साम्राज्य अधिक बलिष्ठ होगा। इससे शासक और प्रजाजन दोनोंमें सहानुभूति उत्पन्न होगी और परस्पर एकताका भाव बढ़ेगा और भाव जो खाई उनमें है वह धीरे-धीरे बिलकुल पट जायगी।"*

इसी प्रकारका भाव प्रकट करते हुए एल्फिन्स्टनने जून १८१९ में ही मेकेन्टायरको लिखा था— 'हमारा साम्राज्य अधिक समय तक नहीं टिकेगा यह केवल कुतर्क नहीं बल्कि युक्तियुक्त है।...हमारे प्रभुत्वका अत्यन्त दुःखद अन्त नहीं हो सकता है कि हमारे शासनमें लोगोंके अन्दर इतने सुधार हो जायें कि किसी भी विदेशी सत्ताका राज्य करना असम्भव हो जाय।...यह समय कितना दूर होगा इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। फिर भी हमारे सम्बन्ध-विच्छेदका समय कभी न कभी आये बिना नहीं रह सकता और यहाँके लोग अंग्रेजी बने रहकर, अत्याचार करके हमारा सम्बन्ध तोड़ डालें इससे तो हमारे लिए यही अधिक हितकारक है कि भले ही यह बन्धन टूट जाय परन्तु टूटे वह उनका सुधार होनेके बाद।"†

इससे तो दूर जाना अच्छा

वैसी स्थिति अंग्रेजोंके अन्दर थी वैसी ही भारतीयोंके बीच भी थी। देशमें राजनीतिक दृष्टिसे यहाँ असामर्थ्यकी एक सुप्त चेतना थी और यह चेतना रह-रहकर जब-तब भड़क भी उठती थी तहाँ एक चैतन्य उनमें

---

* The Development of An Indian Policy by Anderson and Subedar p. 143

† Mount Stuart Elphinstone by J. S. Cotton pages 185–86

अंग्रेजी शासन-व्यवस्थाका लाभ उठानेका भाव भी था। जैसा हम उनके उद्धरणोंमें बता चुके हैं उदार अंग्रेज अपनी जीवन-परम्परा समाज-व्यवस्था विज्ञान तथा यूरोपमें उठ रहे नवीन विचारोंका अधिकाधिक लाभ अपनी नवीन भारतीय प्रजाको देनेके पक्षमें थे। एक ओर राजनीतिक शक्तिसे दूसरी ओर ज्ञानसे अपनी श्रेष्ठताके प्रति भारतीयोंको प्रभावित करना ही उनका लक्ष्य था। शताब्दियोंकी अव्यवस्थासे ऊबकर धीरे-धीरे किन्तु निश्चित गतिसे लोग अंग्रेजी व्यवस्थाके प्रति आकर्षित हो रहे थे। बहुतोंने तो मान लिया कि प्रभुकी इच्छासे या नियतिके लेखको पूरा करने ही अंग्रेज इस देशमें आये हैं और उनसे हमारा सम्बन्ध हुआ है। उनमें दोष हैं विदेशी तत्त्व हैं पर जब देशी वर्ग एक दूसरेको हड़पने एवं मटियामेट करनेको तैयार हों जब उनमें एक होकर विदेशियोंके सामने खड़ा होनेका भाव न हो बल्कि आपसी झगड़ों या स्वार्थसिद्धिके लिए विदेशियोंको आमन्त्रित करनेका भाव हो* तो उनकी ओर एक निराशाभरी दृष्टि डालनेके सिवा चारा ही क्या है ?

ऐतिहासिक आवश्यकता

इस समय भारत टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। भारतीय केन्द्रीय सत्ताका प्रतीक दिल्ली उपहासजनक स्थितिमें थी। देशकी सबसे बड़ी आवश्यकता एक भारतीय सार्वभौम राज्यकी थी। १८१८में जब माउण्ट स्टुअर्ट एल्फिन्स्टनने (जो बम्बई प्रान्तका प्रथम गवर्नर था) पेशवाईको खत्म कर दिया तबसे भारतीयोंका सार्वभौम भारतीय राज्य स्थापित करनेका स्वप्न भी समाप्त हो गया। अब कोई ऐसा देशी संगठन नहीं रह गया था जो मराठोंका स्थान लेता। अंग्रेजोंमें भी ऐसे लोग थे और हिन्दुस्तानियोंमें भी जो इस सम्बन्धको

---

* १८१५ ई० में सरजानमैल्कमने 'इण्डियन आर्मी' निबन्धमें लिखा था कि हिन्दुस्तानियोंमें आत्मविश्वास नहीं है, न राष्ट्राभिमान है और वे एका भी नहीं कर सकते यही हमारे साम्राज्यका सामर्थ्य है।

एक ऐतिहासिक आवश्यकता मानकर उसे स्वीकार करने और उसका सर्वोत्तम उपयोग करनेके पक्षमें थे जैसा कि उनके उद्धरणोंसे हम प्रकट कर चुके हैं। १८५७ में 'लोकहितवादी' पत्रने मानो समस्त भारतीय जनता-की इसी भावनाको प्रकट करते हुए लिखा था—'मूढ़ लोगोंको चाहिए कि वे अंग्रेजोंके जानेकी इच्छा कदापि न करें।" क्योंकि उनके न रहनेका परिणाम उस समय व्यापक अराजकता एवं अनिश्चितताके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता था। लोग यह भी देख चुके थे कि हमारे राष्ट्रीय चारित्र्यमें कोई ऐसी दुर्बलता अवश्य है कि बार-बार विद्रोह करके भी हम सफल नहीं हो पाते। इसलिए पहिले शिक्षा एवं संस्कार द्वारा अपनी वास्तविक स्थितिको समझने तथा अपनी परम्परागत दुर्बलताओंको दूर करनेसे आगे चलकर स्वतन्त्रताकी सम्भावना अधिक हो सकती है। उधर अंग्रेज भी इस बातको समझते थे कि शिक्षा पाकर भारतीय बराबरीका दावा करेंगे पर वे धीरे-धीरे अपनेको इस स्थितिके लिए तैयार कर रहे थे क्योंकि बिना भारतीयोंके अधिकाधिक सहयोगके उनका शासनतन्त्र भलीभाँति चल नहीं सकता था। १८२४ ई० में एल्फिंस्टनने कम्पनीके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सको जो शिक्षा-विषयक वक्तव्य भेजा था उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस वक्तव्यमें अन्य बातोंपर प्रकाश डालनेके बाद यह लिखा है—

इस युक्तिसे भारतीयोंको समानताका अधिकार देना अच्छा है!

'यह आपत्ति उठायी जायगी कि यदि हमने यहाँके लोगोंको शिक्षा देकर अपने बराबरका बना दिया और शासन-कार्यमें भी उन्हें हिस्सा देते चले गये तो वे उन पदोंपर ही सन्तुष्ट नहीं रह सकेंगे जो हम उन्हें देंगे बल्कि वे सारे शासनपर अपना अधिकार स्थापित किये बिना शान्त न बैठे रहेंगे। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि ऐसा भय रखनेके कई कारण हैं परन्तु दूसरी किसी नीति-द्वारा हम अधिक स्थायी बन सकेंगे ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता।

यदि हमने इसी लोगोंको पीछे ही दबा रखा तो उनके प्रतिकारसे ही हमारा राज्य उलट-पुलट हो जायगा और यह संकट पूर्वोक्त संकटकी अपेक्षा अधिक भयंकर और अधिक अकीर्तिकर होगा। इस कीचातानीमें हमें सफलता मिल भी गयी तो हमारे साम्राज्यके कोनोंसे एकरस न होनेके कारण विदेशी आक्रमणसे अथवा हमारे ही अंग्रेजोंकी बगावतसे उसके उखड़ जानेकी सम्भावना है। हमारी कीर्ति एवं हित दोनों दृष्टियोंसे एवं मानव जातिके कल्याणकी दृष्टिसे भी विचार किया जाय तो जिन लोगोंके हितके लिए इस सत्ताको परोक्षरूप ईश्वरने हमें दी है उन्हींके हाथोंमें उसे वापिस सौंप दें यही बेहतर है बनिस्बत इसके कि उसे विदेशी हमसे छीन लें या हमारे ही कुछ मुट्ठी भर उपनिवेशवासी अपना अप्रसिद्ध अधिकार झटककर अपने हाथमें ले लें। *

इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें देशमें एक ओर घोर राजनीतिक अव्यवस्था और अनिश्चितता व्याप्त हो गयी थी और इस अनिश्चिततामें अंग्रेज अपने शोषणमें भी जो व्यवस्था नवीन जीवन-विधि शिक्षा-प्रणाली रूपमें उसकी ओर धीरे-धीरे भारतीय जनता आशासे देखने लगी थी। दूसरी ओर दिल्लीके अन्तिम बादशाहों-के मुसलमान होनेके बावजूद हिन्दुओंमें उनके प्रति अत्यन्त सम्मानका भाव था। समान दुःख और संकटके इस कालमें उनके तथा उच्चवर्गीय लोगोंके अन्दर साम्प्रदायिक वैमनस्य तो रह ही नहीं गया था भेदभाव भी बहुत कुछ दूर हो चला था। जनता भूल चली थी कि शासक मुसल-मान हैं। यह मुगलोंकी धार्मिक उदारताकी नैतिक परिणाम था। यद्यपि मुगल मुसलमान थे और कोई-कोई कट्टर भी थे पर उन्होंने योग्य हिन्दुओं-को ऊँचे पद दिये कलाकारों कवियों एवं संगीतज्ञोंको आश्रय दिया

साम्प्रदायिक वैमनस्य का अभाव

* M S. Elphinstone by J S Cotton p. 184

रूढ़ियोंसे ग्रस्त एवं विलासपूर्ण जीवन-क्रम भी इसने एक झरोखा एक खिड़की एक वातायन बना दिया था जिसमेंसे आनेवाले वायुके झकोरोंमें जन-जीवनकी घुटन आकांक्षाएँ, हसरतें लालसाएँ भी होतीं। जनगणकी जिन्दगी तो होती परम्पराएँ और रूढ़ियाँ भी होतीं पर वह कटु भेदभाव न होता जो विजेता एवं विजितके रूपमें मुसलमानों एवं हिन्दुओंके बीच एक जमानेमें आ गया था। इससे जिन्दगीमें वह सतह उभरी *जिसमें दोनों एक गोष्ठीमें बैठकर हमप्याला कभी-कभी हमनिवाला भी* हुए, एक भावराशिसे भरे एक प्यालेमें बोले। मुसलमान कवि एवं भक्त ब्रजभाषा तथा अवधीमें अपनी वाणीका गौरव प्रदर्शित करते हिन्दू फ़ारसी एवं उर्दूमें तबअ-आज़माई करते। हिन्दीमें श्रेष्ठ मुसलमान कवियोंके अनेक नाम गिनाये जा सकते हैं इसी प्रकार उर्दू और फ़ारसीमें हिन्दुओंके काव्य एवं ज्ञान-गरिमाके श्रेष्ठ उदाहरण सुरक्षित हैं।

दो प्रवृत्तियाँ

इस प्रकार अन्तिम मुग़लोंके समय जहाँ देशकी राजनीतिक शिथिलता पुष्ट हो गयी अंग्रेजोंका प्रभाव बढ़ता गया अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा एवं जीवन-क्रमसे एक नवीन अपेक्षाकृत व्यापक दृष्टि आई, नवीनके प्रति किञ्चित् आकर्षण उत्पन्न हुआ वहाँ दूसरी ओर सांस्कृतिक धरातलपर, हिन्दू-मुसलमान अधिकाधिक *निकट आते गये साहित्य-जगत्में एक विशेष साहचर्यका जन्म हुआ* फ़ारसीका स्थान धीरे-धीरे एक नई भारतीय भाषा उर्दू लेने लगी।

ऊपर हमने जिस स्थितिका चित्र दिया है उसे संक्षिप्त करनेसे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

सार्वभौमिकताके तीन प्रतिद्वन्द्वी

१ *अठारहवीं सदीके आरम्भमें* अनेक शक्तियाँ सार्वभौम सत्ता हस्तगत करनेके लिए प्रयत्नशील थीं। इनमें फ़्रांसीसी अंग्रेज मराठे प्रमुख थे। प्रादेशिक स्वतंत्र राज्यके लिए भी हैदराबाद मैसूर, बंगाल (मुर्शिदाबाद) अवध पंजाब प्रयत्नशील रहे। समय-समयपर अफ़ग़ान

भी आ जाते थे पर उनका रूप प्रमुखतः लुटेरोंका रहा। इन तीनोंमें पहिले फ्रांसीसियोंने सार्वभौम राज्यकी आशा छोड़ दी मराठों और अंग्रेजोंकी प्रतिद्वन्द्विता बहुत दिनों तक चलती रही। पर अंग्रेजोंकी शक्ति बराबर बढ़ती गयी।

२ पानीपतकी तीसरी लड़ाई (१७६१) में मराठोंकी भयंकर पराजयके पश्चात् मामला बदलता गया। फिर भी अठारहवीं शताब्दीके अन्त तक मध्य एवं उत्तर भारतमें मराठा शक्ति प्रबल रही। यह शक्ति कदाचित् और प्रबल होती यदि उनमें लक्ष्य कुछ कम होता लूटपाट की वृत्ति अनुशासित होती और आपसमें वे बिखर न जाते।

मराठा शक्तिकी वृद्धि

३ १८ ४ ई में लार्ड लेकने सिंधियाको हराकर दिल्लीपर भी अंग्रेजी प्रभुत्वकी नींव डाली। १८ ९ ई में माधवराव (महादजी) सिंधियाकी मृत्युके बाद अंग्रेजोंको चुनौती देने वाला कोई प्रबल वीर उत्तर भारतमें न रह गया। १८१८ ई में पेशवाशाही ही अस्त हो गया। यद्यपि राज्यके अन्दरसे कहीं-कहीं गुप्त चिनगारियाँ हवा अनुकूल होते ही चमक उठती थीं और इक्के-दुक्के विस्फोट भी हो जाते थे पर निश्चित गतिसे भारतपर अंग्रेजी प्रभुता फैलती जा रही थी। उन्नीसवीं शताब्दीका प्रथमार्द्ध उसके प्रसार एवं द्वितीयार्द्ध उसके दृढ़ करनेका युग है। १८५७ ई में स्वतन्त्रताकी चमकती आग सुलगी परन्तु वह समस्त भारतमें न फैल सकी। बंगालियों सिखों राजपूतों मद्रासियों गुजरातियोंने उसमें हिस्सा नहीं लिया कहीं-कहीं लिया तो नाम-मात्रका लिया। यह आग मध्यम हिन्दी भाषी प्रान्तों एवं दिल्लीके आस-पास ही चमक-चमककर और राष्ट्रीय चेतनाका एक प्रतीक बनकर रह गयी।

मराठा शक्तिका अन्त

४ अंग्रेजोंमें ऐसे अनुदार बड़ी संख्यामें थे जो भारतीयोंको सदाके लिए हीन और तुच्छ बनाकर रखना चाहते थे पर उदार विचार वाले अंग्रेजोंकी

संख्या भी कुछ कम न थी जो समझते थे कि देर तक भारतवासियोंको इस प्रकार रखना सम्भव नहीं है और सम्भव हो भी तो उचित नहीं है।

आत्मगौरव और आत्मसुधारकी दो धाराएँ

फिर यूरोपमें भापके आविष्कारके कारण जो औद्योगिक क्रान्ति हुई और जिसकी परिधि और परिधि विश्वव्यापी होती गयी उससे बचना-बचाना सम्भव न था। इसलिए कुछ समझकर कुछ बे-समझे कुछ स्वेच्छासे कुछ बेबसीके कारण उन्हें शिक्षा न्याय-व्यवस्था कल-कारखाने मतलब नई सभ्यताका अधिकाधिक परिचय एवं लाभ भारतीयोंको लेना पड़ा। प्रेस एवं अखबारोंके कारण दुनियामें एक नई चेतना आ रही थी। यहाँ भी समयपर वह आई। इसके प्रभाव-तले हममेंसे एक वर्गने अपने देश एवं संस्कृतिके प्रति गौरवके भावका प्रचार किया दूसरेने उन्मुक्त हृदयसे यूरोपसे नवीन दृष्टिकोणके लाभ ग्रहण किये अपनी परम्पराओंके दोषों एवं अपनी दुर्बलताओंकी ओर ध्यान दिया। 'जो पुराना है वह अच्छा ही है' इसके विरुद्ध भी कुछ प्रबुद्ध व्यक्ति उन्मुख हुए।

उच्च वर्गों में शिक्षाका क्रम

५ उच्च मध्यवर्ग राजनीतिक शक्तिसे हीन होकर भोग-विलास अधिकार जायदादमें फँसकर जीवन बिताता था। उसकी शिक्षाका कोई प्रबन्ध न था। जहाँ था भी वहाँ उसका ढाँचा बहुत पुराना अनगढ़ और अविकसित था। वे लोग उस्तादोंसे थोड़ी अरबी-फ़ारसी पढ़ लेते कुछ हिन्दू संस्कृत भी पढ़ते। जो हिन्दू दरबार एवं नौकरियोंसे सम्बन्धित थे या जिनका रब्त-ज़ब्त उच्चवर्गीय मुसलमान अमीरों अथवा नवाबोंसे था वे भी फ़ारसी पढ़ते। हिन्दू-मुसलमानके बीच भाषाका कोई झगड़ा न था। उच्चवर्गोंकी ज़िन्दगी चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान प्रायः एक-सी थी। उनमें रस्मरवाज, मेल-मिलाप भी था। पर शिक्षामें भाषा-ज्ञान ही मुख्य था। भाषाके माध्यमसे अभिरुचिकर काव्य एवं पारम्परिक धर्मग्रन्थोंका अध्ययन होता था।

१. अन्तिम मुग़लोंके ज़मानेमें सांस्कृतिक दृष्टिसे कुछ बातें हुईं। इनमें पहिली बात है उर्दूका अभ्युदय। तुर्कों, ईरानियों एवं भारतीयोंके संसर्गसे एक नई ज़बानका जन्म हुआ। हिन्दकी ज़बान होनेके कारण यह हिन्दवी कहलायी। इसीने इसे बचपनमें सम्भाला हातिम, अकबर, मज़हर और ख़ाँ आरज़ूने इसे होशयार किया। बादमें यही रेख़ता हो गयी। शुरूमें यह एक ग्रामीण बोली थी—उस समय शरीफ़ज़ादोंने इसे नहीं अपनाया। वे फ़ारसी लिखने और बोलनेमें अपनी शान समझते थे। फ़ारसीयत एक प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराका प्रतीक थी इसलिए उसमें पारंगत होना घराऊपनका शिष्ट जीवनका एक प्रमाणपत्र था। पर हिन्दवी या रेख़तामें एक अजब लोच थी उसमें इस देशकी मिट्टीकी सुगन्ध थी (यद्यपि उसका वातावरण फ़ारसीका ही था) इसलिए धीरे-धीरे उत्तर, फिर दक्षिण और फिर उत्तरमें अनेक कवियोंने उसे अपनाया। ज़्यादातर ऐसे थे जिन्होंने शौक़िया एक नये प्रयोगके आकर्षणके कारण उसे अपनाया। यही बादकी उर्दू है जो दरअसल हिन्दीकी ही एक धारा है। दर्द, सौदा और मीरतक़ी 'मीर'ने इस भाषाका संस्कार किया बादमें नासिख़ और ग़ालिबने उसे सँवारा। शाह आलमने उसे दरबारमें संरक्षण दिया। मतलब अन्तिम मुग़लोंने स्वयं मिटते हुए भी उर्दूके विकासमें काफ़ी योग दिया।

उर्दूका जन्म

दूसरी बात हुई अंग्रेज़ों फ़रासीसियों आदिका भारतीयोंसे संसर्ग। इनके साथ एक नया दृष्टिकोण एवं नया जीवन-दर्शन आया। एक सिहरन हुई, नींदमें एक फुरेरी-सी आई और पश्चिमके तीव्र प्रकाश आदिने मानो झिंझोड़कर हमें जगा दिया। अंग्रेज़ोंके अभ्युदयके साथ यूरोपीय शिक्षण प्रणाली प्रेस अख़बार, शासन-व्यवस्था न्याय-प्रणाली आईं। औद्योगिक सभ्यताका शैशव आरम्भ हुआ। शान्ति तो आई पर एक सुरक्षा एवं निश्चितता प्राप्त हुई। इस नवीन जीवन इसने उच्च एवं मध्यवर्गोंको प्रभावित किया। शासक-सम्प्रदायको पास

नवीनका आकर्षण

मानलेवाले भारतीयोंको समुद्री तूफ़ानने झकझोर दिया। नवीनके प्रति एक रहस्यका आकर्षण उत्पन्न हुआ।

७ अन्तिम मुग़लोंका जीवन कष्ट, मुसीबत करुणासे पूर्ण एक ऐसी कहानीके रूपमें प्रकट हुआ जिससे इंसान सबक ले सकता है। शाहआलमने ठीक ही कहा था—

सरसरे हादसा बर्ख़ास्त पये ख़्वारिए मा।
दाद बबाद सरोबर्गे जहाँदारिए मा।

और उनकी यही वेदना घनीभूत होकर अन्तिम मुग़ल सम्राट बहादुरशाह 'ज़फ़र' के साथ रंगूनकी एक अँधेरी कोठरीमें जहाँ केवल उनकी रोनेके लिए रह गयी थी यों बरस पड़ी थी—

अपने मरनेका ग़म नहीं लेकिन,
हाय तुमसे जुदाई होती है।

यह ग़म केवल अपने मरनेका अपने मिटनेका ही ग़म नहीं है, यह एक प्राचीन परिपाटी एक प्राचीन विरासत एक जीवन-प्रणाली एक सभ्यताके मिटनेका ग़म है। इसीलिए यह ग़म वाली ही नहीं आत्म-वेदना ही नहीं उसमें दौरे—युग-वेदना—भी है। एक दुनिया युगोंकी जानी-पहचानी परखी-परखाई दुनिया मिट रही थी और एक मादक नवीन पर अज्ञात दुनिया भविष्यके पर्देमें झलती हुई दुनियाकी परछाइयाँ पहिलेसे ही फेंकने लगी थी।

आत्म-वेदना ही नहीं युग-वेदना भी

संक्रान्तिके इसी कालमें ग़ालिबका जीवन बीता—वह पैदा हुए, पले बढ़े दुनिया देखी खेले-खाये रोये-हँसे और चले गये। वह ईरानी संस्कारोंसे पूरित थे। फ़ारसीयत उनके ख़ूनमें प्रविष्ट हो गयी थी और उसके प्रति दृढ़ आग्रह उनके जीवनमें अन्त तक दिखाई देता है। जैसे पुराने पण्डित वर्गमें हिन्दीके प्रति उपेक्षा और उपहासका भाव था वैसे ही

ग़ालिब और उनके वर्गमें इस नई ज़ुबानके प्रति गुरूरताका भाव था। ग़ालिबकी ज़िन्दगी भी वही रईसज़ादोंकी स्वच्छन्दताके लिए तड़पती हुई ज़िन्दगी थी जिसके बारेमें हम ऊपर कई जगह संकेत कर चुके हैं। स्वभावतः वह एक सादी ज़िन्दगी थी पर उनके तथा उनकी रचनाओंकी पृष्ठ-भूमिपर जो ऐतिहासिक प्रवृत्तियाँ एवं शक्तियाँ उभरीं उन्होंने उनको समझा एवं सीमातक उनकी ओर आकृष्ट भी हुए। चूँकि ज़माना बदल रहा था पुरातन और नूतनकी आँख-मिचौनी हो रही थी उन्होंने दोनोंको ग्रहण किया अतः यों कह सकते हैं कि परिष्कृत पोशाक पुरानी होते हुए, और उसमें एक पुराने रिवाजकी पकड़में होते हुए भी अभिव्यक्ति कल्पना पकड़ और सूझ नई थी—जिस्म पुराना पर दिमाग नया। प्राचीनकी वरासत ग्रहण करनेवाला दिलपर नवीनकी ओर देखती चिन्तनाकी आँखें कुछ बने कुछ खोये हुए, सामन्तिक कल्पनाओंकी ऊँचाइयोंमें घूमे पर उनकी उपयोगिता एवं सत्यताके प्रति शंकाएँ जिसके ओठोंपर मचलती और आँखोंमें चमककर व्यंग करती हैं यह थे ग़ालिब। अपने ज़मानेके पतनकी परछाइयोंके बीच वर्गमें करवट लेते नवीनका अभिवादन करनेवाले!

प्राचीनके बीच नवीनकी झलक—यह थे ग़ालिब!

उनके समयमें भारतीय समाज सभ्यता शासन सब टूट रहा था। मुग़ल वैभवकी प्रतीक दिल्ली विदेशोंमें शहंशाहकी तरह प्रसिद्ध दिल्ली विदेशियोंके हमलोंपर हमले और दिमागपर जादूकी तरह छाई दिल्ली लुट-पिटकर पस्त हो गयी थी। ऐसी पस्त कि उसके लिए कवि मन रोते नृपतिगण सिर धुनते सिद्ध एवं शिक्षित-जन भाग्यवादसे अभिभूत होते और जन-सामान्य वेदनाकी घूँट पी-पीकर रह जाते थे। वह विधवा-सी हो रही थी। एक दिन उसके भृकुटि-विलासपर राज्य बनते-बिगड़ते थे उसकी मुस्कराहटसे अगणित जन-प्राण शीतल होते थे एक दिन यहाँ-से 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' घोष उठता था एक दिन इसकी

विधवा-सी उपहास का कारण दिल्ली!

चोटीपर उसकी नाजोअदापर राजमुकुट चमकते थे उसके चरणोंमें शत-शत मस्तक अर्पित होते थे एक दिन वह संसारका स्वर्ग थी पर आज वही भूलुण्ठिता थी। जो आता उसे मसल देता जो आता उसके दिलके जख्म कुरेद कर देखता कि यह नाटक तो नहीं है, जो आता उसकी अस्मतपर हाथ डालनेको लोलुप। वह सिसकती है और लोग हँस देते हैं वह रोती है और लोगोंका मनोरंजन होता है, उसकी लटें सचमुच एक अँधेरेकी सृष्टि करती हैं एक ऐसे अँधेरेकी जिसमें लाखों स्वप्नोंका रोदन मसली आकांक्षाओंका क्रन्दन बीते वसन्तका करुण स्मरण और अतीतकी शत-शत स्मृतियोंका दंशन है। वह सिसकी जिसके वैधव्य में सारी पस्तीके बावजूद एक अद्भुत आकर्षण था—डूबते हुए सूर्यकी कालिमामय आकर्षण।

मिटते प्राचीनमेंसे फूटता नवीन

भारतीय जीवन जर्जर हो रहा था। उसकी गरिमा नष्ट हो चुकी थी। जीवनकी गहराई और पकड़ खो गई थी दर्शन एवं तत्त्वज्ञान दिल-बहलावका साधन बन गये थे। पर पतनमें मिटती हुई एक लम्बी जीवन-विधिके पीछे तेजी-से उभर उठती एक नई सभ्यता एक नई जीवन-विधिकी आवाजें कुछ अस्पष्ट-सी आने लगी थीं। पुरानी सभ्यता मृत्युकी वेदनामें करवटें लेती थी और उसके अन्तरसे अँगड़ाइयाँ लेता नवीन फूट-फूट उठता था।

गालिबका कार्य

गालिबने नये जमानेकी आते हुए नवीनके चरणोंकी धमक सुनी। यह बूता तो उनमें न था कि एक नई राह, एक नई दुनिया एक नया समाज वह गढ़ते इतना ही क्या कम था कि प्राचीन शृंखलाओंको अपने तनसे नहीं तो मन से अवश्य उतार दिया और समझा कि जो नया आ रहा है वह हमारे बावजूद उपदेशकोंके लाख-लाख सिफारिशोंके बावजूद आकर रहेगा। इस-लिए उसे अपनाना ही होगा इसलिए कि यही इस युगका सत्य है।

इसीलिए उनमें अँग्रेजोंके प्रति अँग्रेजी समाजके प्रति एक झुकाव हम देखते हैं। उन्होंने कभी खुलकर अँग्रेजोंका विरोध नहीं किया १८५७ के उन तूफानी दिनोंमें भी नहीं किले और बादशाहके सम्पर्कमें रहते हुए भी नहीं। इसे उनकी देशभक्तिका अभाव भी कहा जा सकता है पर वस्तुस्थितिको समझने और ग्रहण करनेकी उनकी पटुताका प्रमाण भी इसमें सन्निहित है। यह दिल्लीकी खुशकिस्मती है कि उसके पतनके उस जमानेमें किसी शायरके ओठोंपर विद्रोहका वह बिगुल अपनी शायरीमें नहीं उठा कि कौमकी स्वप्न-विजड़ित आत्माएं—जागीरा स्वं—एका-एक जग पड़ती। गालिबकी जिन्दगीका जो मत्न था उसमें यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी पर इससे उन्हें देशद्रोही नहीं कहा जा सकता। वह अँग्रेजोंके प्रति अनुकूल इसलिए थे कि वह उस जमानेका एक सत्य था जिसे इन्कार करना जमानेको इन्कार करना होता। अँग्रेजोंके साथ जो जीवनकी चमक-दमक आ रही थी जो जीवन-विधि आ रही थी उसमें लाख खामी रही पर एक उम्मेद था संसार-सुखको खूब उत्साह एवं उमंगसे ग्रहण करने जिन्दगीका अधिकसे अधिक रस लेनेकी वृत्ति थी। यह वृत्ति गालिबकी उत्फुल्लता रसग्राहिणी भोग-प्रधान जीवन-वृत्तिके भी अनुकूल थी। वह दिल्लीकी बरबादीपर रोते हैं पर अँग्रेजोंके आगमनपर खुश हैं। वह बादशाहके सेवक और शायर हैं पर उनके मिटनेपर हम उन्हें रोते-तड़पते नहीं देखते। युगकी एतिहासिकताका ग्रहण उनके जीवन का सत्य है।

अँग्रेजोंको इन्कार करना जमानेको इन्कार करना होता

०

समीक्षा-भाग

ग़ालिब : मानसिक पृष्ठभूमि और मानवीय संवेदनाएँ

ग़ालिबके जीवन और काव्यमें सर्वत्र उसका मानवीय रूप बिखरा हुआ मिलता है। उसकी गुणहीनता-अक्षमताएँ दोष-गुण दोनों इन्सानके दोष-गुण हैं। यही सामान्यता उसकी असाधारणता है। हमारा अभिप्राय यह है कि उसका निर्माण अपने युगके एक साधारण मानवके समानान्तर होते हुए भी अनुभूति एवं कल्पनामें उससे कहीं तीव्र है और विरोधी वातावरण एवं तूफ़ानोंके बीच भी वह मानवकी उस बुभुक्षा उस प्यास उस उत्कण्ठा तथा उन सहानुभूतियोंकी रक्षा कर सका है जिनके कारण जीवनका रस कभी दुखोंकी सीमापर पहुँचा और कहीं उन्हें मिटाकर नई चीज़ें बनाता है तथा मनुष्यको नई शक्ति नये मूल्य एवं नई दिशाएँ प्रदान करता है।

मानवकी वह बुभुक्षा और प्यास।

ग़ालिबके निर्माण-तत्त्वोंका अध्ययन करनेसे हमें उनमें परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। ये अन्तर्विरोध या परस्पर-विरोध व्यक्ति एवं युग दोनोंके अन्तर्विरोध हैं। व्यक्तिगत एवं समयगत प्रवृत्ति भरा हुआ पर बदलते हुए ज़मानेसे मैं तंग कि हर क़दमपर यह बात परिलक्षित होता है किसीके सामने हाथ फैलानेमें घमण्ड अनुभव फिर भी सदा हाथ फैलानेको बाध्य· ज़मानेके दुःखोंको समेट लेनेका दावा लेकर भी अपनी तंगीसे दलित, उपेक्षों और रंगीनियोंकी एक दुनिया दिलमें बसाये हुए, फिर भी क़दम-क़दमपर असफलता एवं निराशासे उत्पीड़ित

अन्तर्विरोध व्यक्ति और युग दोनोंके अन्तर्विरोध हैं

अपनी फ़ारसीयत एवं फ़ारसी रचनापर आत्म-मुग्ध किन्तु युगकी प्रतिक्रिया-से ऐसा प्रभावित कि जिस रेख़्ता (उर्दू) को पाँवकी धूल समझता था उसीने उसे अमर कर दिया और उसकी लोकप्रियता फ़ारसी काव्यसे बढ़ गयी। रहन-सहन (वज़ा) में सामन्ती विचारसे रईस मूलसे मुग़ल रक्तसे ईरानी—फ़ारसी—और मजबूरी तथा परिस्थितिसे हिन्दुस्तानी ग़ालिब अनेक व्यक्तित्वोंका व्यक्ति है, अनेक रंगों का चित्रकार है, अनेक अन्तर्विरोधोंका आकर है।

किन्तु इन सब अन्तर्विरोधोंको समतल कर देनेवाली एक चीज़ है, दुनिया और इन्सानको प्यार करनेकी उसकी फ़ितरत। यह उसकी समस्त विषमताओं सब नाहमवारियोंको ढँक देती है, उसकी सम्पूर्ण दुर्बलताओं और अपूर्णताओंको अपने अंकमें समेट लेती है। यही वह चाह है जिसके कारण उदासी और दुःखकी घटाएँ प्यारकी बिजलियोंसे चमक-चमक उठती हैं और भावनाकी धरती संवेदनाओंकी सरस वर्षासे तृप्त होकर उर्वरा हो उठती है। यह जग बुरा हो पर इन्सानका दिल उसकी हर बातमें धड़क-धड़क उठता है—देवताका नहीं इन्सानका दिल धर्म-कर्म भूलसे भरा दिल जो अपनी अमर्यादित क्रियाओंमें जीवनकी प्यास लिये चलता है।

अन्तर्विरोधोंको समतल करनेवाला तत्त्व

ग़ालिब जिस ज़मानेमें पैदा हुआ वह मुग़ल साम्राज्यकी सन्ध्या थी। वह एक ऐसी सभ्यतामें पला जो ऊपरसे मोहक बनी हुई थी पर अन्दरसे इतनी खोखली हो गयी थी कि मृत्यु ही उसकी मुक्ति थी। उस सल्तनतका शीराज़ा तेज़ीसे बिखर रहा था। इस बिखरावके क्रमको बहुत कम लोग देख पाते थे। विलासिताने लोगोंको मोहाविष्ट कर रखा था और उच्च वर्गके लोग उस विनाशकी ओरसे आँखें मूँदे अपनेमें ही सिमटे पड़े थे जो तेज़ीसे उनकी ओर दौड़ा चला आ रहा था। चरित्र राष्ट्रीय न होकर बहुत कुछ वैयक्तिक हो गया

वह ज़माना।

था—निजी या अनुभूयत सामाजिक पक्षमें लिपटा हुआ। ग़ालिब ऐसे ही समाजमें हुआ। बचपन दुःखमें पला किशोरावस्था रंगरलियोंमें गुज़री पर उत्तम संस्कारकी एक भी किरण न मिली। कोई निश्चित संस्कार बचपनमें न बन सका। न वातावरण था न प्रेरणा थी न बतानेवाला था। वैसे गुज़रती थी और एक रईसज़ादेके लिए यही क्या कम था। स्वभावतः उसमें विलासी जीवनकी परम्पराएँ पनपीं। अपने वर्गके बहुत अधिक लोगोंकी तरह उसे भी विलासिता एवं कामनाके तूफ़ानकी ज़िन्दगी मिली।

पर एक बातमें यह औरोंसे भिन्न था। उसे किसीकी ममता अधिक दिनोंतक नसीब न हुई। उसकी खुशहालीके पीछे बदनसीबी झाँक रही थी।

खुशहालीके पीछे झाँकती बदनसीबी

बदनसीबीने उसको यतीम किया दुनियाके बुरे रास्तेपर धकेला छोड़ दिया और बदनसीबीने हवेलियोंकी चौखट इसको मढ़ा और तूफ़ानी झोंकोंसे इसमें जीवनकी गति उत्पन्न की। बचपनमें हम देखते हैं कि एक ओर आराम-आसाइशकी सब सामग्री प्रस्तुत थी दूसरी ओर वह अनाथ था तनसे भी और मनसे भी। इस हालतपर उसके दुःख-दर्दकी दवा नहीं थी। यह स्थिति जीवन भर चलती रही और कभी समाप्त नहीं हुई। दो बरसका था कि बाप मरा नौ बरसका था कि चचा मर गये। बच्चा था और घरमें अभाव न था इसलिए यह घर कुछ समयके लिए बाहर ही बाहर रह गया पर यह इसके जीवनका एक महत्त्वपूर्ण एवं स्मरणीय तथ्य है कि पाँच बरसकी उमरके बाद इसका कोई सरपरस्त न रह गया। किसीके आगे झुकनेकी ज़रूरत न रही कोई अनुशासन न रहा

निर्बाध जीवनकी शुरुआत

(इसीलिए ग़ालिबके हृदयमें यह आत्मसमर्पणका भाव कभी न आया जो मोमिनके मानसमें आध्यात्मिक अनुभूतियोंकी सृष्टि करता है)। चचाके मर जानेके बाद दुनियाकी रंगरलियोंमें घुसनेका रास्ता खुल गया। कोई रोक-टोक न रही। ज़रा ही बड़ा हुआ कि दिल्ली आया और एक उच्च वंशकी

बचपनकी इसे गले बाँध दी गयी। वह उसके बन्धनोंमें बँधे ही बँधकर रह गयी। कभी दिलमें न उतरी, आँखोंमें न चमकी, पाँवोंमें पड़ि न बनी, अरमानोंमें न उभरी। जीवनके अन्तिम क्षणतक खटपट रही। उधर इसरतकी बैठक पुरानेमें जो पास था समाप्त हो गया, घरकी चीज़ें बिक गयीं और उन कठिनाइयोंका जो सिलसिला शुरू हुआ वह जिन्दगी भर न टूटा। मरनेके बाद भी बच्चो रहा। जिन्दगी सदा ऋणदाताओंकी मोहताज रही। १ बरसमें भाई पागल होकर मर गया। कई बच्चे हुए पर एक न जीया।

स्वामी [illegible] जीवन

जिसे गोद लिया वह भी चल बसा। इसीसे जिस जीवन-रसकी आशा थी उसकी एक बूँद न मिली। ५ बरसकी उम्रमें जेल जाना पड़ा। इस प्रकार मुझके चन्द दिनों बाद दुःख जो आया तो जिन्दगी भर मेहमान बना रहा। जीवनके उद्यानमें चन्द दिन रहकर जो बहार गयी तो गयी फिर सदा खिज़ाँकी सनसनाहट, शोर और कुरेदन बनी रही।

वह दुःखमें पला। दुःख उसकी जिन्दगीपर छा गया किन्तु उसके अन्दर जो जीवनकी प्यास थी उसने कभी उसके प्राणको दिलको मरने न दिया। उसने दुःखोंकी गुलामी स्वीकार की और सदा उनसे लड़ता रहा। कभी हथियार नहीं डाले। जिन्दगीकी घाटियोंमें भटकता हुआ निराश भी हुआ और दुःखका कलेजा दहलानेवाला चीत्कार भी सुनाई दिया—

जीवनकी प्यास

> है सब्ज़ ज़ार हर दरो-दीवारे-ग़मकदः;
> जिसकी बहार यह हो फिर उसकी ख़िज़ाँ न पूछ ॥१॥

× ×

> जिसे नसीब हो रोज़सियाह मेरा-सा
> वह शख़्स दिन न कहे रातको तो क्योंकर हो ? ॥२॥

× ×

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्लसे गुज़री 'ग़ालिब'
हम भी क्या याद करेंगे कि ख़ुदा रखते थे ॥३॥

[१ क़फ़स—कुफ़्ल करके द्वार न खोलना, मुर्ग़ोंकी चौकसीके कारण हमी क़फ़समें मर गये हैं यही इस चमनकी बहार है तब हमारी ज़िन्दगीका हाल क्या पूछते हो ? २ जिसे मेरे जैसा रोज़े-सियाह—काला दिन—प्राप्त हो वह विवश है कि दिनको रात कहे क्योंकि ऐसा काला दिन दिन तो कहा नहीं जा सकता। (भला उस दिनकी सियाही कैसी होगी जिसके आगे रात भी दिन मालूम होती है ?) ३ जब हमारी ज़िन्दगी ऐसे बुरे हालमें गुज़री (कि कभी कोई आरज़ू पूरी न हुई) तो हम भी क्या याद करेंगे कि हमारा भी कोई ख़ुदा था।]

रोदनको मुसकराहट की गोदमें सुलाने-वाला दीवान

पर ग़ालिबकी विशेषता यही है कि वह इतनेपर भी कभी ग़मका शिकार नहीं हुआ। क़िस्मतपर रोया भी है—कलेजेको टूक-टूक करनेवाला रोना दिलोंको हिला देनेवाला रोना किन्तु फिर इस रोदनको मुसकराहटकी गोदमें सुला दिया है, एक आत्मविनोद (सेन्स-ह्यूमर) में दुःख-दर्द खो गये हैं और जीवनकी उमंगोंके रंग फिर उभर आये हैं, कामनाके पंछीके जैसे फिर पर जमने लगे हैं।

मतलब यह कि दुःखोंमें निराश होकर वह कभी न बैठा सदा चलता ही रहा। मंज़िलपर बैठकर रोनेकी जगह, रोते-हँसते और लड़खड़ाते हुए राहपर आगे बढ़ते जाना उसका पेशा था।

यह ठीक है कि ग़ालिबका प्रेम उस कोटिका नहीं था जो मानवता-के बन्धन तोड़नेको उद्यत होता है, जिसमें आदमी आकाश-कुसुम तोड़न

को बेचैन हो उठता है और दुःखका गला मरोड़ कर, पसलीकी पसलियाँ तोड़कर निराशाओंके धुन्ध-धुएँपर जीवनकी ज्योति और आशाके पंख

मर्मपर उघाड़नेवाला ग़म नहीं

फूँकता है तथा स्वप्निल आत्माओंको स्वर्गीय सपनोंको बेदार कर देता है—संसारका, बेहद बरबस रुलानेवाला ग़म जो इंसानकी बर्फपर उमड़ा देता है वह ग़म जो युद्ध और आँधीमें फूटता है, या और नज़दीक और नीचे स्तरपर उतर कर कहें तो वह ग़म जो 'हाकी' 'फोर्ड' और फ्रैंक वगैराको बेचैन कर देता है। स्वभावतः उस माहौलमें उस वातावरणमें जिसमें ग़ालिब पला था वह सम्भव न था पर वह ग़म ऐसा भी नहीं है कि मीरके ग़मकी भाँति कलेजेके पोर-पोरमें समा जाय निकाले न निकले हटाये न हटे और ज़िन्दगीपर एक अपरिवर्तनीय वस्तुकी

वह ग़म भी नहीं जो कभी दूर न हो

तरह छा जाय ग़म जो जिसे छूता है बस रुलाता है और रुलाता है जिसकी आँखोंपर उतरता है उसकी ज्योति छीन लेता है, जिसको डँसता है उसे सदाके लिए अपने आगोशमें आलिंगनमें यों जकड़ लेता है कि फिर छुटकारा नहीं।

इन दो आत्यन्तिक सीमाओंके बीच एक ग़म और होता है, जो स्वस्थ इंसानका ग़म है वह ग़म जिसमें बिखरे हुए अंगारोंके बीच भी ज़िन्दगीके मेले लगते हैं वह ग़म जिसमें इंसान रोता है पर रोकर

दुनियासे मुहब्बत सिखानेवाला ग़म

समाप्त नहीं हो जाता और पुलक जाता है, ज़िन्दगीके लिए और शक्ति प्राप्त करके उठता है। ग़ालिबका ग़म इस इंसानका ग़म है जो ऊबकर निराश होकर संसारका त्याग करनेको उतावला नहीं होता बल्कि इनके बावजूद तथा उनके कारण दुनिया तथा उसकी चीज़ोंसे और मुहब्बत करना सीखता है। हर कठिनाई हर दुःख उसे बताता है कि यह दुनिया कितनी सुन्दर, कितनी प्राणोन्मादक कैसी मोहक है।

ग़ालिब हर हालतमें इसी दुनियामें रहना चाहता है और इसी दुनियाका रस और स्वाद लेनेके लिए प्रयत्नशील है। तूफ़ान आते हैं, पैर लड़खड़ा जाते हैं जब यह स्वाद नहीं मिलता तो दुःखी और निराश भी होता है पर कभी दुनियाका तिरस्कार नहीं करता। उसमें दुनियाके प्रति घृणा नहीं एक अटूट लगाव है। इसीलिए ग़ालिबका ग़म मारक नहीं है। यह जीवनका ऐसा शृंगार है जिसमें कामनाओंका हुस्न अपनी अपरिमित आशाओंके साथ मचलता है, जिसमें जीवनकी गति है जीवनका स्पन्दन है।

ग़ालिब मुग़ल था। जीवनके विषयमें मुग़लोंका दृष्टिकोण उत्फुल्लताका दृष्टिकोण है। मुग़ल रक्तमें धर्म और मज़हबकी प्यास शिथिल होती है और जीवनकी रंगारंगी एवं रंगीनियोंके प्रति उसमें तीव्र आकर्षण होता है। स्वभावतः वह विलासी एवं काव्य-संगीत तथा सौन्दर्यका प्रेमी होता है। ग़ालिबमें भी यही रंग उभरा मिलता है।

मुग़लका रंग

उसमें संसारके प्रति कामनाका प्रबल आग्रह है। संसारके प्रति यह अदम्य प्यास ही उसके जीवनका रस है उसके काव्यका प्राण है। बाधित कामनाएँ उनके जीवन और काव्यसे फूटती हैं। आले अहमद सुरूरने ठीक ही लिखा है—"उन्हें बचपनकी तफ़रीहातें जवानीकी रंगरलियाँ ऐशोइशरतकी बहारों सबमें हिस्सा मिला मगर उनके अरमान निकलनेपर भी न निकले*। वह दरियामें सैराब होते हुए भी प्यासे रहे। यह तिश्नगी यह प्यास

यह अदम्य प्यास ही जीवनका रस और काव्यका प्राण है

---

१ सैर-सपाटा विहार, मनोरंजन २ विलास ३ तृप्त पूर्ण छके हुए, ४ पिपासा।

* हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।

यह बेचैनी यह बहुत कुछ हासिल[1] होते हुए भी बेहासिलीका एहसास[2] मामूली नहीं है। §

और यह अमित प्यास किसी सिकन्दरकी प्यास नहीं है। भोग और शराब कोई उसकी ज़िन्दगी नहीं है, जीवनके सत्कारके साधन-मात्र हैं। वह नशा करता है पर मदहोश नहीं है, नशा एक मस्तीका साधन भर है—

मयसे ग़रज़ निशात[3] है किस रूसियाहको[4],
इक गूना बेख़ुदी मुझे दिन-रात चाहिए।

इसी प्यासने उसे गति दी है। वह जानता है कि जीवन स्वयं गति है। ज़िन्दगी एक प्रवाह है, एक रवानी है, एक सफ़र है। मृत्यु एक पड़ाव है, एक मंज़िल है एक गतिहीनता है। *इसीलिए वह मंज़िलपर नहीं रुकना चाहता है।*

जीवन गति है

जब तक श्रम है खुशी है, चल-चलाव है गति है तभी तक यह ज़िन्दगी है। इसलिए वह बराबर चलते रहनेमें विश्वास रखता है। यहाँ आयु निर्बन्ध होकर भाग रही है। उसपर किसी प्रकारका नियन्त्रण नहीं है—

[5]रौमें है रख़्शे[6] उम्र कहाँ देखिए थमे
ने हाथ बागपर है न पा है रकाबमें।

[आयुका अश्व—काल अश्व—इस तीव्र गतिसे भाग रहा है कि बाग हमारे हाथसे और पाँव रकाबसे निकल गये हैं, कुछ मालूम नहीं कि यह कहाँ जाकर थमता है।]

१ प्राप्त २ अनुभूति ३ ऐश ४ कृष्णमुख पापी ५ गति
६ श्याम और सफ़ेद घोड़ा।
§ नक़्दे ग़ालिब पृ० १२।

यह मानसिक स्थिति है कि निष्क्रिय शान्तिकी अपेक्षा ज़िन्दगीका शोर गुल और हंगामा फिर चाहे वह रंज ही हो अच्छा लगता है। कहते हैं—

एक हंगाम पे मौक़ूफ़ है घरकी रौनक़,
नौहए ग़म[1] ही सही, नग़मए शादी[2] न सही।

[घरकी शोभा एक चहल-पहलपर निर्भर है। इसलिए आनन्दका गान न हो तो शोकका गीत ही अच्छा रहे।]

यह कारण है कि वधस्थलकी ओर जाते हुए भी ज़िन्दगीकी वही उमंग और आह्लादका वही रंग है—

[3]मक़्तलको किस निशात[4] से जाता हूँ मैं कि है
पुरगुल ख़याल ज़ख़्मसे दामन निगाहमें।

इसीलिए ग़ालिबका दुःख जीवनको और मोहक बनाता है। फिर यह ग़म भी अनेक कोटियोंमें बँटा हुआ है। इन कोटियोंमें इश्क़का ग़म (प्रेम-वेदना) श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें जीवनानन्द है, क्योंकि यह दर्द भी है और दवा भी है—

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्त[5]का मज़ा पाया,
दर्दकी दवा पाई दर्दे बे दवा पाया।

फिर जब ग़म ज़िन्दगीसे लिपटा हुआ है तब इश्क़के ग़मसे बच भी जाते तो दुनियाका ग़म रोज़गारका ग़म कोई और ग़म तो होता ही। तब यही अच्छा है—

ग़म अगर्चे जाँ-गुसिल[6] है पै कहाँ बचें कि दिल है
ग़मे इश्क़ अगर न होता ग़मे रोज़गार होता।

---

१ शोकका गीत २ आनन्दगान ३ वधगृह, ४ आह्लाद, ५ जीवन ६. हृदयविदारक प्राणघातक।

ग़ालिबके सारे जीवनमें कोई न कोई ग़म दिखाई पड़ता है। कभी इश्कका ग़म है, कभी रोज़गारका ग़म है यहाँ तक कि कभी अस्तित्व-का ग़म (ग़मे हस्ती) भी है। पर इन ग़मों-को उलीचकर उसने सुख और हास्यके प्याले भर दिये हैं। बहुत दुःख उठाया है उसकी ज़िन्दगी आख़ीर तक दुःखसे भरी रही।

ग़मोंको चीरकर बहते हुए सुख और हास्यके झरने।

बचपनसे वृद्धावस्था तक दुःख ही दुःख—यतीमीका दुःख, संतानहीनताका दुःख, स्त्रीका दुःख, पैसेका दुःख, उत्तरकालमें अपने साथियों-सहयोगियोंसे बिछुड़नेका दुःख—मोमिन मरे, इमामबख़्श सहबाई तोपसे उड़ा दिये गये मयकशका प्राण गया, बहादुरशाहको कालापानी हुई, पेशवा वंचित हुए—दिल्लीकी सल्तनत ख़त्म होनेका दुःख, दुनिया-द्वारा अपनी ठीक पहिचान न होनेका दुःख, वंश-मर्यादा निभानेकी कठिनाइयोंका दुःख। पर ये दुःख कभी उसकी ज़िन्दगीकी हविस तोड़नेमें समर्थ न हुए। ऐसा नहीं कि असफलताकी निराशाने दिलको छेदा नहीं। ग़ालिब निराश हुआ है और ख़ूब हुआ है। मौसम कलेजेका दर्द सीमाको पहुँच गया है और कह भी जाता है—

ख़मोशीमें निहाँ ख़ूँगश्ता लाखों आरज़ूएँ हैं
चिराग़े मुर्दा हूँ मैं बेज़बाँ गोरे ग़रीबाँका।

[हमारे मौनमें लाखों कामनाएँ ख़ून हो होकर, प्रच्छन्न हो गयी हैं। मैं बेज़बान परदेशियोंकी क़ब्रोंका मृत—बुझा हुआ—दीपक हूँ।]

पर जो आदमी स्वर्गके लिए भी दुनियाके आराम-आसाइश और मज़े छोड़नेको तैयार नहीं हुआ वह निराशामें कबतक पड़ा रह सकता था। एक अपनी मस्ती और फिर वही ज़िन्दगीका सटका जो बहता और बहलाता है।

न होगा यक बयाबाँमाँदगीसे ज़ौक़ कम मेरा,
हबाबे मौजए रफ़्तार है नक़्शे क़दम मेरा।

[एक बयाबानको पार करनेकी थकान मेरी (मार्गकी) उमंगको कम नहीं कर सकती। मेरा पद-चिह्न मेरी गतिकी तरंगमें सिर्फ़ बुदबुदकी भाँति है। अर्थात् जैसे लहरोंमें असंख्य बुलबुले उभरते रहते हैं पर उनका लहरोंकी गतिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वैसे ही इस यात्रामें मेरे चरण-चिह्नोंका मेरी गतिपर कोई असर नहीं है थकानसे मेरी चलनमें कोई कमी नहीं आई है।]

यह विश्वास ही ग़ालिबका ऐश्वर्य है।

अपनी शक्तिमें यही दृढ़ विश्वास ग़ालिबका ऐश्वर्य है। यही विश्वास जीवनको गति देता है—यदि वो परिवर्तनोंके बीच भी अपराजित स्वाभिमानका भाव लिये उसके पास आती है। एक फ़ारसी ग़ज़लमें तो उसने यहाँ तक कहा है—मेरा उन्माद मुझे बैठने नहीं देता। आग जितनी तेज़ है उतना ही मैं मस्त हुआ जा रहा हूँ। मौजसे लड़ता हूँ और कभी तलवारोंपर अपने जिस्मको डालता हूँ। तलवार और कटारसे खेलता हूँ तीरोंको चूमता हूँ। यह वृत्ति उसके

जहाँ ग़म ग़म नहीं सुखकी सीढ़ी है।

मनमें एक अजीब कम्पन पैदा कर देती है एक अद्भुत आकर्षण भर देती है, यहाँ तक कि ग़म ग़म नहीं रह जाता सुखकी सीढ़ियाँ बन जाता है। दुःखको सुखमें बदल देनेकी यही करिश्मा ग़ालिबके काव्य-का प्रधान तत्त्व है, यही उसके काव्यकी जीवन्त पृष्ठभूमि है।

× ×

ग़ालिबने इश्क़ किया ग़ुस्सेकी कमाई ढोलती थी मनकी महत्त्वाकांक्षायें पैदा पर ऐसा कभी न हुआ कि एक बिन्दुपर पहुँच कर रुक गया हो एक तत्त्व या तत्त्वमें केन्द्रित होकर रह गया हो। अन्तर एवं बाह्य दोनों

उसके जीवनानन्दका साधन है। 'मीर'में यही न था। वह अन्तरकी दुनियासे कभी बाहर न निकले, अन्तर एवं बाह्य दोनोंको मिलानेकी कभी कोशिश न की। इसीलिए उनमें वेदना और अनुभूतिकी गहराइयाँ हैं, मर्मस्पर्शी पकड़ है। दिलकी एक ऐसी दुनिया है जिसका चप्पा-चप्पा उनका जाना हुआ है। वह उसी पर मुग्ध हैं, उसीमें खो गये हैं। बाहरी दुनियाकी ओर नज़र ही नहीं डालते। पर ग़ालिब दिलके दयारमें सैर कर लेनेके बाद बाहर भी निकल आता है और यहाँकी बहार और फ़िज़ाका आनन्द भी लूटता है। उसमें एक अद्भुत व्यापकता और विविधता है। कैमरेके शीशेकी तरह जो कुछ सामने आया उस सबका प्रतिबिम्ब उसके मानसने ग्रहण कर लिया। यहाँ दिल धड़कता है पर दुनियाकी अदाकारियोंपर निछावर भी होता है, यहाँ भावनाकी वृद्धि है पर मांसलताका स्पर्श भी है।

ग़ालिब और मीरके मानसिक निर्माणमें अन्तर

मैंने ऊपर कहीं लिखा है कि ग़ालिबमें एक मुग़लकी दुनिया-परस्ती और रूमीयतकी रंगीनी है। पर यदि इतना ही होता, यदि उसके जिस्ममें खौलते हुए गर्म-गर्म खूनकी माँग बहुत तेज होती तो उस ज़मानेके मुग़लोंकी तरह बीबीको जो उसकी स्वच्छन्दताके पाँवमें बेड़ी-जैसी थी और जिसे वह सदा वैसी अनुभव करता रहा, छोड़ रंगरलियोंमें डूब जाता। अगर एक भारतीयकी अनुभूति तीव्र होती तो वह घर छोड़कर फ़क़ीर हो जाता, फिर चाहे तसव्वुफ़के रंग उसमें उभरते या ज़ाहिर और बातनका रोक वह इख्तियार करता। या फिर ऊँचाईपर निगाह कर प्रवक्ता बन कर एक संदेश, एक पयाम देनेकी कोशिश करता। पर वैसी बात न थी। उसमें अनेक व्यक्तित्वोंका सामञ्जस्य था, अनेक धाराएँ एक हो गयी थीं। यह व्यक्तित्व-बहुलता (Multiplicity of Personality) ग़ालिबको समझने-पानेकी एक प्रधान कुंजी है।

ग़ालिबकी कुंजी

ग़ालिब ख़ूनसे मुग़ल स्वभाव एवं रुचिसे ईरानी तथा रहन-सहनके संस्कारसे हिन्दुस्तानी हैं। अन्तरसे असीम प्यास लिये हुए भी मुग़ल ख़ून-की वह मस्ती लिये हुए भी जिसमें ऐशोइशरत-की विलासितकी अदम्य माँग है, विक्षेप नहीं है। उस मस्ती और प्यासपर भारतीय संस्कृतिकी शालीनता एवं ईरानी संस्कृतिकी विलासमयी धाराकी कुछ न कुछ छाप स्पष्ट है। स्वभावतः उसकी प्यास एक ऐसे स्वस्थ मानवकी प्यास बन गई जिसकी रगोंमें गर्म ख़ून बहता है पर जिसके दिमाग़में मानवी मूल्योंका एहसास भी है। एक अंग्रेज़ आलोचकने लिखा है कि 'ग़ालिबका इश्क़ बिल्कुल मादी है उसकी माशूक़ बाज़ारू है।" यह सही है, पर एकांगी। इसमें सत्य है पर आंशिक। उसमें कहीं-कहीं बाज़ारूपन ज़रूर आ गया है पर वह बाज़ारू नहीं है। वह न स्वर्गीय है, न बाज़ारू वह औसत इन्सान है। मादी भी है, क्योंकि जैसा मैं कह चुका हूँ ग़ालिबके लिए जो कुछ है, यही दुनिया है—इसके बाद जो कुछ है, उसमें उसको विश्वास नहीं।* वह इसी दुनियाका है—क्योंकि जिह्वाओंसे दुनियाका रस और स्वाद लेनेवाला कामनाके अपरिमित नयनोंसे उसकी सौन्दर्य-भंगिमाओंको देखनेवाला अन्तरके सहज-सहज करोंसे उसे स्पर्श करनेवाला। हम इसे पसन्द न करें यह और बात है। निजी रूपमें मैं स्वयं इसे पसन्द नहीं करता।

क्या उसकी माशूका बाज़ारू थी?

पर उल्लेखनीय यह है कि वह इस भौतिक जगत्में ही अन्तर्जगत्, अतीन्द्रिय जगत्का सौन्दर्य देखता है। इसीलिए प्रेयसीके हुस्नकी सौ-सौ अदाएँ उसे खींचती हैं। ये अदाएँ जो हमारे गहरे अध्यात्म-प्रवण व्यक्तियोंके अन्तर्मनको एक गूढ़ एवं रहस्यमय स्वाद, एक अव्यक्त आनन्द

---

* हमारे बच्चनकी तरह जो कहते हैं —
इस पार प्रिये मधु है तुम हो उस पार न जाने क्या होगा?

उसके जीवनानन्दके साधन हैं। 'मीर'में यही न था। वह अन्तरकी दुनियासे कभी बाहर न निकले अन्दर एवं बाह्य दोनोंको मिलानेकी कभी कोशिश न की। इसीलिए उनमें वेदना और अनुभूतिकी गहराइयाँ हैं अतलस्पर्शी पकड़ है। दिलकी एक ऐसी दुनिया है जिसका चप्पा-चप्पा उनका जाना हुआ है। वह उसी पर मुग्ध हैं उसीमें खो गये हैं। बाहरी दुनियाकी ओर नज़र ही नहीं डालते। पर ग़ालिब दिलके दयारमें सैर कर लेनेके बाद बाहर भी निकल आता है और वहाँकी बहार और ज़िन्दगीका आनन्द भी लूटता है। उसमें एक अद्भुत व्यापकता और विविधता है। केमरेके शीशेकी तरह जो कुछ सामने आया उस सबका प्रतिबिम्ब उसके मानसने ग्रहण कर लिया। यहाँ दिल धड़कता है पर हुस्नकी अदाकारियोंपर निछावर भी होता है यहाँ भावनाकी वृद्धि है पर मांसलताका स्पर्श भी है।

ग़ालिब और मीरके मानसिक निर्माणमें अन्तर

मैंने ऊपर कहीं लिखा है कि ग़ालिबमें एक मुग़लकी दुनिया-परस्ती और ख़ुदमस्तकी रंगीनी है। पर यदि इतना ही होता यदि उसके जिस्ममें दौड़ते हुए गर्म-गर्म ख़ूनकी माँग बहुत तेज होती तो उस ज़मानेके मुग़लोंकी तरह बीबीको जो उसकी स्वच्छन्दताके पाँवमें बेड़ी-जैसी थी और जिसे वह सदा वैसी अनुभव करता रहा छोड़ रंगरलियोंमें डूब जाता। अगर एक भारतीयकी अनुभूति तीव्र होती तो वह घर छोड़कर फ़क़ीर हो जाता फिर चाहे तसव्वुफ़के रंग उसमें उभरते या वाइज़ और ज़ाहिदका रोल वह इख़्तियार करता। या फिर ऊँचाईपर निखर कर प्रवक्ता बन कर एक संदेश एक पैग़ाम देनेकी कोशिश करता। पर वैसी बात न थी। उसमें अनेक व्यक्तित्वोंका सामञ्जस्य था अनेक धाराएँ एक हो गयी थीं। यह व्यक्तित्व-बहुलता (Multiplicity of Personality) ग़ालिबको समझने-पानेकी एक प्रधान कुंजी है।

ग़ालिबकी कुंजी

ग़ालिब खूनसे मुग़ल स्वभाव एवं रुचिसे ईरानी तथा रहन-सहनके संस्कारसे हिन्दुस्तानी हैं। अन्दरसे असीम प्यास लिये हुए भी मुग़ल खून की वह गर्मी लिये हुए भी जिसमें ऐशोइशरत की विलासिताकी अदम्य माँग है किशोरता नहीं है। उस गर्मी और प्यासपर भारतीय संस्कृतिकी शालीनता एवं ईरानी संस्कृतिकी विलासमयी बारीकी कुछ न कुछ छाप स्पष्ट है। स्वभावतः उसकी प्यास एक ऐसे स्वस्थ मानवकी प्यास बन गई जिसकी रगोंमें गर्म खून बहता है पर जिसके दिमागमें मानवी मूल्योंका एहसास भी है। डा० मसूद अलीने लिखा है कि "ग़ालिबका इश्क बिल्कुल मादी है उसकी माशूकः बाजारू है।" यह सही है, पर एक सीमातक। इसमें सत्य है पर आंशिक। उसमें कहीं-कहीं बाजारूपन आकर आ गया है पर वह बाजारू नहीं है। वह न स्वर्गीय है, न बाजारू वह औसत इन्सान है। मादी भी है, क्योंकि जैसा मैं कह चुका हूँ ग़ालिबके लिए जो कुछ है, यही दुनिया है—इसके बाद जो कुछ है उसम उसको विश्वास नहीं।* वह इसी दुनियाका है—अपरिमित जिज्ञासाओंसे दुनियाका रस और स्वाद लेनेवाला कामनाके अगणित नयनोंसे उसकी सौन्दर्य-भंगिमाओंको देखनेवाला कल्पनाके सहस्र-सहस्र करोंसे उसे स्पर्श करनेवाला। हम इसे पसन्द न करें, यह और बात है। निजी रूपमें मैं स्वयं इसे पसन्द नहीं करता।

क्या उसकी माशूका बाजारू थी ?

पर उल्लेखनीय यह है कि वह इस भौतिक जगत्‌में ही अन्तर्गत् अतीन्द्रिय जगत्‌का सौन्दर्य देखता है। इसीलिए प्रेयसीके हुस्नकी सौ-सौ अदाएँ उसे खींचती हैं। वे अदाएँ जो ज्यादा गहरे अध्यात्म-मग्न व्यक्तियोंके अन्तर्मनको एक गूढ़ एवं रहस्यमय स्वाद एक अव्यक्त आनन्दसे

---

* हमारे जन्नतकी तरह जो कहते हैं—
इस पार यहाँ मधु है तुम हो उस पार न जाने क्या होगा ?

भर देती है। ग़ालिबमें स्पर्श और ग्रहण, चुम्बन और आलिंगनकी प्यास पैदा करती है। ग़ालिब इसे छिपाता नहीं, वह कभी संकेत नहीं करता कि उसका प्रेम ईश्वरीय है, वह कभी नहीं कहता कि उसकी प्रेयसी [illegible] कभी पकड़में न आनेवाली और एक छलावे-सी अदृश्य हो जानेवाली प्रेयसी है। उसका प्रेम मानवी है, उसकी प्रेयसी मानवी है, उसका सौन्दर्य मानवी है, उसकी पकड़ मानवी है। स्वभावत: उसमें बार-बार देखनेकी कामनाएँ उठती हैं, उसमें स्पर्शकी भावनाएँ मचलती हैं, उसमें माशूक़को आलिंगनमें आबद्ध करनेकी तृष्णा है। पर इस इश्क़, इस तृष्णामें छिछोरापन नहीं है, बाज़ारूपन नहीं है। यहाँ प्रेयसीके सौन्दर्यमें ही विश्वका सौन्दर्य अपनी सम्पूर्ण मोहक भंगिमाओं, विभ्रम अदाओंके साथ आकर सिमट गया है। यहाँ त्याग नहीं है, पर केवल भोग भी नहीं है या यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि भोगके लिए भोग नहीं है, वह एक अक्षय अतृप्तिमूलक तृप्तिके साधन-रूपमें है। इसीलिए उसमें एक रख-रखाव, एक सन्तुलन भी है।

मानवी प्रेयसी

यहाँ उस वातावरणका स्मरण फिरसे दिलानेकी आवश्यकता है जिसमें ग़ालिबका पालन-पोषण हुआ। वह एक उच्च मुग़ल घरानेमें पैदा हुआ, ईरानी संस्कारोंके बीच, नव मुग़ल वातावरणमें पला। फ़ारसीयत उसकी घुट्टीमें थी—वह फ़ारसीयत जो गुल और बुलबुल, मय और मीनाके कभी ख़त्म न होनेवाले दास्तानसे भरी हुई थी। उसकी निश्चित परम्पराएँ थीं। फिर वह मुग़ल सभ्यता एवं शासनके सन्ध्याकालमें पला और बढ़ा। पिता और चचा कोई ऐसे संस्कार डालनेके पूर्व ही चल बसे जो उसकी ज़िन्दगीमें अनुशासन लाते। वह शौक़ीन मामा रईसज़ादा, एक रईसज़ादीसे विवाहित, उसकी संगत भी रईसज़ादोंकी थी जिनमेंसे [illegible] हम्मोंकी बाहरी [illegible] एवं ऐयाशियोंमें डूबे हुए थे। इसी [illegible] अन्तर्मुख [illegible] सवाल ही न पैदा होता था। उसकी [illegible] कि

वातावरण और संपत्ति

भी उसने ज़िन्दगीकी कड़ाई ख़ूब सही कभी उससे भागा नहीं और अपना रास्ता ख़ुद बनाया—जीवनमें भी और काव्यमें भी। स्वभावतः उसके काव्यमें न तो आकाशमें उड़नेवाले देवोंकी वाणी है, न कीचड़में रेंगनेवाले वासना-कीटोंका चीत्कार है। वह इन दोनोंके बीचकी चीज़ है, वह एक भरपूर मानवकी वाणी है और यह ग़ालिबका कैरेक्टर है कि उसने अपनेको कभी नहीं छिपाया जैसा था वैसा ही ज़ाहिर किया। जहाँ प्रकट न करना था या कोई आवश्यक न था वहाँ भी अपनेको स्वाभाविक रंगमें ही रखा जिसमें पहिचाननेमें कोई धोखा न हो (यद्यपि ख़ूब धोखा खाने और धोखा देनेवाले समीक्षकों एवं व्याख्याकारोंने उसे इसपर भी नहीं बख्शा)। जीवन और काव्य सबसे उसकी यह ईमानदारीकी भावभूमि बिल्कुल स्पष्ट है।

इसीलिए उसके काव्यमें हुस्नकी मचलती हुई तस्वीरोंकी बहुतायत है। जगती और कल्पनामें उसने जो सौन्दर्य देखा उसपर लहालोट हो गया है। निःसन्देह इस सौन्दर्यमें जिसे सौन्दर्यकी अपेक्षा रूप कहना चाहिए, शारीरिक आकर्षण है, कोई अशरीरी अनुभूति नहीं। पर इसमें बुतके आवश्यकता ही नहीं प्राकृतिक हरीतिमाकी आवश्यकता भी सिद्ध है:—

वह सब्ज़ ज़ारहाए[1] मुतर्रा[2] कि है ग़ज़ब
वह नाज़नीं[3] बुताने ख़ुदआरा[4] कि हाय हाय।
सब्रआज़मा[5] वह उनकी निगाहें कि हफ़ नज़रे[6],
ताक़तरुबा[7] वह उनका इशारा कि हाय हाय।

---

१ हरीतिमाएँ। २ तरावट देनेवाली। ३ सुकुमारियाँ। ४ स्वयं सज्जित प्रतिमाएँ। ५ धैर्य-विनाशक। ६ नज़र न लगे। ७ व्याकुल और चकित देनेवाला।

वासना ही जीवनका सत्य है

इसी प्रकार सिल्कीमें भी एक प्रेयसीकी मृत्युपर जो '[illegible]' ([illegible] गीत) लिखा था उसमें एक मानवी प्रेयसीके विरहविषाद रोता है, जो मांसल कामनाओंकी कथा है। इसलिये यह स्वीकार तक नहीं किया है कि उसका प्रेम समानधर्मी अशरीरी और तत्त्वापेक्ष है। बल्कि वासना ही उसके जीवनका सत्य है। पर वासनाका यह सत्य ईमानदारी और निष्ठाके साथ लिया है कि वासना वासना नहीं रह जाती। आत्यन्तिक आग्रह एवं निष्ठाके कारणमें एक प्रकारका आत्मिक सौन्दर्य पैदा हो गया है।

प्रातिभका काव्य शरीर-सौन्दर्य एवं मांसल प्रेमका काव्य होकर भी किसीको विरक्त नहीं। उसमें लगावट है पर गिरावट नहीं। उसमें भूख है पर पशुत्व नहीं। उसमें प्यास है पर लिप्सा नहीं। उसमें मस्ती है पर विवशताका एहसास भी है; उसमें बेहोशी है पर एक जागरूकता भी है। उसमें लोभ है पर कुछ न कुछ अर्पण भी है। वह अलमस्त जिन्दगीसे जीवनका रस चूसता है पर चूसकर रस दूसरोंको भी देता है।

इसीलिए और सांसारिक वासनाओंका कवि होकर भी वह इंसानके इस महाशक्ति साथ प्यार करता है, क्योंकि जन्नतोंको अपने कब्जेमें कर लेता है, दोस्तों एवं मित्रोंपर जान देता है हर एकके दुःख-दर्दमें शरीक है। इसीलिए उसमें दुनियाके प्रति वह प्रीति और निष्ठा है कि इसे छोड़ अमरताका सौदा करनेवाले खिज्रको इनकार कर सकता है—

> वह जिद हम हैं कि तमन्नासे ख़ल्क[1] ए ख़िज्र,
> न हम कि चोर बने उम्रे जाविदाँ[2] के लिए।

---

१ संसारका परिचय रखनेवाले २ अमर जीवन।

[ऐ ग़ालिब ! ज़िन्दा तो असलमें हम हैं कि दुनियामें चलते-फिरते और उससे पहचान रखते हैं न कि तुम जो अमर होनेके लिए शोर करे।]

इसी निष्ठाके कारण इसी ईमानदारीके कारण उसमें मानवीय संवेदनाओंका वह निखार है जो सूफ़ी और साहित्यमें नहीं मिलता। यह ठीक है कि वह अपनी आवश्यकताओंके लिए गिड़गिड़ाता भी है, पर यह न भूलना चाहिए कि दूसरोंको भीख माँगते देख उनकी वेदना अनुभव कर स्वयं कराह भी उठता है। तीव्र एवं प्रबल आसक्तियोंके इस मानवके अहंमें एक प्रकारकी फ़क़ीरी एक अनासक्ति है। एक आसक्ति पूर्ण मानवकी तीव्र संवेदना उसमें है, बिना इसके क्या वह एक मित्रको अपने एक चिट्ठी पत्रमें लिख सकता था—

तीव्र आसक्तियोंके मूलमें एक अनासक्ति भी है

दरवेशी[1] न बादशाही न अताओ करम[2] के जो दआवी[3] मेरे ख़ालिकने[4] मुझमें भर दिये हैं अगर हज़ारों[5] एक बहरमें न आये। न वह ताक़त जिस्मानी[7] कि एक लाठी हाथमें लूँ और उसमें शतरंजी और एक टिकाया लोटा मय सूतकी रस्सीके लटका लूँ और प्यादा पा चल दूँ, कभी शीराज़ जा निकला कभी मिस्रमें जा ठहरा कभी नजफ़ जा पहुँचा

न वह दस्तगाह[8] कि एक आलमका मेज़बान बन जाऊँ।
अगर तमाम आलममें न हो सके न सही
जिस शहरमें रहूँ उस शहरमें तो कोई,
नंगा-भूखा नज़र न आये।

ख़ुदाका मक़हूर[9] ख़ल्क़का मरदूद बूढ़ा नातवाँ[10] बीमार फ़क़ीर,

---

१ फ़क़ीरी २ बख़्शिश और कृपा ३ दावे ४ कर्त्ता ५ हज़ारमें एक भी ६ क्षमता ७ शारीरिक शक्ति ८ सामर्थ्य ९ दैवकोपग्रस्त १० दुर्बल।

वह नवीन मानवके निर्माणमें क्रियात्मक भाग न ले सका—नहीं ले सकता था पर एक वस्तुवादीकी भाँति उसके निर्माणकी प्रबल आशा उसमें थी। वह इतना समझ गया था कि पुरानी व्यवस्था मिट रही है पर उसके कारण एवं परिणामको वह देख न पाता था। फिर भी वह 'मृत प्राचीन' की उपासनाका स्पष्ट विरोधी था* और कहता था कि 'हर पुरानी चीज दुरुस्त नहीं'। उसने वह परम्पराओंका उपहास करते हुए कहा—

तेशे बग़ैर मर न सका कोहकन 'असद',
सरगश्त-ए-ख़ुमारे रसूमो क़यूद था।

[ऐ 'असद' कोहकन (फरहाद) बिना कुदाल (मार) न मर सका। बेचारा एक परम्परा और बन्धनके नशेमें मस्त था!]

वह नवीन जीवनके अभिनन्दनके लिए तैयार रहता था इसीलिए १८५७के गदरमें गहरी आत्मवेदनाके बावजूद वह तटस्थ रहा क्योंकि वह जानता था कि यह व्यवस्था मिटकर रहेगी। यद्यपि इस उपक्रममें उसके ही वर्गका विनाश निहित था और एक इंसानकी भाँति उसे इसका अफ़सोस भी था फिर भी वह समझता था कि इसे मिटना ही चाहिए।

उसपर जो अपवाद लगाये जाते हैं वे केवल इस बातको भुला दिये जानेके कारण लगाये जाते हैं कि वह अनेक बातों अनेक व्यक्तियों और विभिन्नताओंका कवि है। उसमें एक साथ अनेक मानस-प्रकार प्रतिफलित हैं। उसमें प्रायः परस्पर-विरोधी तत्त्व हैं। एक ओर चोर बाई, दूसरी ओर अक्सर नवाबों राजाओं और शासकोंकी खुशामद एक ओर वासना-बाहुल्य दूसरी ओर घर-गृहस्थीके बन्धनोंकी देखभाल एक ओर

एक मानवमें अनेक मानव

---

* हर तफ्ताको लिखा था—मुर्दापरवर्दन मुबारककार नेस्त। (मुर्देको पालना नेक कार्य नहीं है।)

मख़्मसे[1] में गिरफ़्तार। मेरे और मआमलात कलाम व कमालसे क्या नज़र करो

> वह जो किसीको भीख माँगते न देख सके,
> और खुद दर-बदर भीख माँगे, वह मैं हूँ।"

ऐसे समय उसकी निराशा समाजगत हो जाती है; उसका निजी दुःख युग-वेदनामें परिणत हो जाता है और अपनी असमर्थतापर वह कहता है—

> न गुले नग्मा हूँ न पर्दए साज़[2]।
> मैं हूँ अपनी शिकस्त[3]की आवाज़।

यह अपनी शिकस्त उसकी शिकस्त नहीं है। यह उस समाज-व्यवस्थाकी पराजयकी वाणी है जिसके पास एहसास तो था अनुभूतियाँ तो थीं पर निर्माणका कोई नया स्वप्न नहीं था।

राहसे बेख़बर पर नवीन-का स्वागत करनेको उत्सुक

ग़ालिबका जैसा निर्माण था उसमें उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह एक नई दुनियाका सन्देश देगा एक नये जगत्की राह दिखायेगा। इच्छा होती तो भी वैसी शक्ति न थी। वह ठीक-ठीक देख भी न पाता था कि नया मानव कब आयेगा या कैसा होगा पर उसकी विशेषता यह है कि वह पुरानेसे बँधा होकर भी नवीनका स्वागत करनेको उत्सुक है। ठीक राह उसे ज्ञात नहीं है पर उसकी खोजमें हर एक तेज़ीसे चलनेवालेके साथ कुछ दूर जाता है; ग़लती मालूम होनेपर रुक जाता है—

> चलता हूँ थोड़ी दूर हर एक तेज़ रौके साथ
> पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मैं।

---

१ दरिद्रता कष्टकी २ बाजेका पर्दा ३ पराजय।

मानव-वेदनाकी अनुभूति एवं ग्रहण दूसरी ओर अपनी ही पत्नीकी निराशा और गहरी जीवनव्यापी वेदनाके प्रति उपेक्षा एक ओर भावुकता दूसरी ओर प्रबल वस्तुवादिता एक मानवमें अनेक मानवोंकी अभिव्यक्तिकी भाँति ग़ालिब था। एक फ़ारसी शेरमें अपनी प्रवृत्तिकी विविधताकी ओर ध्यान दिलाते हुए अपनी प्रेयसीसे कहता है:—

दबीरम शायरम, रिंदम, नदीमम, शेवःहा दारम,
गिरफ़्तम रश्क बर फ़रियादा अफ़गानम मये आयद।

उसकी खूबसूरती यही है कि सारी विविधताएँ, सारे विरोधाभास उसकी उस सर्वग्राहिणी अन्तर्भेदिनी पिपासित दृष्टिके सामने आकर एक पुष्प-गुच्छकी भाँति व्यवस्थित हो गये हैं जो कलम की पुष्पमें भी प्रकृतिके भी मानवी सौन्दर्यको देख सकी थी—

सब कहाँ ! कुछ लाल. वो गुलमें नुमायाँ हो गयीं ।
ख़ाकमें क्या सूरतें होंगी कि पेनहाँ हो गयीं ।

ग़ालिब सौन्दर्यका प्रेमी मानवी सौन्दर्य एवं प्रेमका पुजारी कवि समभावोंका कवि अनेक अन्तर्विरोधोंका आकर, अनेक व्यक्तित्वोंका व्यक्तित्व, अपनी भावना एवं कल्पनाके पंखों पर अपने दिमागको उनसे ऊपर रखे भावुक होकर भी वस्तुवादी पुराना होकर भी नया अपने युगमें युगोंके राग गानेवाला ऐसा इन्सान है जो चकबस्तके शब्दोंमें 'प्राचीनताकी खिड़कीसे नये युगको देख रहा था।'

सी नज़रों दिखती है आती और जाती हुई। तसव्वुफ़में संसारकी वासना-का त्याग और परम प्रियतमके प्रति आत्मसमर्पण मुख्य है जिसका ग़ालिबमें एकान्त अभाव है—बल्कि विषय-वासना ही उनके जीवनकी प्रधान प्रेरणा है।

जिज्ञासा।

जिज्ञासा ज्ञान-रसका पहिला है। ग़ालिबने जब खुली आँखोंसे दुनिया को देखा तो दुनियाके विविध परिवर्तनोंके बीच उनके पीछे छिपी सत्ताका सौन्दर्य सर्वत्र जगमगाता दीख पड़ा। उनमें जिज्ञासा प्रकट हुई। वह संसारमें बिखरे सौन्दर्यको देखते हैं। ये दिल मोहनेवाली तस्वीरें उनके हाव-भाव सुगन्धित घुंघराली अलकें सुरमई आँखें हरीतिमा और पुष्प हवा एवं बादल क्या हैं? कहाँसे आये हैं? क्यों हैं जब तेरे बिना कोई नहीं?—

संसारमें मचलता सौन्दर्य

जब कि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद
फिर ये हंगामा ऐ ख़ुदा क्या है?
ये परीचेहरा लोग कैसे हैं?
ग़मज़ा[1] व इश्वा व अदा क्या है?
शिकने ज़ुल्फ़े अम्बरीं[2] क्यों है,
निगहे चश्मे सुरमा सा क्या है?
सब्ज़ा व गुल कहाँ से आये हैं
अब्र[3] क्या चीज़ है हवा क्या है?

अस्तित्व (हस्ती) का तत्त्वज्ञान

यहाँ जिज्ञासा दर्शनके समस्त मार्गतक आ गयी है और अब समस्त

१ हाव २ सुगन्धित अलकोंकी लटें या घुमाव ३ मेघ बादल।

उन्हें किसी विशेष दार्शनिक विचार-धारामें बाँटकर या बाँधकर रख देना एक हास्यास्पद चेष्टा है और खुद उन्हें असलियतसे दूर कर देना है। उस असलियतसे जो उनमें थी और जो उनके काव्यका आधार है। हाँ दुनियामें चलते हुए उन्होंने जो देखा जो सोचा उसमें कभी-कभी ऐसे आभास भी दिख जाते हैं ऐसी झाँकियाँ भी मिल जाती हैं जिनमें दार्शनिक कल्पना चिन्तन एवं अनुभूतिकी चलती-फिरती तसवीरें झाँक-सी उठती हैं।

एक अर्थमें दर्शन-शास्त्री हैं

यदि दर्शनसे सूक्ष्म एवं चिन्तन-प्रधान विचार-पुंजका अर्थ लिया जाय तो ग़ालिबको दार्शनिक कहा जा सकता है किन्तु यदि दर्शनसे मानव-जीवन या उसके किसी पक्ष-विशेषके सम्बन्धमें निश्चित निजी दृष्टिकोणका तात्पर्य है तो वह दर्शनशास्त्री नहीं हैं। ग़ालिबके काव्यमें जो दार्शनिक झाँकियाँ हमें मिलती हैं वे तत्त्ववेत्ताकी प्रज्ञाकी अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं। इनमें कवि न दर्शनशास्त्री है न वचनका व्याख्याता या मुत-कल्लिम है। जैसा मैं कह चुका हूँ वह सूफ़ी भी नहीं है—उसकी प्रकृति ही सूफ़ीकी प्रकृति नहीं है।

जब मैं यह कह रहा हूँ तब मुझे उनका यह शेर खूब याद है—

य' मसायले तसव्वुफ़ य' तेरा बयान 'ग़ालिब'
तुझे हम वली समझते जो न बादाख़्वार होता।

पर तसव्वुफ़की समस्याओंपर कुछ कह देनेसे ही कोई सूफ़ी नहीं हो जाता वह परमात्माके सत्यको अनुभूतिके माध्यमसे जीवनमें उतारनेपर सूफ़ी होता है। और सच पूछें तो इस शेरमें भी मदिरापानपर लेक्चर देने-वालोंपर एक सूक्ष्म-व्यंग-मात्र है।

जहाँ भी तसव्वुफ़की बातें हैं वहाँ वे उनके दिलकी गहराइसे उठती नहीं जान पड़ती। मनमें लहरें उठती हैं और विचारके पर्देपर एक परछाईं

की उठती दिखती है आती और जाती हुई। उसमें संसारकी वासना का त्याग और परम प्रियतमके प्रति सर्वस्वार्पण मुख्य है जिसका ग़ालिबमें एकान्त अभाव है—बल्कि विश्व-वासना ही उनके जीवनकी प्रधान प्रेरणा है।

जिज्ञासा :

जिज्ञासा ज्ञान-रथका पहिया है। ग़ालिबने जब खुली आँखोंसे दुनिया को देखा तो दुनियाके विविध परिवर्तनोंके बीच उसके पीछे किसी सत्ताका

संसारमें भलकता सौन्दर्य

सौन्दर्य सर्वत्र झलकता दीख पड़ा। उनमें जिज्ञासा प्रबल हुई। वह संसारमें बिखरे सौन्दर्यको देखते हैं। ये दिल मोहनेवाली दर-मियाँ जनके हाव-भाव सुगन्धित कुञ्चित अलकें सुर्मई आँखें हरीतिमा और पुष्प वर्षा एवं वायु क्या है? कहाँसे आये हैं? क्यों हैं, जब तेरे बिना कोई नहीं ?—

> जब कि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद
> फिर य' हंगामा ऐ ख़ुदा क्या है?
> ये परीचेहर लोग कैसे हैं?
> ग़मज़ः' वो इश्वः वो अदा क्या है?
> शिकने ज़ुल्फ़े अम्बरी' क्यों है,
> निगहे चश्मे सुर्मे सा क्या है?
> सब्ज़ः व गुल कहाँ से आये हैं
> अब्र' क्या चीज़ है, हवा क्या है?

अस्तित्व (हस्ती) का तत्त्वज्ञान

यही जिज्ञासा ग़ालिबके समस्त मानसपर छा गयी है और तब समस्त

१ हाव २ सुगन्धित अलकोंकी लटें या घुमाव ३ मेघ वर्षा।

सृष्टि एक खेल बच्चोंकी एक क्रीड़ा-सी दिखाई पड़ती है। अस्तित्व एक तमाशा-सा लगता है बड़े-बड़े चमत्कार विनोद-से जान पड़ते हैं —

बाज़ीचए अतफ़ाल[1] है दुनिया मेरे आगे।
होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे।
एक खेल है औरंगे सुलेमाँ मेरे नज़दीक,
एक बात है एजाज़े मसीहा[2] मेरे आगे।
जुज़ नाम नहीं सूरते आलम मुझे मंजूर,
जुज़ वहम नहीं हस्तिए अशिया[3] मेरे आगे।

[अर्थात् "संसार मेरे सामने हो रहा बच्चोंका खेल है। इसकी नवीनताओंको देखकर यही समझता हूँ कि मेरे सामने रात-दिन एक तमाशा हो रहा है। सुलेमानका तख़्त और हज़रत ईसाके चमत्कार मेरे निकट एक खेल और सामान्य बात है। संसारका यह रूप नाम ही नाम भरको है। मेरे विचारमें सभी वस्तुओंका अस्तित्व एक वहम एक भ्रम एक माया है।]

ये विचार मायावादी वेदान्तियोंके विचारोंसे मिलते हैं। एक स्थानपर फिर कहते हैं —

हस्तीके मत फ़रेबमें आ जाइयो 'असद'
आलम[4] तमाम हल्क़ए-दामे-ख़याल[5] है।

अर्थात् 'ए असद! जिन्दगीके फ़रेबमें न आजाना (यह सरासर धोखा है) सारा विश्व विचारके जालका फन्दा है (इसलिए क्षणिक अस्तित्वको जीवन न समझ लेना)।

---

१ बाल-क्रीड़ा २ ईसाके चमत्कार (मुर्दोंको जिलाना रोगियोंको नीरोग तथा पीड़ितोंको पीड़ारहित करना आदि) ३ पदार्थोंका अस्तित्व ४ विश्व ५ कल्पना-जालका घेरा।

फिर कहते हैं—

हाँ, खाइयो मत फ़रेबे-हस्ती,
हरचंद कहें कि है, नहीं है।

सांसारिक असारता और संसारकी कल्पना-कल्पताके विषयमें उनके उर्दू तथा फ़ारसी काव्यमें अनेक शेर मिलते हैं। फ़ारसीमें तो उनकी संख्या उर्दूसे भी अधिक है। दो ऐसे फ़ारसी शेरोंमें उन्होंने कहा है—

"मेरी कल्पनाशक्तिने धुएँ की तरह उठकर एक पर्दा-सा तान दिया मैंने उसका नाम आसमान रखा। मेरी आँखोंने एक परेशान-सा ख़्वाब देखा मैंने उसका नाम जहान रख दिया। मेरी वहमने आँखोंमें धूल डाल दी अब जो कुछ नज़र आया उसका नाम बयाबान रखा। पानी जब एक क़तरा मुतरे होकर फैल गया उसे समुन्दरके नामसे पुकारने लगा।"

आसमान जहान

बयाबान और समुद्र

ऐसे शेरोंमें कल्पनामय जगत्के मिथ्या होनेकी घोषणा है। यह जगत् 'एकमेवाद्वितीयं' ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मात्र है, उसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं। यह जो बाह्य जगत् है उसीके अवलम्ब से और उसीको लेकर है। वह है, इसलिए यह भी दिखाई देता है। वेदान्तमें मायाके दो प्रकार बताये गये हैं— १ व्यावहारिक २ प्रातिभासिक। वस्तु-जगत् व्यावहारिक है। वह होते हुए भी नहीं है। मृगजल जाने दें पर जो शून्य नहीं है वह भी नास्ति ही है। इसलिए ग़ालिब कहते हैं —

जगत्का रूप

हस्ती[2] है न कुछ अदम[3] है ग़ालिब।

पर जिज्ञासा यहाँ पहुँचकर और आगे बढ़ती है। यह सृष्टि जब उसकी झलक है उसका प्रतिबिम्ब है जब एक मात्र सत्य तब यह असत्य

१ सिकन्दर, पैग़म्बर, २. अस्तित्व ३ अनस्तित्व (शून्यता)।

क्योंकर है? जो सत् है वह असत्को कैसे उत्पन्न कर सकता है? तत्त्वज्ञानी कहते हैं कि संसारको स्वतन्त्र मानने या देखनेका कारण हमारा अज्ञान है। यूनानके प्राचीन तत्त्वज्ञानी प्लेटोनिस्टके 'नव-अफलातूनवाद' (Neo-Platonism) का भी कुछ ऐसा ही कथन है कि यह सारा जगत् उसी एक तत्त्वकी झलक है, छाया है। यह उसकी विविध अभिव्यक्ति है। इस विविधतामें उसकी एकता है। अनेकमें वही एक है। यों समझिए—सूर्य एक प्रकाश-पिण्ड है। जब तक उसकी रश्मियाँ उसीमें सिमटी हैं कुछ दिखाई नहीं देता। जब उसकी रश्मियाँ अपने मूल स्रोतसे निकलकर समस्त जगत् पर छा जाती हैं तो संसार नाना रूपोंमें चमक उठता है। पर जब सूर्य अस्त होता है तो उसके साथ उसकी किरणें भी आँखोंसे ओझल हो जाती हैं। सूर्यका प्रकाश सूर्यसे अलग नहीं। जब तक किरणें सूर्यमें निमग्न हैं उनमें अनेकता नहीं ऐक्य है पर उससे निकलते ही बाहर होते ही उनमें अनेकता आ जाती है या हमें दिखाई पड़ती है। इस प्रकार हमारी आँखोंके सामने नाना रूप प्रकट होते रहते हैं।

संसार उसीका आईना है

तब क्या ग़ालिब वेदान्तियोंकी तरह, सचमुच संसारको मिथ्या मानता है? नहीं। वह संसारके पर्देमें वही है और उसीका रूप शृंगार सजाए इस जगत्के रूपमें प्रकट हो रहा है। जब यह जगत् उसीके शृंगारका ऐसा आईना है जिसके सामने वह अपनेको नित्य-नूतन सज्जामें प्रस्तुत करता है तब वह मिथ्या कैसे है? यह संसार उसीका है, हम उसीके हैं—उसीके कारण हैं। कहते हैं—

है तजल्ली तेरी सामाने वजूद[2],
ज़र्रा[3] बे परतौए ख़ुर्शीद[4] नहीं।

१ ज्योति प्रभा २ अस्तित्वका कारण ३ कण ४ सूर्य-प्रकाश।

अर्थात् 'तेरी ही ज्योति (तजल्ली) से अस्तित्वका संसार प्रकट हुआ। सूर्य-प्रकाशके बिना एक कण भी नहीं चमक सकता।

वह प्रियतम नित्य शृंगारमें मग्न है —

आराइशे जमाल से फ़ारिग़ नहीं हनोज़[1,2],
पेशेनज़र है[3] आईना दायम[4] नक़ाब[5] में।

(पर्देमें भी नक़ाबमें भी वह सर्वदा आईनेको देखता रहता है। गोया अपने सौन्दर्यके शृंगारसे अभी फ़ारिग़ नहीं हुआ।)

यह संसार उसके सौन्दर्यकी एक झलक है। प्रियतमका हुस्न यदि आत्मदर्शी (दूसरे अर्थमें अभिमानी) न होता तो हमारी सृष्टि कैसे होती?

दहर[6] जुज़ जल्वए यकताइए माशूक़[7] नहीं,
हम कहाँ होते अगर हुस्न न होता ख़ुदबीं।

(संसार माशूक़—प्रियतम—की एकमात्र सत्ताकी झलक—जल्वाके सिवा और कुछ नहीं है। अगर वह सौन्दर्य ख़ुदबीं (अपने आपको देखनेमें मग्न) न होता तो हम कैसे अस्तित्वमें आते?) मतलब यह कि हम सब उसीके सौन्दर्य-प्रसाधनके कारण हैं।)

जब संसारमें वही है संसार उसीकी छवि है, तब हम उससे अलग कैसे हैं। हम तो उसीके हैं —

दिल हर क़तरा है साज़े अनल्बहर[8]
हम उसके हैं हमारा पूछना क्या?

१ सौन्दर्यका शृंगार २ अबतक ३ आँखके सामने ४ सर्वदा ५. घूँघट पर्दा ६ जगत् ७ प्रियतमकी एकताकी छवि या प्रदर्शन ८. मैं समुद्र हूँ।

शुहूद साधनाकी वह अवस्था है जब साधकको जगत्‌की सम्पूर्ण वस्तुओं में ईश्वर (अर्थात् ब्रह्म) ही ईश्वर दिखाई देता है। † ऐसे ऐन या ऐनुलऐन (ऐनका ऐन) वह परम सत्ता है जो इन्द्रिय मन और बुद्धिसे परे है। ग़ालिब कहते हैं जिसको हम शुहूदकी अवस्था समझे हुए हैं वही वस्तुतः परम-सत्ता (ऐनैऐन) है (भ्रमवश हम उसे शुहूद माने हुए हैं)। यह वैसा ही है जैसे आदमी स्वप्नमें अपनेको जगा हुआ देखनेपर भी स्वप्नमें ही रहता है। (अज्ञानवश साधक अपनेको ब्रह्मसे भिन्न समझे हुए है।)

धर्मके तत्त्व

इसी कलाममें (जिसका ज़िक्र किया हुआ है) वह और भी स्पष्ट कहते हैं—

असले शुहूदो शाहिदो मशहूद एक है
हैराँ हूँ फिर मुशाहिदा है किस हिसाबमें।

हम ऊपर बता चुके हैं कि शुहूद साधनाकी वह अवस्था है जिसमें साधकको दुनियाकी हर चीज़में ब्रह्म ही ब्रह्म दिखाई पड़ता है। शाहिद इस अवस्थामें द्रष्टा (साधक) को कहते हैं। जिसको देखा जाता है वह मशहूद है। मुशाहिदाका अर्थ निरीक्षण देखना है। कहते हैं कि जब वस्तुतः शुहूद शाहिद और मशहूद (दर्शन द्रष्टा और दृश्य या साधना साधक और साध्य) सब एक ही हैं तो हम क्या निरीक्षण करें क्या देखें ?

† हरिऔध ने प्रियप्रवास में विरहिणी राधाके मुँहसे कहलवाया है—
पाई जाती जगत्‌में जितनी वस्तुएँ उन सबोंमें
मैं प्यारेको विविध रँग औ रूपमें देखती हूँ।

फिर कहते हैं, विश्वास दिलाते हैं—

है मुश्तमिल नमूद सुवर पर वजूद बह्र,
याँ क्या धरा है क़तरा वो मौजो हुबाब में

सागरका अस्तित्व ही इन रूपोंमें सम्मिलित (प्रकट) है अन्यथा बिन्दु, तरंग और बुलबुलेमें क्या रखा है ?

ब्रह्मतत्त्व (ब्रह्म) अविनश्वर है, अमृत है और सृष्टि चूँकि उस परम तत्त्वसे अद्वैत (अद्वय) है इसलिए सृष्टि भी अविनश्वर है। ग़ालिब जगत्को ब्रह्मसे भिन्न नहीं मानते जगत् स्वयं ब्रह्म है।

तब एक दूसरा सवाल पैदा होता है कि यदि विश्व ब्रह्मका ही प्रकाश है तो पाप, अपराध दुराचार दुख-दर्द क्या है ? प्रकाशके साथ मलिनता तब अन्तर्विरोध क्या है ? क्यों है ? अन्तर्विरोध कहाँसे पैदा होते हैं। भारतीय आर्यदर्शन इसका उत्तर यह देता है कि ऐसा उस परम सत्यकी अनुभूति न होनेके कारण या आत्माके 'स्व-रूप' को न समझनेके कारण है। समस्त मोह विभेद अपनेको (आत्मा या ब्रह्मको) न समझनेके कारण है। एक पर्दा पड़ा हुआ है। इस्लाममें उत्तर यह है कि आलोक सूर्यसे भिन्न नहीं है पर उससे जितना ही दूर जाता है उसमें अन्तरके कारण मलिनता आती जाती है। इस उत्तरसे जिज्ञासाका पूर्ण समाधान नहीं होता क्योंकि तब प्रकाशस्रोत (ब्रह्म) से एक भिन्न वस्तु-अन्तर-पैदा हो जाती है और 'हम अस्त (सब कुछ वही है) का सिद्धान्त शिथिल पड़ जाता है। चूँकि ग़ालिब कोई तत्त्व-ज्ञानी नहीं इसका कुछ ठीक उत्तर नहीं दे सका। हाँ उसकी तीव्र कल्पना में जो सत्य उद्भासित हुआ उसके प्रकाशमें उसने भावुक उत्तर देनेकी चेष्टा की है—

---

१ सम्मिलित २ रूपाभिव्यक्ति ३ सागरका अस्तित्व ४ तरंग ५. बुदबुद।

[हर एक बूँदका दिल तड़पकर कह रहा है कि मैं सागर हूँ। तब हमारे लिए क्या पूछना ? हम तो उसके हैं ही।]

क़तरा और दरियाकी उपमा एवं रूपक द्वारा जीव एवं ब्रह्मके ऐक्यकी बात फ़ारसी एवं उर्दू कवि न जाने कबसे कहते आ रहे हैं। दरियामें

दरिया और क़तरा

मिलते ही क़तरा खो जाता है, उसका निजत्व विलीन हो जाता है। क़तरा स्वयं दरिया हो जाता है। पर यह भी तो है कि दरिया भी क़तरेमें समा जाता है। प्रो० शौकत सब्ज़वारीने लिखा है — 'हक़ीक़त यह है कि विसाले-दरिया[1] के बाद सिर्फ़ यही नहीं होता कि क़तरे मौजे-दरिया[2] की आग़ोश[3] में समा जाते हैं बल्कि दरिया भी अपनी बेपनाह वुसअतें[4] और बेहद ज़ख़ीरोंके साथ क़तरेके नन्हे-से दिलमें उतर जाता है। क़तरा दरिया ही नहीं होता बल्कि दरिया भी क़तरा हो जाता है।'* ग़ालिबकी इसी स्थितिको हेगल और मैक्टेगार्टने 'परिपूर्ण भाव' (Absolute Idea) कहा है। ग़ालिबका

> इशरते-क़तरा[5] है दरियामें फ़ना[6] हो जाना
> दर्द का हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।

उस स्थितिकी ओर संकेत मात्र है। क़तरा और दरियाकी भिन्नता केवल वाणीकी विवशता प्रकट करनेके लिए है अन्यथा हर क़तरा (जैसा पहिले कह चुके हैं) दरअस्ल दरिया ही है —

> क़तरा अपना भी हक़ीक़तमें है दरिया (लेकिन)

इस प्रकार ग़ालिब संसारको ईश्वरसे भिन्न नहीं मानते। यह सब उस माशूकका ही हुस्नका जल्वा है। यह संसार ही उसकी छवि है। इसीमें

---

१ समुद्र-मिलन २ समुद्र-तरंग ३ आलिंगन ४ असीम विस्तृतियाँ ५ बूँदका ऐश्वर्य ६ नष्ट विलीन।

* ज़िक्रमख़्ज़ मक़ाले ग़ालिब पृ० ९८-९९।

रहे ढूँढ़ता और पाता है। ग़ालिबका कथन 'एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' या 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या (या तौहीदे मुतलक़) से बिलकुल भिन्न है।

संसार माशूक़के हुस्नका जल्वा है

उसपर ईरानके प्राचीन धर्म एवं वसन पैग़म्बर' ('जगत् ही ईश्वर है' का सिद्धान्त या विश्व ब्रह्मवाद) का बड़ा प्रभाव है जिसमें ब्रह्मको प्रकृतिसे भिन्न नहीं माना जाता था। पिथागोरसके पूर्वके यूनानी भी ऐसा ही मानते थे। अपनी आध्यात्मिकतामें ग़ालिबका दर्शन हिन्दीके

'प्रसाद' से साम्य

महाकवि प्रसाद के कथनसे बहुत मिलता है। 'प्रसाद' ने 'प्रियतममय यह विश्व निरखना' तथा 'विश्व स्वयं ही ईश्वर है' इत्यादिमें ठीक उसी रचनाकी उद्भावना की है। दोनोंने कभी जगत्के सौन्दर्य सुख और शृङ्गारका तिरस्कार नहीं किया बल्कि उसीमें इसे खोजा। फारसी मसनवी 'अब्रे गुहरबार' में ग़ालिब कहते हैं कि विश्व चेतना-दर्पण है जिसमें ब्रह्म रूप (जमालुल्लाह) का दर्शन होता है।

सृष्टिके अनेकानेक रूपोंमें एक ही तत्त्व विद्यमान है, इस विश्वासके कारण ही मानवके ईश्वरत्वमें ग़ालिबका विश्वास है। सरदार जाफ़रीने

हमारा मुँह उसीका मुँह है

ठीक ही किया है—'न केवल यह कि मानव जिस दिशामें मुँह करता है उस ओर वह ही नज़र आता है बल्कि जिस मुँहको मानव चारों ओर मोड़ रहा है वह भी तुम 'उसी का मुँह है।'*

ग़ालिबने अनेक स्थानोंपर ब्रह्म एवं जगत् या ब्रह्म एवं जीवको एकाकार कर दिया है। कहते हैं—

> है ग़ैब ग़ैब जिसको समझते हैं हम शुहूद
> हैं ख़्वाबमें हनोज़ जो जागे हैं ख़्वाबमें।

---

*दीवाने ग़ालिब संपा. सरदार जाफ़री पृ १ (बम्बई संस्करण)

शुहूद साधनाकी वह अवस्था है जब साधकको जगत्‌की सम्पूर्ण वस्तुओं में ईश्वर (बल्कि ब्रह्म) ही ईश्वर दिखाई देता है। † जैसे गैब या गैबुलगैब (गैबका गैब) वह परम सत्ता है जो इन्द्रिय मन और बुद्धिसे परे है। गालिब कहते हैं जिसको हम शुहूदकी अवस्था समझे हुए हैं वही वस्तुतः परम सत्ता (गैबेगैब) है (भ्रमवश हम उसे शुहूद माने हुए हैं)। यह वैसा ही है जैसे आदमी स्वप्नमें अपनेको जगा हुआ देखनेपर भी स्वप्नमें ही रहता है। (अज्ञानवश साधक अपनेको ब्रह्मसे भिन्न समझे हुए है।)

अभेद तत्त्व

इसी पद्यमें (जिसका जिक्र किया हुआ है) यह और भी स्पष्ट करते हैं—

अस्ले शुहूदो शाहिदो मशहूद एक है
हैराँ हूँ फिर मुशाहिदा है किस हिसाबमें।

हम ऊपर बता चुके हैं कि शुहूद साधनाकी वह अवस्था है जिसमे साधकको दुनियाकी हर चीजमें ब्रह्म ही ब्रह्म दिखाई पड़ता है। शाहिद इस अवस्थाके द्रष्टा (साधक) को कहते हैं। जिसको देखा जाता है वह मशहूद है। मुशाहिदाका अर्थ निरीक्षण देखना है। कहते हैं कि जब वस्तुतः शुहूद शाहिद और मशहूद (दर्शन द्रष्टा और दृश्य या साधना साधक और साध्य) सब एक ही हैं तो हम क्या निरीक्षण करें क्या देखें ?

---

† हरिऔध ने 'प्रियप्रवास' मे विरहिणी राधाके मुँहसे कहलाया है—
पाई जाती जगत्‌में जितनी वस्तुएं हैं सबोंमें
मैं प्यारेको विविध रँग औ रूपमें देखती हूँ।

फिर कहते हैं, विश्वास दिलाते हैं—

> है मुश्तमिल[1] नमूदे सुवर[2] पर वजूदे बह्र[3],
> याँ क्या धरा है क़तरा-ओ-मौजो[4] हुबाब[5] में

सागरका अस्तित्व ही इन रूपोंमें सम्मिलित (प्रकट) है अन्यथा बिन्दु, तरंग और बुलबुलेमें क्या रखा है?

अहदज़ात (ब्रह्म) अविनश्वर है, अमृत है और सृष्टि चूँकि उस परम तत्त्वसे अद्वैत (अद्वय) है इसलिए सृष्टि भी अविनश्वर है। ग़ालिब जगत्को ब्रह्मसे भिन्न नहीं मानते जगत् स्वयं ब्रह्म है।

तब एक दूसरा सवाल पैदा होता है कि यदि विश्व ब्रह्मका ही प्रकाश है तो पाप अपराध बुराइयाँ दुष्कर्म क्या हैं? प्रकाशके साथ मलिनता तब अन्तर्विरोध क्या है? क्यों है? अन्तर्विरोध क्योंकर पैदा होते हैं। भारतीय धर्मदर्शन इसका उत्तर यह देता है कि ऐसा उस परम सत्यकी अनुभूति न होनेके कारण या आत्माके 'स्व-रूप' को न समझनेके कारण है। समस्त भेद, विभेद अपनेको (आत्मा या ब्रह्मको) न समझनेके कारण है। एक पर्दा पड़ा हुआ है। इस्लाममें उत्तर यह है कि आलोक सूर्यसे भिन्न नहीं है पर उससे जितना ही दूर जाता है उसमें अन्तरके कारण मलिनता आती जाती है। इस उत्तरसे जिज्ञासाका पूर्ण समाधान नहीं होता क्योंकि तब प्रकाशस्रोत (ब्रह्म) से एक भिन्न वस्तु-अन्तर-पैदा हो जाती है और 'हमा ऊस्त' (सब कुछ वही है) का सिद्धान्त शिथिल पड़ जाता है। चूँकि ग़ालिब कोई तत्त्व-ज्ञानी नहीं इसलिए कुछ ठीक उत्तर नहीं दे सका। हाँ उसकी तीव्र कल्पना में जो सत्य उद्भासित हुआ उसके प्रकाशमें उसने आंशिक उत्तर देनेकी चेष्टा की है—

---

१ सम्मिलित २ रूपाभिव्यक्ति ३ सागरका अस्तित्व ४ तरंग ५ बुदबुद।

'धूप (खिज़्रके कमाल) के एक बिन्दुसे सम्पूर्ण मर्त्यविशेष सम्पन्न होता है।

—मुनाजात (ख्वाज गुहरबार)

"तूने मस्तके भ्रम (वहमे ग़ैर) में पड़कर दुनियामें हलचल मचा रखी है।

—फ़ारसी क़सीदा

जब एक बार कह चुके कि दर्शक एवं दर्शनीय व्यक्ति दृश्य एवं दर्शन भी एक है तब दो क्यों मालूम पड़ते हैं। यह स्वयं और अस्वयंका विभाजन कैसा? उत्तर यह कि इनके बीच दुनियाकी रीति (रस्मे परस्तिश) का पर्दा पड़ा हुआ है।

मलिनताकी समस्या सुलझाते हुए यह भी कहा जाता है कि ठीक वह माशूक इस प्रकृति या जगत्‌के दर्पणमें अनेक जल्वों और अदाओंमें दिखाई पड़ता है, प्रतिबिम्बित होता है पर यह प्रतिबिम्ब तब तक सम्भव नहीं जबतक दर्पण काँचके पीछे कलई न हो। उज्ज्वलतर किरणें उतनी नहीं खिलतीं जितनी मलिनतापर। सूर्य-किरणें स्वच्छ आकाशमें उतनी नहीं चमकतीं जितनी धरतीकी अस्वच्छ वस्तुओंपर पड़कर चमक उठती हैं। प्रकाशके गौरवके लिए, उसकी स्वीकृति एवं अनुभूतिके लिए अन्धकार की पृष्ठभूमि आवश्यक है। ग़ालिब कहते हैं—

मलिनताकी पृष्ठ-भूमिपर प्रकाशका गौरव

लताफ़त बेकसाफ़त जल्वा पैदा कर नहीं सकती,
चमन ज़ंगार[3] है आईनए बादे बहारी[4]का।

अर्थात् सौन्दर्य (लताफ़त) बिना मलिनता (कसाफ़त) के जल्वे नहीं पैदा कर सकता। वसन्त-समीरणके आईनेके लिए चमन (पुष्पोद्यान)

---

१ सौन्दर्य सुषमा २. बिना मलिनता ३ मलिनता कलई; जंग ४ वसन्त-समीर।

शौक़ने हुस्नके नक़ाबके बन्द (बन्ध) खोल दिये हैं। अब उसके और हमारे बीच सिवाय निगाहके दूसरी कोई चीज़ बाधक नहीं रह गयी है।

दृष्टिका पर्दा

हाँ यह दृष्टि ही उसके सौन्दर्य-पानमें उसके मिलनमें बाधक है। आधुनिक युगके अद्वितीय कवि 'जिगर' मुरादाबादी इससे भी आगे जाकर कहते हैं—

अच्छा उसे भी रख दें उठाकर शबे विसाल[1],
हायल[2] था एक फ़ानूस[3] सा पर्दा नज़रका है।

दृष्टिका एक क्षीण आवरण जो बाधक हो रहा है, क्यों न इस मिलन-रात्रिमें उसे भी उठाकर अलग रख दें।

सचमुच पर्दा उठाकर निगाह स्वयं पर्दा बन जाती है। यहाँ तो आत्मा (रूह) और पदार्थ (माद्दा) जीवन-मृत्यु, ब्रह्म-जीव सब एक हैं। यहाँ आकर दुख-सुख खिज़ाँ और बहार मिल जाते हैं—एक दूसरे को आलिंगनमें लिये जाते हैं। ऐसी स्थितिमें धर्मपरम्परा (मज़हब) परम सत्यसे हटा देती है। तब रीति-रिवाज और सम्प्रदायगत त्याग ही ईमान बन जाता है—

मिल्लतें जब मिट गयीं अजज़ाए ईमाँ[4] हो गयीं।

संसार जो प्रियतमकी ही छवि है, पर मुग्ध हुआ कवि उसके दुःख दर्दको भी उसकी अदाओंकी तरह ग्रहण करता है। अदाओंसे और प्यार उमड़ता है, शोखियोंमें माशूकका हुस्न और उभरता है, मलिनताकी पृष्ठभूमिपर प्रकाशकी गौरव-वृद्धि होती है। इसी प्रकार दुःख-दर्द भी सहे जाते हैं इसलिए कि सुख-चैनका स्वाद बढ़ा दें। खिज़ाँका आगमन

दुःख-दर्द माशूककी अदाएँ हैं

---

१ मिलनरात्रि २ बाधक ३ दीप ४ ईमानके अंग।

इसमें मरणकी कल्पना ही संसारके बिखरे अंगोंका एक क़दीम गूँथ रही है। अर्थात् जगत्‌का जो परिवर्तन है उसके कारण संसारका आकर्षण और तीव्र हो गया है। ऊपर ऊपर जो विनाशका मार्ग वर्तुलिक फैला दिखाई पड़ता है उससे भी उच्च और निम्न सब बराबर हो जाते हैं —

> नज़रमें है हमारी जादए राहे फ़ना ग़ालिब,
> कि यह शीराज़ा है आलमके अज्ज़ाए परीशाँ का।

(ऐ ग़ालिब ! विनाशकी राह हर समय हमारी नज़रमें रहती है, क्योंकि संसारके बिखरे हुए अंगोंको मिलानेकी कड़ी यही है।)

साधकको आरम्भमें ऐसा ही लगता है। सब कुछ नाशवान है, हमारे अन्दर भी विनाशके बीज छिपे हुए हैं —

> मेरी तामीरमें[1] मुज़्मिर[2] है एक सूरत ख़राबीकी।

तुम्हारी कृपा हमें ढूँढ लेगी

पर यह भय यह डर तभीतक है जबतक मालिककी कृपासे हम वंचित हैं जबतक उसने हमें अपनाया नहीं है, अपने कृपा-कटाक्षसे पावन नहीं किया है। ज्यों-ही उसकी कृपा-दृष्टि होती है, यह अस्तित्वकी भिन्नता नष्ट हो जाती है —

> परतवे[3] ख़ुरसे[4] है शबनमको[5] फ़ना[6]की ता'लीम,
> मैं भी हूँ एक इनायत[7]की नज़र होनेतक।

सूर्यका प्रकाश ओस-बिन्दु (शबनम) को फ़ना (विनाश) की सीख देता है। इसी प्रकार मैं भी तभीतक हूँ जबतक तुम्हारी कृपा-दृष्टि

---

१ निर्माण रचना २ प्रच्छन्न निहित ३ प्रकाश ज्योति ४ सूर्य सूर्यबिंब ५ ओस ६ विनाश (यहाँ 'फ़ना' अस्तित्वहीनता नहीं है वरं पूर्ण विलीनता तल्लीनता है) ७ कृपा।

नहीं होती। (तुम्हारी इनायतकी एक नज़र हाल हो मैं भी तुममें विलीन हो जाऊँगा।)

मिट्टीके ज़र्रेमें मचलता प्रणय : मानव

यह इनायतकी नज़र होनेतक संसार और जीवनको, ग़ालिब असीम कामनाओंके साथ प्यार करता है। वैसे मानव भी दुनियाकी अन्य वस्तुओंकी भाँति ही प्यार की चीज़ है पर उसमें अन्य वस्तुओंसे यही अन्तर है कि उसमें कामना है भावना है उत्कण्ठा है व्याकुलता है तड़प है। *सबसे बड़ी बात यह कि उसमें बुद्धि है* —

ज़िमा गर्मस्त इन हंगाम बिनिगर शोरे हस्ती रा,
क़यामत मी दमद अज़ पर्दए ख़ाके कि इन्साँ शुद।

अर्थात् दुनियाकी यह हलचल मेरे ही कारण है और मिट्टीके उस ज़र्रेमें प्रणय मचल रहा है, वह मानव बन गया है।

मानवमें ख़ुदा बोलता है। यह ख़ुदाकी सबसे प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। इसीलिए सृष्टिमें मानव महान् है। सारी नक़्श सृष्टि उसीके लिए, उसी को रमानेके लिए है —

ज़ि आफ़रीनिश आलम ग़रज़ जुज़ आदम नेस्त।

(मानवके सिवा विश्वकी उत्पत्तिका कोई हेतु नहीं है।)

इसीलिए ग़ालिब हज़ार जानसे दुनियाको चाहता है, हज़ार कामनाओंसे वह उसे आलिंगन किए हुए है जकड़े हुए है। संसारकी भाँति ही इन कामनाओंका अन्त नहीं है और प्रत्येक कामना इतनी बलवती कि क्या कहें —

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले।

यह अनन्त कामनाओंका दर्द है। उसका सीना अनन्त उसकी मस्ती

अबाध । जिस कामकी जादूगरीका तमाशा चारों ओर बिखरा है वह कभी समाप्त नहीं होता । वह उसमें इतना खो गया है कि उसीका होकर रह गया है । उसके बिना चैन नहीं । कामनाकी इस बेचैनीमें वह सृष्टिके समस्त सौन्दर्य एवं भोग्य पदार्थोंको अपना ही मानता है ।

अबाध कामनाका कवि

हर चे दर मब्द ए फ़ैयाज़ बुवद आने मनस्त ।

अर्थात् जो कुछ उदार (फ़ैयाज़) सृष्टिके पास है, सब मेरा है मेरे लिए है ।

इसीलिए ग़ालिब रवीन्द्रनाथकी भाँति संसारसे विरक्त करनेवाली मुक्तिका उपासक नहीं है । कामना ही उस संसारसे और उसीके माध्यमसे उस माशूक़से जो सब माशूक़ोंमें प्रकट है, जोड़ती है । इस कामनाका ज्वार कभी शान्त नहीं हुआ । वह निरन्तर बढ़ता ही गया है यहाँ तक कि सम्भावनाओंका समग्र संसार उसके एक क़दममें विलीन हो जाता है —

कामना ही माशूक़से जोड़ती है

है कहाँ तमन्ना[1] का दूसरा क़दम यारब[2] ।
हमने दश्ते इम्काँ[3] को एक नक़्शे पा[4] पाया ।

'हे प्रभु ! कामनाका दूसरा पग कहाँ है ? (उसके रखनेकी जगह ही नहीं) यहाँ तो सम्भावनाओंके बियाबानको हमने केवल एक चरण-चिह्नके रूपमें पा लिया है (सम्भावनाओंका बियाबान एक ही कामनाके चरणमें समाप्त हो गया !) ।

---

१ कामना २ हे ईश्वर, ३ सम्भावनाका बियाबान ४ चरण चिह्न ।

उनके जीवनकी जड़ें इसी संसारकी धरतीमें गहरी गयी हैं

स्वभावतः इस निर्वाण कामनाके स्थानक आगे इस्लाम धर्ममें पवित्र लोगोंको मिलनेवाले बिहिश्त (स्वर्ग) की क्या हस्ती ? ग़ालिब इस संसारके आनन्दको किसी भी सम्भावित भावी परलोकगत सुखसे बदलनेको तैयार नहीं । उनके जीवनकी जड़ें इसी संसारकी भूमिमें इतनी गहराई तक चली गयी हैं कि ऐसे किसी भी प्रलोभनको बिना एक क्षण विचार किये वह ठुकरा देता है । शायद ही संसारके किसी दूसरे कविने स्वर्गका ऐसा उपहास किया होगा जितना ग़ालिबने किया है । फ़ारसी और उर्दू कलाममें बार-बार उन्होंने बिहिश्तका मज़ाक़ उड़ाया है । एक उर्दू शेर है —

> देते हैं जन्नत[1] हयाते दहर[2] के बदले,
> नशा बअन्दाज़ए खुमार[3] नहीं है ।

यह सांसारिक जीवनके बदले जन्नत देते हैं । यह नशा मेरे खुमारके अनुरूप नहीं है ।

फिर एक नास्तिककी भाँति कहते हैं —

> हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन
> दिल के ख़ुश रखने को ग़ालिब ये ख़याल अच्छा है

स्वर्गकी बातें बढ़ा-चढ़ाकर उसकी की जाती हैं । उसकी तारीफ़के पुल बाँधे जाते हैं पर यहाँ माशूक़के जलवागाह (संसार) का जो सौन्दर्य उसकी तौलमें क्या है उसपर दूसरा रंग चढ़ता नहीं —

---

१ स्वर्ग २ सांसारिक जीवन ३ आनुपातिकता ।

सुनते जो हैं बिहिश्तकी तारीफ़ सब दुरुस्त,
लेकिन ख़ुदा करे वह तेरी जल्वगाह[1] हो।

पर उपदेश देनेवाले कब मानते हैं ? वे तो अपनी ही कहते जाते हैं उनकी वह जारी रहती है। यहाँ तक कि ग़ालिब चिढ़कर कहते हैं —

ताअत[2] में ता रहे न मय-ओ-अंगबीं[3] की लाग,
दोज़ख़[4] में डाल दो कोई लेकर बिहिश्त[5] को।

उपासनाके पीछे शराब और शहदकी लाग (लालच) न रह जाय इसलिए कोई स्वर्गको उठाकर नरकमें डाल दो। [इस्लाममें माना गया है कि परहेज़गारी और इबादतकी ज़िन्दगी बितानेवालोंको स्वर्ग मिलता है जिसमें हूरें ख़िदमतको मिलती हैं और शराब व शहद पीने-खानेको। इसी प्रलोभन भरे विश्वास-की हँसी उड़ाई गयी है।]

वासनाका लोभ हेय है

एक जगह और कहते हैं —

क्यों न फ़िरदौस[5] को दोज़ख़[4] में मिला लें यारब !
सैर के वास्ते थोड़ी सी फ़िज़ा और सही।

हे ईश्वर ! स्वर्गको क्यों न नरकमें मिला लें जिससे दिल-बहलाव और सैरके लिए थोड़ी फ़िज़ा और बढ़ जाय।

वह बिहिश्तके विरुद्ध इसलिए भी न हुए कि वहाँ मिलनेवाला सौन्दर्य सीमित है जब उनकी कामना बिखरे हुए सम्पूर्ण सौन्दर्यको कलेजेसे लगा लेनेको छटपटाती है। इस प्रकार कामनाकी पूर्ति स्वर्गकी अपेक्षा संसारमें कहीं अधिक हो सकती है। गुनाने एक जगह लिखते हैं—

---

१ [illegible] २ उपासना भक्ति। ३ मधु। ४ नरक। ५. स्वर्ग।

'जब मैं बिहिश्तका तसव्वुर[1] करता हूँ और सोचता हूँ कि अगर मग़फ़िरत[2] हो गयी और एक क़स्र[3] मिला और एक हूर[4] मिली, इक़ामत[5] जाविदाँ[6] है और एक नेकबख़्तके साथ ज़िन्दगानी है तो इस तसव्वुरसे जी घबराता है और कलेजा मुँहको आता है। हय हय वह हूर अजीरन हो जायगी। तबीयत क्यूँ न घबरायगी? वही ज़मुर्रदी काख[7] और वही तूबा[8] की एक शाख़।

बिहिश्तके तसव्वुरसे कलेजा मुँहको आता है

स्वर्गकी वस्तुओंकी हँसी उड़ानेका कोई मौक़ा हाथसे जाने नहीं देते। फ़र्माते हैं —

वाइज़[9] न तुम पियो न किसीको पिला सको,
क्या बात है तुम्हारी शराबे-तहूर की।

ऐ उपदेशक! तेरी शराबे तहूर (स्वर्गमें पी जानेवाली मदिरा) का क्या कहना है जिसे न तू पी सकता है न दूसरे ही किसीको पिला सकता है? (ऐसी बलाकी शराब लेकर क्या होगा?)

× ×

युवावस्थामें ग़ालिबके उस्तादने उनसे कहा था— 'शकरका मज़ा चख लेना मगर मक्खी बनकर शहदपर कभी न बैठना नहीं तो उड़नेकी शक्ति बाक़ी न रहेगी।' यह बात ग़ालिबके हृदयमें पैठ गयी थी। यही उनके जीवनका मेरुदण्ड है। एकमें केन्द्रित होना एक जगह बैठकर पीना बँधकर रहना उन्होंने कभी स्वीकार न किया। इसीलिए सरदार जाफ़रीके शब्दोंमें 'वह मंज़िलका

मंज़िलका नहीं रास्तेका, तृप्तिका नहीं तृष्णा-का कवि

---

१ कल्पना ध्यान २ छुटकारा मुक्ति ३ महल ४ परी स्वर्गाङ्गना ५. निवास ६ नित्य शाश्वत ७ पन्ना (हीरा) का घर ८. कल्पवृक्ष ९. उपदेशक।

नहीं पथका तृप्तिका नहीं तृष्णाके रसका कवि है। प्यास बुझाना उसका उद्देश्य नहीं प्यास बढ़ाना उसका आदर्श है। 'प्रसाद' की तरह वह—

इस पथका उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवनमें टिक रहना।

राहमें चलते हुए रस लूटते जाना ही उसके सुख और जीवनका तत्त्व है। उसे मंजिलपर पहुँचकर तृप्त हो जानेवाले पथिकसे कभी ईर्ष्या न हुई क्योंकि तब वह पथिक ही कहाँ रह गया? उसे ईर्ष्या यदि होती है तो मार्गमें अकेले भटकनेवाले पिपासाकुल राहीसे होती है जैसा खुद फ़ारसीमें कहा है—

रश्क बरतश्ना-ए-तनहा रवे वादी दारम
न बर आसूदा दिलाने हरमो ज़मज़मे शौं।

इस आदमीकी प्यास कभी न बुझी। वह कभी बुझनेके लिए पैदा ही न हुई थी। हाथोंमें जब गति ही न रह गयी तब भी यह प्यास नहीं मिटी तब भी वह चीखकर कहता है—

गो हाथको जुंबिश[1] नहीं, आँखोंमें तो दम है,
रहने दो अभी साग़रो[2] मीना[3] मेरे आगे।

× ×

पर ग़ालिबकी दार्शनिक सफलता जीवनके स्तरपर यह है कि जीवन एवं प्रबल कामनाओंसे लिपटे हुए भी उसमें घटनाओंके प्रति परिणामके प्रति गहरी अनासक्ति है। इसी कारण ग़ममें पड़कर भी वह हँस सकता है और हँसते हुए भी रो सकता है। हास्य और रुदन सुख और दुःख उस स्तरपर है जहाँ उनका भेद मिट जाता है। जिसकी निगाहपर दुःखके

हँसीमें रोदन
रोदनमें हँस।

---

१ गति २ चषक मद्यका प्याला ३ मद्यकी सुराही या बड़ा कंटर।

स्वयं इतनी पड़े हैं कि वह और दृढ़ हो गयी है—दुःख इतने देखे हैं कि वे मिटकर रह गये हैं। कठिनाइयाँ इतनी आई हैं कि उनकी झेलनेकी शक्ति समाप्त हो गयी है। वे कठिनाइयाँ रहीं ही नहीं, आसान हो गयी हैं। मुश्किलोंको आसान बनानेका गुर इनके हाथ आ गया है। कहते हैं—

> रंजसे ख़ूगर[1] हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रंज,
> मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझपर कि आसाँ हो गयीं।

अर्थात् यदि किसीको दुःखकी आदत पड़ जाती है तो फिर दुःख दुःख नहीं रह जाता। मुझपर इतनी कठिनाइयाँ पड़ी हैं कि मैं उनका अभ्यस्त हो गया हूँ और यों मुश्किलें आसान हो गयी हैं।

जिसमें आसक्तियाँ अनासक्तिकी गोदमें सो जाती हैं

आसक्तियोंसे इस तरह लिपटा हुआ कि आसक्तियाँ अनासक्तिकी गोदमें सो जाती हैं—कुछ ऐसा इन्सान था ग़ालिब। उत्तरकालमें तो यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है। एक बारकी बात है कि उनके परमप्रिय शिष्य हरगोपाल 'तुफ़्ता' निराशाके कारण संसार-त्यागको तैयार हुए। उस समय ग़ालिबने जो पत्र उन्हें लिखा था उससे उनके मानसिक सन्तुलनका पता चलता है। लिखते हैं —

'क्यों तर्के लिबास[2] करते हो? पहननेको तुम्हारे पास क्या है जिसको उतारकर फेंकोगे? तर्के लिबाससे कैसे हस्ती[3] मिट न जायगी। बग़ैर खाये पिये गुज़ारा न होगा। सख़्ती व सुस्ती[4] रंज वो अलम[5] को हमवार[6] कर दो। जिस तरह हो सकी गुज़र व हर गुज़र गुज़रने दो।

एक दूसरे पत्रमें उन्हींको फिर लिखते हैं —

---

१ अभ्यस्त व्यसनी २ वस्त्र-त्याग ३ जीवनका बन्धन ४ दृढ़ता और शिथिलता ५ दुःख-कष्ट ६ समतल।

मुझको देखो कि न आज़ाद हूँ न मुक़य्यद[1] न रंजूर[2] हूँ न तन्दु-रुस्त न ख़ुश हूँ न नाख़ुश न मुर्दा हूँ न ज़िन्दा। जिये जाता हूँ बातें किये जाता हूँ रोटी रोज़ खाता हूँ शराब गाह-गाह[3] पिये जाता हूँ। जब मौत आयेगी मर रहूँगा। न शुक्र है न शिकायत। जो तक़रीर है बतौरे हिकायत।

मुंशी नबीबख़्शको एक पत्रमें लिखते हैं— '[illegible] दूसरेके तमा-शाई बनो।' फिर कहते हैं—

रात दिन गर्दिशमें हैं सात आसमाँ,
हो रहेगा कुछ न कुछ घबराएँ क्या ?

हर रंगमें मिलकर मस्ती लेनी चाहिए। दर्शनोत्कर्षसे ही दुःखमें सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है—

बख़्शे है जल्वए गुल ज़ौक़े तमाशा ग़ालिब',
चश्मको चाहिए हर रंगमें वा हो जाना।

एक ओर बुद्धिकी जिज्ञासा दूसरी ओर इस प्रकार मनोभूमिकाने उन्हें सम्पूर्ण धार्मिक परम्पराओं और विधेयोंके ऊपर उठा दिया था।

मूढ़ परम्पराओंसे ऊपर

उनमें धार्मिक मूढ़ग्राह ज़रा भी न थे। 'मीर' भी इससे बहुत ऊपर थे पर वह एक सूफ़ी पिता के पुत्र थे फ़क़ीरी उनका पेशा भी इश्क़ उनका मज़हब था। इसलिए धार्मिक संकुचितताके ऊपर उठना उनकी ख़ुदापरस्तीका एक जुज़ था प्रेमधर्मकी उपासनाके लिए अनिवार्य। ग़ालिब रईसी ठाठोंके आदमी थे। एक दूसरे वातावरणमें पले थे फिर भी उनमें विचार और तर्कना की प्रख-रता थी और वह मूढ़ परम्पराओंके सामने सिर झुकानेको तैयार न थे। हम देख चुके हैं कि रोज़ा नमाज़ परहेज़गारी और स्वर्ग-लोभका उन्होंने

---

१ बन्दी बन्धनमय २. बीमार ३ जब-तब कभी-कभी।

किस प्रकार बार-बार उपहास किया है। यह भावनाके उत्कर्षका प्रमाण नहीं है यह एक अविश्वासीके उच्चतर जीवन-मूल्योंके प्रति निष्ठाका प्रमाण है। इसीलिए दैरोहरम (मन्दिर-मस्जिद) उनके लिए, अधिकसे अधिक अभिलाषाकी पुनरावर्तन एक दर्पणमात्र बनकर रह गया है—

दैरो हरम आईना-ए-तकरारे-तमन्ना।

या कहीं भी उपासनामें निष्ठा हो तो वह हर स्थानपर प्रशंसनीय है। किसकी हिम्मत है जो उनकी तरह कहे—

वफ़ादारी बशर्ते उस्तवारी अस्ले ईमाँ है,
मरे बुतख़ानेमें तो का'बे में गाड़ो बिरहमनको।

यदि निष्ठामें दृढ़ता हो तो यही धर्मका तत्त्व है। यदि ब्राह्मण मूर्ति धाम (मन्दिर) में मरे तो उसे (सम्मानपूर्वक) काबेमें दफ़न करो।

फ़ारसीमें भी कहा है—

दिलम दर का'बा अज़ तंगी गिरफ़्त आवारए हस्ताइम,
कि आमद वुसअते बुतख़ानाहाए हिन्दूनी आमद।

×　　　　×

इस प्रकार ग़ालिब तत्त्ववेत्ता न होकर भी तत्त्ववेत्ता है क्योंकि जीवन और जगत्का दर्शन करते हुए वह अनुभूतिकी ऐसी गहराइयोंमें उतर जाता है जिससे तत्त्वज्ञानकी ज्योति जगा लेती है।

तत्त्ववेत्ता न होकर भी तत्त्ववेत्ता

ग़ालिबकी विशेषता यह है कि वह संसारको केवल भावनाके आकाशमें उड़ते हुए ही नहीं देखता उसे बुद्धिकी ठोस भूमिसे भी देखता है इसीलिए उसमें कल्पनाकी उड़ानके साथ गम्भीर दृष्टि-निक्षेपकी स्थिरता भी है। और यही स्वभाव *तत्त्वज्ञानकी झलक तजल्लियाँ उसके दिलके आईनेमें उतारता है।* चूँकि वह कवि है इसलिए इन झलकियोंमें भी तरह-तरहके रंग खिल उठे हैं। ये तत्त्वज्ञानीकी शुष्क ज्ञानचर्चा नहीं कविके सौन्दर्य-बोधसे उत्पन्न चित्र हैं।

मौलाना 'नियाज़' फ़तहपुरीने लिखा है कि यदि ग़ालिबका कोई वचन है तो वह आनन्दका वचन है। यदि इसका अभिप्राय यह हो कि ग़ालिब केवल सुख वैभव और बुलहवस शायर है तो यह बात बिलकुल ही तथ्य हीन है। ग़ालिबके काव्यमें दुख और दर्दकी तस्वीरें सुखके चित्रोंसे कहीं ज़्यादा हैं। पर यदि इसका यह अर्थ है कि ग़ालिबका ग़म उसे निष्क्रिय नहीं करता निराश नहीं करता और उस ग़मकी घटाओंके बीच मुस्कराहटकी बिजलियाँ तड़पती और चमकती हैं तथा आँसुओंके बादलमें ज़िन्दगी की हज़ार-हज़ार मुस्कानें तीव्र प्रकाश-रेखाकी भाँति प्रविष्ट हो जाती हैं तो यह सत्य है।

ज़िन्दगी और कामनाकी अपरिमित भंगिमाएँ उसके काव्यमें मचलती हैं

ग़ालिब ऐसी उद्दाम कामनाका कवि और चित्रकार है जो कभी शान्त नहीं होती जो इसी दुनियाके सहस्र-सहस्र रूपोंमें अपनेको खोजती और पाती है, जो मरती है और मर-मरकर भी उठती है, जिसमें ज़िन्दगीकी अपरिमित भंगिमाएँ नित्य नूतन स्वादका सर्जन करती हैं, नई-नई अदाएँ, नई-नई तस्वीरें नये-नये रंग सामने आते हैं और एक ऐसा तमाशा हो रहा है जो कभी ख़त्म नहीं होता और जहाँ तमाशाई ख़ुद एक तमाशा है, बल्कि तमाशेमें दर्शनीयके दृश्यमें ही दर्शक मिल जाता है। माशूककी छवि यहाँ चारों ओर बिखरी हुई है, यहाँ उठानेकी देर है, हर जगह उसे नज़र भरके देखा जा सकता है। यह संसार, दु:खकी घटाओंके साथ भी कलेजेसे लगा लेने हज़ार जानसे फ़िदा होनेके योग्य है। ग़ालिब पद-पद जिज्ञासासे संसारके सौन्दर्यकी ओर इशारा करता है—

नहीं निगारको उल्फ़त, न हो, निगार तो है।
नहीं बहारको फ़ुर्सत, न हो बहार तो है॥

यही पतझा झड़नेवाला संसार एवं जीवनका सौन्दर्य ग़ालिबका दर्शन है।

ग़ालिबकी रचनाएँ

फ़ारसी रचनाएँ

मिर्ज़ा ग़ालिब फ़ारसीके उस्ताद थे। उन्हें अपनी फ़ारसीपर नाज़ था। कभी-कभी उर्दू लिखते थे पर फ़ारसी-रचनाओंपर आसक्त थे। बच-पनसे ही फ़ारसीमें शेर कहना शुरू कर दिया था और अन्तकालतक लगभग ग्यारह हज़ार शेर लिखे।

फ़ारसी पद्य—फ़ारसीके लगभग ग्यारह हज़ार शेरोंमें ग़ज़लें क़सीदे मस्नवियाँ तर्जीबन्द इत्यादि शामिल हैं। इनका मोटा विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

ग़ज़ल—लगभग साढ़े चार हज़ार शेर।

मस्नवी—दो हज़ारसे ऊपर।

क़सीदे इत्यादि—लगभग चार हज़ार।

फ़ारसीकी अधिकांश ग़ज़लोंमें 'बेदिल'का रंग है। मस्नवियाँ ग्यारह हैं जिनमें तीन (चिराग़े दैर, बादे मुख़ालिफ़ और अब्र गुहरबार) ज़्यादा प्रसिद्ध हैं। अब्र गुहरबार सबसे अच्छी है। फ़ारसी क़सीदे कुल तैंतीस हैं जिनमें १२ धार्मिक हैं, शेष २१ दिल्ली अवध और रामपुरके शासकों मित्रों एवं अंग्रेज़ अधिकारियों तथा महारानी विक्टोरियाकी प्रशंसामें लिखे गये हैं। क़सीदोंमें यह ग़ज़लोंसे बहुत नीचे और दूर मालूम पड़ते हैं फिर भी कहीं-कहीं उनमें इनकी प्रतिभा ग़ज़लोंसे अधिक चमकी है और इनका काव्य-शिखर उभर आया है।

कुल्लियाते नस्रफ़ारसी—१५ ११ सालकी उम्र तक मिर्ज़ाके फ़ारसी

कलामका अच्छा-खासा संकलन हो चुका था जिसे उन्होंने १८३५ ई० में मयखानए आर्जू (कामनाओंकी मधुशाला) के नामसे सम्पादित और क्रम-बद्ध किया। पर यह दस वर्ष तक अप्रकाशित पड़ा रहा। १८४५ ई० में नवाब ज़ियाउद्दीन अहमदख़ाँ नय्यर'ने इसे संशोधित और सम्पादित कर मतबअ दारुस्सलाम देहलीसे प्रकाशित कराया। इसमें ५ १ पृष्ठ हैं, और अन्तमें ३ पृष्ठका परिशिष्ट है। इसमें ९६७२ शेर हैं।

इसके बादका फ़ारसी कलाम नवाब ज़ियाउद्दीन और नाज़िर हुसेन मिर्ज़ाके पास एकत्र होता रहा। १८५७की उथल-पुथलमें इन दोनोंके घर ऐसे लुटे कि चिन्दियाँ भी न बचीं। यह संग्रहीत काव्य भी उसीमें स्वाहा हो गया। १८६२ ई० तक प्रयत्न करके जो कुछ दूसरी बार एकत्र किया था उसे लखनऊके मुंशी नवलकिशोरने नवाब ज़ियाउद्दीन अहमदख़ाँके पुत्र मीरज़ा शहाबुद्दीन साक़िब'से मँगवा लिया और अपने प्रेससे जून १८६३मे प्रकाशित किया। इसमें 'मयख़ानए आर्ज़ू'के शेरोंके अलावा १७५२ शेर हैं अर्थात् कुल शेरोंकी संख्या ११४२४ है।

अब्र गुहरबार—शाब्दिक अर्थ है 'मुक्तावर्षक मेघ'। ग़ालिबकी यह सबसे बड़ी मसनवी है। यह कुल्लियातमें सम्मिलित है पर कुल्लियातके मुद्रणके कुछ दिनों बाद एक मित्रके आग्रहपर अलग छपी गयी। इसमें ४२ पृष्ठ हैं। इसमें ग्यारह सौसे अधिक शेर हैं। वस्तुतः यह एक अपूर्ण मसनवी है जिसे मिर्ज़ा फ़िर्दौसीके 'शाहनामा' के ढंगपर लिखना चाहते थे पर वह शान्ति जिसमें इसे पूरा कर सकते नसीब न हुई। मिर्ज़ाके उत्तर जीवनकी मानसिक स्थितिके अध्ययनके लिए इसमें पर्याप्त सामग्री मिलती है। इस काव्यमें जब भौतिक सुख विलास और भोगकी कामनाएँ शिथिल पड़ती जा रही थीं उनका मन बीच-बीचमें भगवान्के चरणोंमें निवसित होना चाहता था पर अभी तक उनमें यौवनके पूर्व संस्कार बने हुए थे इसलिए ईशस्तवन तथा विनयमें भी वह प्राण-चेतना नहीं है जो अनुताप-दग्ध मनके हृदयसे फूटता है।

इस संस्करणमें मसनवीके अन्तमें वा कसीदे और वो किता भी हैं जो कुल्लियातके प्रकाशनके बाद लिखे गये थे। इनके अतिरिक्त पत्र रुबाइयाँ (चतुष्पदियाँ) भी हैं जो कुल्लियातमें छपनेसे रह गयी थीं।

सबदे चीन—'सबदे चीन'का अर्थ है 'फूल चुननेवालेकी डलिया'। इसमें कुल्लियातके प्रकाशनके अनन्तर लिखे हुए कसीदे, किते तथा अन्य कलाम हैं जिनमें से कुछ तो 'माये गुहरबार'में भी छप चुके थे। इसे अगस्त १८६७ ई॰ में मतबअ मुहम्मदीने प्रकाशित किया था। १९३८ ई॰ में इसका दूसरा परिवर्धित संस्करण श्री मालिकरामने सम्पादित करके मकतब जामिया दिल्लीसे प्रकाशित कराया। इसमें गालिबकी बिखरी हुई कुछ और रचनाएं भी जोड़ दी गयीं। इसमें एक कसीदा रामपुरके नवाब कल्बअलीखाँकी प्रशंसामें है। सबदे चीनके इस संस्करणमें ८७ शेर हैं।

सबद बागे दोदर—इसका पता कुछ समय पूर्व चला है। अभी तक अप्रकाशित है। इसकी जो पाण्डुलिपि देहली यूनिवर्सिटीके फारसी-अरबी विभागके अध्यक्ष प्रो॰ मुख्तार वजीर हसनके पास है उसे किसीने गालिबके शिष्य मुंशी हीरासिंह दर्दकी फर्माइशपर तैयार किया था। किताबका लेखन-कार्य तो गालिबके जीवनमें ही शुरू हुआ था पर उसकी पूर्ति उनकी मृत्युके तथा उसके भी अधिक समयके बाद ७ जुलाई १८७ ई॰ को हुई। गालिबने इसका अधिकांश भाग देखा था।

दुआए सबाह—इस पुस्तकके दो भाग हैं। पहिले भागमें सबदे चीन (प्रथम संस्करण) तथा कुछ फारसी अन्य नस्रें हैं। दूसरे भागमें कुछ नव रचनाएँ हैं। 'दुआए सबाह'का अर्थ है 'प्रातः प्रार्थना' या सुन्दर स्तव। एक मसनवी है जिसे गालिबने अरब भाषा मीरजा अहमद बेग एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर करनालकी फर्माइशपर लिखी थी और नवाब-

किशोर प्रेस लखनऊसे छपी थी। मई १९४१में 'निगार' (लखनऊ) में मौलाना इम्तियाज अली अर्शीने पुनः प्रकाशित करायी।

फ़ारसी गद्य—मिर्ज़ा जितने अच्छे शाइर थे उतने ही उच्चकोटिके गद्यकार भी थे। जीवन कालके आरम्भसे ही उन्होंने फ़ारसीमें गद्य लिखना शुरू कर दिया था। अधिकांश फ़ारसी गद्य-रचनाएँ २८ से ४ सालकी उम्रतक की लिखी हुई हैं। बादमें उर्दू गद्य लिखने लगे थे और फ़ारसीमें लिखना छोड़ दिया था।

पंच आहंग—यह फ़ारसी गद्यमें मिर्ज़ाकी पहली रचना है। इसमें पाँच खण्ड हैं। १८२५ ई० मे जब अंग्रेजोंने भरतपुरपर चढ़ाई की तो मिर्ज़ा ग़ालिबके श्वसुर नवाब अहमद बख्श ख़ाँ भी उनके साथ युद्धमें सम्मिलित थे। इस अवसरपर ग़ालिब तथा उनके साले अलीबख्श ख़ाँ 'रंजूर' भी वहाँ थे। रंजूरने ग़ालिबसे अनुरोध किया कि आप पत्र-लेखनके नियमादिपर एक पुस्तक लिख दें। इसी अनुरोधके फलस्वरूप इस पुस्तककी नींव पड़ी। उस समय इसके दो खण्ड लिखे गये। फिर तीसरे खण्डमें ये घेर दीवानसे लेकर एकत्र किये जिनका पत्र-लेखनमें उपयोग किया जा सकता है। चतुर्थ खण्डमें स्फुट गद्य-गद्य रचनाएँ हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण पंचम खण्ड है जिसमें मिर्ज़ाके वे फ़ारसी पत्र हैं जो उन्होंने समय-समयपर अपने मित्रोंको लिखे थे और जिनसे उनके जीवनपर प्रकाश पड़ता है।

मेहू नीमरोज़—इसका शाब्दिक अर्थ है मध्याह्नका सूर्य। जब अंग्रेजोंकी चेष्टा और प्रयासोंसे हकीम अहसन उल्ला ख़ाँ बादशाहके वज़ीर नियुक्त हुए तो उन्होंने अंग्रेजोंके और मुसलमानोंके लिए भी दरबारमें जगह पैदा करनेकी कोशिश की। इन्हींमें एक मिर्ज़ा ग़ालिब भी थे जो अंग्रेजोंके पेन्शनख्वार और प्रिय थे। अवसर पाकर हकीम साहबने बादशाहका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि ग़ालिब जैसा विद्वान् और कवि दिल्लीमें उपस्थित हो और उसे शाही दरबारमें जगह न मिले यह आश्चर्यकी बात है। इसपर ग़ालिब ४ जुलाई १८५ ई० को राजकीय इतिहासकारके पदपर

नियुक्त किये गये और उन्हें तैमूर वंशका इतिहास फ़ारसीमें लिखनेका काम सौंपा गया। शुरूमें बहादुरशाह 'ज़फ़र' के आदेशके अनुसार यह तय पाया कि तैमूरसे लेकर वर्तमान दिल्लीपति तकका विवरण पुस्तकमें दिया जाय। जनवरी १८५१ तक तैमूरसे आरम्भ कर बाबर तकका वृत्तान्त पूरा कर दिया और फिर मार्च १८५१के अन्ततक निर्वासनसे हुमायूँके लौटने तकका इतिहास लिख डाला।

जब मिर्ज़ा हुमायूँ तकका इतिहास लिख चुके तब बहादुर शाहने आज्ञा दी कि इतिहास सृष्टिके आरम्भसे लिखा जाय। मिर्ज़ाको इस विषयमें कोई दिलचस्पी न थी न उन्हें सृष्टिके आरम्भके बारेमें कोई विशेष जानकारी थी, इसलिए वज़ीरने ऐतिहासिक तथ्य एवं आँकड़े एकत्र कर देनेकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली। एक प्रकारसे वज़ीर उसे उर्दूमें लिखते और ग़ालिब फ़ारसी रूप देते थे। अब मिर्ज़ाने योजना बनाकर इतिहासके दो भाग कर दिये। पूरे ग्रन्थका नाम 'परतविस्तान' और प्रथम भागका 'मेह्र नीमरोज़' एवं दूसरेका 'माहे नीम माह' रखना तय किया। यह भी तय हुआ कि प्रथम भागमें हुमायूँ तकके और दूसरे भागमें अकबरसे बहादुरशाह तकके वृत्तान्त दिये जायें। बीच-बीचमें अनेक प्रकारके विघ्न पड़ते रहे, कभी हकीम साहबकी ओरसे ढिलाई होती कभी ग़ालिबकी ओरसे। किसी तरह पहला भाग अर्थात् मेह्र नीमरोज़ अगस्त १८५४ ई० में समाप्त हुआ और १८५५ में फ़ख़रुलमताबअसे प्रकाशित हुआ। इसका दूसरा संस्करण प्रोफ़ेसर औलादहुसैन 'शादाँ'ने संशोधन एवं सम्पादनके बाद, मतबअ करीमी लाहौरसे प्रकाशित कराया। दूसरा भाग लिखा ही नहीं गया।

दस्तम्बू—'दस्तम्बू' उस पुष्प गुच्छको कहते हैं जो हाथमें लेकर सूँघनेके लिए बनाया जाता है। जब ग़दरका हंगामा मचा और मिर्ज़ाका क़िलेमें आना-जाना या बाहर निकलना बन्द हो गया तो एकान्तमें उन्होंने ग़दरका हाल लिखना शुरू किया। इस पुस्तकका आरम्भ मई १८५७ ई०में हुआ और अगस्त ५७ में यह समाप्त हो गयी। ज्यों-ज्यों लिखते थे एक

मजरूह मीर मेहदी मजरूह' को भी भेजते जाते थे। अभिप्राय यह था कि हंगामेमें यदि एकके यहाँ नष्ट हो जाय तो दूसरेके यहाँ सुरक्षित रहे। पुस्तक पहिली बार मतबअ मुफ़ीदुल्ख़लायक़ आगरासे नवम्बर १८५८के प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित हुई। पाँच महीनेमें ५   प्रतियोंका यह संस्करण समाप्त हो गया। अधिक बिक्री पंजाबमें हुई। १८६५ ई में दूसरा और १८७१ ई में तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। इस पुस्तककी मुख्य विशेषता यह है कि यह ठेठ फ़ारसीमें है और सिवाय व्यक्तिवाचक नामोंके एक भी अरबी शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है।

कुल्लियाते नस्र—इसमें उपर्युक्त तीनों पुस्तकें संकलित कर दी गयी हैं। लखनऊके मुंशी नवलकिशोरने जनवरी १८६७ ई में पहिली बार इस ग्रन्थका प्रकाशन किया। १८७१ और १८८४ ई में इसके द्वितीय तृतीय संस्करण हुए। १८७५ मे नवलकिशोर प्रेसकी कानपुर शाखासे भी इसका एक संस्करण निकला था।

क़ातए बुरहान—ग़दरके दिनोंमें परम शान्त होनेके कारण वक़्त बितानेके ख़यालसे ग़ालिबने 'बुरहान क़ातअ' को पढ़ना शुरू किया। यह मौलवी मुहम्मद हुसेन तबेज़ीका लिखा फ़ारसीका प्रसिद्ध शब्दकोष है। जब पढ़ने लगे तो पग-पग उसमें बहुतेरी ग़लतियाँ दिखायी दीं। वह पुस्तकके पृष्ठोंके हाशियेपर अपनी आपत्तियाँ लिखते गये। बादमें उन सबको एकत्र करके 'क़ातए बुरहान' नामसे एक पुस्तक बना दी। १८६ में पूरी हो गयी थी परन्तु दो साल बाद १८६२ ई में नवलकिशोर प्रेस लखनऊसे पहिली बार प्रकाशित हुई।

दुरफ़्शे काबियानी—प्राचीन ईरानमें एक लोहार था जिसने 'ज़ुहाक'के अत्याचारोंसे तंग आकर उसके विरुद्ध विद्रोह एवं युद्ध किया और उसे हराकर 'फ़रीदूँ' को उसके स्थानपर बैठाया। दुरफ़्शका अर्थ झण्डा या पताका है। भावार्थ है विद्रोहका झण्डा। 'क़ातए बुरहान' के प्रकाशनके बाद साहित्य-जगत्में एक तहलका मच गया और मिर्ज़ाजी कड़ी आलो-

इसमें नमूनेके तौरपर अपने प्रारम्भिक काव्यके भी बहुतसे शेर रहने दिये। यह दीवान पहिली बार १८४१ ई० में सय्यदुल मतावअ दिल्लीसे प्रकाशित हुआ। इसमें कुल १०९५ शेर हैं यद्यपि इसमें अपना १०७० की ही दी हुई है। यह संस्करण दुर्लभ है।

इसका दूसरा संस्करण मई १८४७ में मतबअ दारुस्सलाम दिल्लीसे छपकर निकला। इसमें ११५९ शेर हैं।

ग़ालिबने मई १८५७ में गदरसे दो-चार दिन पहिले अपने उर्दू दीवान-की एक हस्तलिपि रामपुरके नवाब युसुफ़अलीखांके पास भेजी थी। इसीकी प्रतिलिपि लेकर मतबअ अहमदी दिल्लीसे २९ जुलाई १८६१में और मतबअ निज़ामी कानपुरसे जून १८६२ में दीवाने उर्दूके दो संस्करण और निकले। इनमें पहिला बहुत अशुद्ध और भद्दा छपा है। दोनों संस्करणोंमें शेरोंकी संख्या एक ही १७९६ है पर पृष्ठ कम-ज्यादा हैं। दिल्ली संस्करणमें ८८ तथा कानपुरवालेमें १०४ पृष्ठ हैं। १८६३में १७९५ शेरोंका एक और संस्करण मुंशी शिवनारायणने मतबअ मुफ़ीदुल ख़लायक़ आगरासे निकाला था जिसमें १४९ पृष्ठ हैं।

ग़ालिबके जीवन-कालमें उनके उर्दू काव्यके यही चार संस्करण प्रकाशित हुए। उनके जीवनके बाद तो दीवाने ग़ालिब उर्दूके बीसियों संस्करण हुए हैं।

नुस्ख़ः हमीदिया या नुस्ख़ा भूपाल—मिर्ज़ा साहबने अपना उर्दू दीवान रदीफ़वार—अक्षरानुक्रमसे—१८२१ ई० में साफ़ कराया था जब वह केवल २४ वर्षके थे और बेदिलके रंगमें रंगे हुए थे। इसकी एक प्रति भूपालके राजकीय पुस्तकालयमें थी। १९२१ ई० में नुस्ख़ा हमीदियाके नामसे यह प्रकाशित कर दी गयी। इसके आरम्भमें ६ शेरोंका एक फ़ारसी क़िताअ है फिर उर्दूके तीन क़सीदे हैं जिनमें क्रमशः ११, १८ और २९ शेर हैं। इसके बाद ग़ज़लें हैं जिनमें १८८१ शेर हैं। जब दीवान ग़ालिबका चयन किया गया तब पहिले और दूसरे क़सीदेके केवल २८ एवं ११ शेर

शामिल किये गये दीवान बिल्कुल निकाल दिया गया। इसी प्रकार ग़ज़लोंके १८८३ शेरोंमेंसे लगभग साढ़े चार सौ लिये गये।

आजकल दीवाने ग़ालिबके जितने संस्करण मिलते हैं वे वही हैं जिन्हें गुरु या अपनी देख-रेखमें चुनाव करके ग़ालिबने अपने जीवनकालमें प्रकाशित कराया था। इनमें मालिकरामजी द्वारा सम्पादित संस्करण सबसे शुद्ध है।

अर्शी-सम्पादित दीवाने ग़ालिब—रामपुरके राजकीय पुस्तकालयके अधीक्षक श्री इम्तियाज़अली अर्शी वर्षोंसे ग़ालिबपर परिश्रम कर रहे थे। १९४८ ई० के मध्य उन्होंने कृपापूर्वक मुझे सूचित किया कि मैंने ग़ालिबका सम्पूर्ण प्राप्त उर्दू काव्य एकत्र कर लिया है और वह छप रहा है। शीघ्र ही आपको मिल जायगा। अब यह संस्करण अंजुमनतरक़्क़िए उर्दूसे प्रकाशित हो गया है। निश्चय ही अर्शी साहबने इसमें गुरुतम श्रम किया है और पाठ-टिप्पणियाँ पाठभेदका सबूत भी विभिन्न प्रतियोंके आधारपर कर दिया गया है।

दीवाने ग़ालिबके अनेक सुन्दर संस्करण निकले हैं। इनमें बल्लभगढ़ संस्करण, बदायूँके निज़ामी संस्करण, सरदार जाफ़री सम्पादित संस्करण तथा पूनाका सुन्दर अर्शी संस्करण उल्लेखनीय हैं परन्तु इनके मूल्य अधिक हैं और साधारण हिन्दीके पाठक उनसे लाभ उठानेमें असमर्थ हैं।

उर्दू गद्य—

ऊदे हिन्दी—१८४९ ई० तक मिर्ज़ा अपने पत्र फ़ारसीमें ही लिखा करते थे पर इसके बाद उर्दू लिखने लगे। फ़ारसीमें लिखना प्रायः छोड़ दिया। क्योंकि उर्दू पत्र उर्दू गद्यमें बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। [illegible] [illegible] ने [illegible] १९० पत्र एकत्र किये और ऊदे हिन्दीके नामसे मतबअ मुजतबाई मेरठसे अक्टूबर २७ सन् १८६८को अर्थात् ग़ालिबकी मृत्युके लगभग चार मास पूर्व प्रकाशित किया।

उर्दूए मुअल्ला—मार्च १८६९ ई० में ग़ालिबकी मृत्युके १९ दिन बाद इस नामसे उनके पत्रोंका एक दूसरा संकलन अकमलुलमताबअ द्वारा प्रकाशित हुआ। यह प्रथम भाग था। इसमें ४१८ पृष्ठ हैं। इसी प्रेससे इसका दूसरा संस्करण ११ फ़रवरी १८९१को प्रकाशित हुआ।

अप्रैल १८९९ में मतबअ मुजतबाई देहलीसे प्रथम भागके साथ ही दूसरा भाग भी मिलाकर पहली बार प्रकाशित किया गया। मौलाना हालीने इसका सम्पादन किया था। पुनः यह पूरा ग्रन्थ १९२२ ई० में मुबारकअलीने करीमी प्रेस लाहौरसे छपवाकर प्रकाशित किया। इसके बाद तो कई संस्करण निकल चुके हैं। *एक सस्ता-सा पर सुसम्पादित संस्करण* इलाहाबादके प्रकाशक लाला रामनारायण लालने भी निकाला है।

मकातीबे ग़ालिब—जीवनके उत्तरकालमें ग़ालिबका रामपुर दरबारसे घनिष्ट सम्बन्ध रहा इसलिए १८५७ से मृत्युपर्यन्त उन्होंने अनेकानेक पत्र लिखे। अधिकांश पत्र रामपुरके सरकारी साहित्य-विभागमें सुरक्षित थे। उन्हें संकलित और सम्पादित कर मौ० इम्तियाजअलीखाँ अर्शीने १९३७ ई० में मकातीबे ग़ालिबके नामसे प्रकाशित कर दिया। तबसे इसके कई संस्करण निकल चुके हैं और प्रत्येक संस्करणमें कुछ न कुछ वृद्धि होती गयी है। इसका छठा संस्करण जो १९४९ ई० में निकला था मेरे पास है। इसमें ११ पत्र हैं। ग़ालिबके उत्तरजीवन तथा उनकी मानसिक एवं शारीरिक स्थितिके ज्ञानके लिए यह ग्रन्थ बहुत ज़रूरी है। इस पुस्तकमें ग़ालिबके पत्र तो हैं ही जहाँ तक सम्भव हो सका है उनके उत्तर भी संकलित किये गये हैं तथा उपयुक्त टिप्पणियाँ देकर घटनाओंपर प्रकाश डाला गया है।

नादिराते ग़ालिब—इसमें ग़ालिबके ७४ ऐसे पत्र हैं जो इस पुस्तकके पूर्व (दो पत्रोंके सिवा) कहीं प्रकाशित नहीं हुए थे। मीर आफ़ाक़हुसेन आफ़ाक़ने एक अच्छी भूमिका और परिशिष्टके साथ इस नामसे १९४९ ई० में इदारए नादिरात कराचीसे छपवाया था। मेरे पास

इसकी जो प्रति है उसमें डा० अब्दुल हक़की एक छोटी प्रस्तावना भी है। अब यह पुस्तक भी बाज़ारमें नहीं मिल रही है।

ख़ुतूते ग़ालिब—हिन्दू विश्वविद्यालयके फ़ारसी-अरबी विभागके प्रोफ़ेसर स्व० मौलवी महेशप्रसाद आलिम फ़ाज़िलने ग़ालिबपर बहुत काम किया था। उन्होंने ग़ालिबपर अनेक भागोंमें एक महाग्रन्थ लिखनेकी योजना बनाई थी। इस सिलसिलेमें उन्होंने ग़ालिबके बहुतसे पत्र भी एकत्र किये थे। इन पत्रोंको 'ख़ुतूते ग़ालिब' के नामसे सम्पादित किया था और उसका प्रथम भाग १९४१ ई० में हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबादसे प्रकाशित भी कराया था पर असमय उनकी मृत्युसे यह महान् कार्य पूर्ण होनेसे रह गया। यह भी पता नहीं चला कि यह सब सामग्री जो उन्होंने एकत्र की थी अब कहाँ है।

क़वायदे ग़ालिब—छोटी-सी पुस्तक है जिसमें फ़ारसी व्याकरणके नियम हैं। मिर्ज़ाने इसे शिक्षा विभाग पंजाबके संचालक मेजर फुलरके अनुरोध पर लिखा था।

नामए ग़ालिब—क़ातेअ बुरहानके समर्थक मिर्ज़ा साहब बुरहान नामक पुस्तिकाके उत्तरमें मिर्ज़ाने यह पुस्तिका लिखी थी। बादमें यह 'ऊदे हिन्दी' में सम्मिलित कर दी गयी।

इसके अतिरिक्त 'तेग़ेतेज़' तथा 'ग़ालिबनामा' (गद्य) दो और छोटी पुस्तकें ग़ालिबकी लिखी हैं। ग़ालिबके पत्रोंमेंसे साहित्यिक पत्र छाँटकर स्व० मिर्ज़ा मुहम्मद अस्करीने १९५४ में कराचीसे 'अदबी ख़ुतूते ग़ालिब' के नामसे प्रकाशित किया है। इसमें ९८ पत्र हैं। ग़ालिबके साहित्य-सम्बन्धी विचार जाननेके लिए यह पुस्तक बड़े कामकी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छोटेसे उर्दू दीवानने ग़ालिबको अमर कर दिया। इस छोटेसे दीवानपर न जाने कितने भाष्य लिखे गये हैं और अब भी लिखे जा रहे हैं। इनमें हसरत मोहानी, तबातबाई, बेख़ुद मोहानी, जोश मलसियानी, अर्श मलसियानी और बाक़रकी टीकाएँ अपेक्षाकृत

अच्छी है। पर इसमें भी कहीं-कहीं इतनी खींचतान है कि कविके काव्यका अर्थ अँधेरेमें पड़ जाता है और टीकाकारोंकी विद्वत्ता ज़रूर सामने आ जाती है। अब भी एक शुद्ध, सरल टीकाकी ज़रूरत बनी हुई है।

पद्यकी भाँति ग़ालिबका उर्दू गद्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। सच पूछिये तो गद्यकारके रूपमें उर्दूके लिए ग़ालिबकी देन उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है जितनी पद्यकार या कविके रूपमें है। कविके रूपमें उनपर पर्याप्त कार्य हुआ है, समीक्षाएँ, टीकाएँ और प्रशंसा-ग्रन्थ लिखे गये हैं परन्तु गद्यकार ग़ालिबपर बहुत कम काम हुआ है। कोई अच्छा और प्रामाणिक समीक्षा-ग्रन्थ मेरी जानकारीमें नहीं निकला है। ग़ालिबके उर्दू पत्रोंकी शैली अनोखी है। इनमें वह लिखते नहीं बल्कि बोलते हैं—जैसे दूरके मित्र शिष्य प्रियजन उनके सामने बैठे हों और वह उनसे बातें कर रहे हों।

ग़ालिबका काव्य . १

विकास रेखा

ग़ालिब उर्दूके सबसे लोकप्रिय कवि हैं। कदाचित् ही किसी दूसरे उर्दू कविकी कविताओंके इतने संग्रह निकले हों या उनपर चर्चा एवं समीक्षा हुई हो। कुछ विरोध करते हैं कुछ प्रशंसाके पुल बाँधते हैं कुछ खड़े तमाशा देखते हैं। कुछ अभिनेता हैं कुछ दर्शक हैं पर सबकी दिलचस्पी यहाँ है। सब कुछ न कुछ कहना चाहते हैं सब कुछ न कुछ सुनना चाहते हैं सब कुछ न कुछ देखना चाहते हैं। उन्हें भूलना उनकी उपेक्षा करना मुश्किल हो गया है।

पर भीड़ सदा भ्रमित करती है। उसमें एक सामूहिक उत्कण्ठा और मनोवृत्ति होती है। उससे तर्क करना कठिन होता है। वह समझने या समझानेके 'मूड' में नहीं होती। विशेषतः दर्शकके लिए किसी समस्याकी तहतक पहुँचना कठिन कर देती है। ग़ालिबपर निकली आलोचनाएँ भी कुछ ऐसी ही हैं। उन्होंने जितना प्रकाश दिया उससे ज्यादा अन्धकार फैलाया जितना सुलझाव नहीं रखा उससे ज्यादा उलझनें पैदा कर दीं। इसमें इतनी भ्रान्तियाँ हैं कि जो समझना चाहता है वह विमूढ़ हो जाता है। आलोचकों या प्रशंसकोंकी भीड़में एक व्यक्ति हैं डा० अब्दुर्रहमान बिजनौरी जिनका कहना है—

इन आलोचनाओंमें प्रकाश उतना नहीं जितना अन्धकार है

'हिन्दुस्तानकी इल्हामी किताबें दो हैं मुक़द्दस वेद और दीवाने ग़ालिब।'*

* मुहासिने कलामे ग़ालिब चतुर्थ संस्करण पृ० ५।

मीरकी दूसरी बात है डा० सय्यद अब्दुल्लतीफ जो कहते हैं—

'उसकी शायरीकी पैदावारमें न तो वह मुहब्बत है जो ईमानआफ्रीं[1] होती है न वह हमआहंगी[2] जो इख़लास[3] से पैदा होती है। एक नये सितारेकी शानमें चमकनेकी आरज़ूमें वह अपने हक़ीक़ी मनसब[4] को भूल बैठा और उस रूहानी तजल्ली[5] को जो बहैसियत शायर उसको अता[6] की गयी थी उसने अपने हाथसे दे दिया। †

इन दो वक्तोंके बीच कुछ और लोग हैं जो 'रामाय स्वस्ति रावणाय स्वस्ति' 'यह भी ठीक है, वह भी ठीक है' कहते रहते हैं। जब यह आलोचनाकी यह स्थिति हो तब निरपेक्ष भावसे ग़ालिबको देखना और उनके सम्बन्धमें निर्णय करना और कठिन हो जाता है।

यह अन्धपूजा !

डा० बिजनौरीने तो दुनियाके सबसे बड़े कवियोंसे ग़ालिबकी तुलना की और उनकी श्रेष्ठताकी घोषणा की है। ग़ालिब एक ग़ज़लगो शायर थे। ग़ज़लका क्षेत्र सीमित है, वह मुक्तकका क्षेत्र है। उसका हर मिसरा स्वतन्त्र होता है। उसमें केवल झाँकियाँ मिलती हैं। पर बिजनौरीने रायेल कर्वेस वर्जिल बेदे रैम्बो मेटर्लिक इमर्सन शेक्सपियर काण्ट हैगेल स्पाइनोज़ा बेकन बर्कले गालेम स्पेंसर, हूर्डेन वर्गसाँ इत्यादिको ग़ालिबकी कतारमें लाकर खड़ा कर दिया है और ग़ालिबकी विशेषताएँ समझानेके स्थानपर अपने विचारों ज्ञानका प्रदर्शन अधिक किया है। उनकी विवेचना और निर्णय-शक्ति भावावेश एवं अन्धनिष्ठाका शिकार हो गयी है। बहरहाल हमें इन अतियोंसे दूर रहकर ग़ालिब और उनके काव्यको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

---

१ जीवनदायक २ समवृत्ति एक-सी भावना एक-सा इरादा ३ सच्ची यथार्थतासे ४ वास्तविक स्थान ५ ईश्वरीय ज्योति ६ प्रदान।

† 'ग़ालिब लाइफ ऐण्ड क्रिटिकल एप्रीसियेशन आफ हिज पोएट्री' (उर्दू संस्करण) अब अलभ्य है।

ग़ालिबके काव्यको ऐतिहासिक विकास-क्रमकी दृष्टिसे चार भागोंमें बाँटा जा सकता है —

१ प्रारम्भिक : १८२१ तक (१८११-२१ ई.)। भूपालवाली प्रतिमें सुरक्षित है। इस काव्यका बहुत सा अंश ग़ालिबने अपने दीवानका संपादन-संकलन करते समय निकाल दिया था।

२ मध्यकालिक : १८२१ से १८३२ ई. तक। भूपालकी प्रतिके हाशियेपर मिलता है।

३ प्रौढ़ : १८३३ से १८५५ तक जो भूपाली प्रतिमें नहीं है किन्तु रामपुरवाली प्रतिमें है।

४ उत्तरकालिक १८५५ से १८६९ तक।

२. प्रारम्भिक काव्य

प्रारम्भिक एवं मध्यकालिक जीवनमें कविपर फ़ारसीका नशा इतना प्रबल था कि वह उर्दूमें शेर कहनेको अपमानका कारण मानते थे। एक क़ितेमें कहा भी है —

> फ़ारसीबीं ता बबीनी नक़्शहाए-रंग-रंग,
> बुगुज़र अज़ मजमूअए उर्दू कि बेरंग मन अस्त।

पर वास्तव तो यह है कि शेरगोई पहिले उर्दूमें ही शुरू की * और उसी उर्दू काव्यके कारण उर्दू साहित्यमें अमर हो गये।

जो हो फ़ारसीयत उनके ख़ूनमें मिली हुई थी। स्वाभाविक था कि

---

* '[illegible] बार बार [illegible] सिर्फ़ [illegible] उर्दू [illegible]।"

—गुलेराना

"इब्तिदाई फ़िक्रे सुख़न में — रेख़्ता लिखता था।"

—ग़ालिबके ख़त में।

पूर्वार्द्ध काव्यमें विशेषतः किशोरावस्थामें जब दिल दिमागके ऊपर छा जाता है और मानव भावावेगके आकाशमें उड़ता रहता है, उसपर इस वातावरणका अधिक प्रभाव पड़ता। हम देखते हैं कि इनके प्रारम्भिक काव्यपर 'बेदिल' का प्रभाव अत्यधिक है। बेदिलकी शायरी दिमागी जोड़-तोड़की शायरी है जिसमें सच्ची भावनाका शृंगार नहीं करते नटों-सी कलाबाजी दिखलाते हैं। इसी तरहके शेरोंको देखकर मीरतक़ीने भविष्यवाणी की थी कि 'इस लड़केको अगर कोई कामिल उस्ताद मिल गया और उसने इसे सीधे रास्तेपर डाल दिया तो लाजवाब शायर बन जायगा वर्ना मुहमिल बकने लगेगा।

बेदिलका प्रभाव

इस युगका काव्य फ़ारसी तर्कीबोंसे भरा हुआ है। भाषा क्लिष्ट है, भावानुभूतिके स्थानपर कल्पनाकी उड़ान है, काव्य-सौन्दर्य बहुत कम है। स्वाभाविकता नहीं कृत्रिमता बहुत अधिक है। कोई नई बात कहने नये ढंगपर कहने और घुमा-फिराकर असामान्य ढंगसे कहनेको ही काव्य समझते थे। इसीलिए इनपर आक्षेप भी होते थे पर यह 'बेदिल' पर इस तरह रीझे हुए थे कि उसके अनुकरणको बहुत बड़ी बात समझते थे —

कृत्रिमताका आधिक्य

तर्ज़े बेदिलमें रेख़्ता कहना
असद उल्लाह ख़ाँ क़यामत है।

दूसरोंके आक्षेपसे चिढ़ते थे पर कभी-कभी अनुभव भी करते थे कि मैं जो लिखता हूँ वह बहुत अच्छा नहीं है। एक मुक्तक लिखा जिसका मतलब था —

क़तरए मय बस कि हैरत से नफ़स परवर हुआ
ख़त्ते जामे मय सरासर रिश्तए-गौहर हुआ।

आक्षेप हुआ। जवाब देते हुए लिखते हैं — इस मतलअमें ख़याल

म तूफ़ाँ गाहे जोशे इज़्तराबे शाम तनहाई,[1]
शुआए आफ़्ताबे सुब्हे महशर तारे बिस्तर है।[2]
अभी आती है बू बालिशसे[3] उसकी ज़ुल्फ़े मुश्कींकी[4],
हमारी दीदको ख़्वाबे ज़ुलेख़ा आरे बिस्तर है।[5]

फ़ारसीपनसे भरी हुई भाषाके इन नमूनोंमें भावका चमत्कार भी कहीं नहीं मिलता। दिमाग़ खुर्चकर और खींच-तानकर अर्थ निकालना पड़ता है। जहाँ सरल भाषा है, वहाँ भी कल्पना कमाल नहीं पा एवं तुकबन्दी मात्र बनकर रह गया है, उसमें शब्दोंका जोड़-तोड़ है पर अर्थ या भावका सौन्दर्य नहीं जैसे एक बेजान खूबसूरत लाश हो—

खूबसूरत लाशजैसी कविता

पाँवोंमें जब वह हिना[6] बाँधते हैं,
मेरे हाथोंको जुदा बाँधते हैं।

× ×

शायद कि मर गया तेरा रुख़सार[7] देखकर
पैमाना रात माहका लबरेज़े नूर[8] था।

---

१ मैं अपनी एकान्त सन्ध्या (शामे तनहाई) में इतना बेक़रार हूँ कि मेरी बेचैनीके जोशसे एक तूफ़ान उठ रहा है, २ मुझे अपने बिस्तरका हर तार प्रलय-प्रभातके सूर्यकी किरणके समान लगता है, ३ तकिया ४ सुगन्धित अलकोंकी ५. हमारी आँखोंके लिए ज़ुलेख़ाका स्वप्न (जिसमें उसने यूसुफ़के दर्शन किये थे) कल्पना और ईर्ष्याकी वस्तु है (ज़ुलेख़ाकी तरह स्वप्न-दर्शनको हम और हमारा बिस्तर अच्छा नहीं समझता।) ६ मेंहदी ७ कपोल ८. ज्योतिसे परिपूर्ण।

इस ज़मानेका अधिकांश काव्य काल्पनिक है, उसमें एक दिमाग़ी कसरत है। यह एक ऐसा जंगल है जिसमें झाड़ियाँ बेतरह बढ़ी हुई हैं कोई क्रम व्यवस्था या सजावट नहीं। उलझनें हैं और उलझनें हैं। पर ऐसा भी नहीं कि इस कालका समस्त काव्य नीरस और सौन्दर्यहीन हो। इस जंगलमें भी ऐसे फूल हैं जिनकी सुगन्ध मन-प्राणमें बस जाती है। इसमें भी ऐसे शेर हैं जो अनुभूति भावना अर्थ एवं काव्यके अन्य गुणोंसे पूर्ण हैं विशेषतः वे जो इस अवधिके अन्तिम दिनों २४ वर्षकी आयुके आस-पास (१८१९-२१ ई०) लिखे गये। उदाहरणके तौरपर हम यहाँ उनके कुछ शेर देते हैं जिनमें उनकी प्रतिभा और भावी सफलताकी स्पष्ट झलक है। कविको प्रिय होनेके कारण ये शेर बादके दीवानमें भी रख लिये गये हैं।

इस जंगलमें प्राणोन्मादक फूल भी हैं

आहको चाहिए एक उम्र असर होने तक,
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़के सर होने तक।
आशिक़ी सब्रतलब और तमन्ना बेताब,
दिलका क्या रंग करूँ ख़ूने जिगर होने तक।
हमने माना कि तग़ाफ़ुल[1] न करोगे लेकिन
ख़ाक हो जायेंगे हम तुमको ख़बर होने तक।

× ×

जब तक दहाने ज़ख़्म[2] न पैदा करे कोई,
मुश्किल कि तुमसे राहे सख़ुन वा[3] करे कोई।

---

१ उपेक्षा २ घावका मुँह ३ बोलनेका मार्ग।

नाकामिए निगाह है बर्क़े नज़ारसोज़,[1]
तू वह नहीं कि तुझको तमाशा करे कोई।
सरसर हुई न पाइए सब्रआज़मा[2] से उम्र,
फ़ुर्सत कहाँ कि तेरी तमन्ना करे कोई।
हुस्ने फ़रोग़[3] शमए-सखुन[4] दूर है 'असद',
पहले दिले गुदाख़्त[5] पैदा करे कोई।

× ×

आइना क्यों न दूँ कि तमाशा कहें जिसे,
ऐसा कहाँ से लाऊँ कि तुझसा कहें जिसे।
फूँका है किसने गोशे-मुहब्बतमें ऐ ख़ुदा,
अफ़सूने इन्तज़ार[6] तमन्ना कहें जिसे।
सरपर हुजूमे दर्दे ग़रीबीसे डालिए,
वह एक मुश्ते ख़ाक कि सेहरा कहें जिसे।
दरकार है शिगुफ़्तने गुल्हाए ऐशको,
सुबहे बहार पंबए मीना[7] कहें जिसे।
ग़ालिब बुरा न मान जो वाइज़ बुरा कहे,
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे।

इसी युगमें उन्होंने यह शोक-गीत भी लिखा था जिसमें उनका दिल टुकड़े-टुकड़े होकर बहा है जिसमें अपने यौवनकी बाबत राय [illegible]

---

१ दर्शनको जलानेवाली बिजली २ धीरजको हिलानेवाला वायु ३ प्रकाशपूर्ण सौन्दर्य ४ वाणी-दीप ५ द्रवित हृदय ६ प्रतीक्षाका जादू, ७ प्यालेके मीनेपर लगी रुई या डाट।

और अभिलाषाके चिता-भस्मपर बैठकर वह रोते हैं और जो उनके काव्यमें अमर हो गया है —

दर्दसे मेरे है तुझको बेक़रारी हाय हाय,
क्या हुई ज़ालिम तेरी ग़फ़लतशिआरी हाय हाय।
ज़हर लगती है मुझे आबो हवाए ज़िन्दगी,
यानी तुझसे थी उसे नासाज़गारी हाय हाय।
किस तरह काटे कोई शबहाय तारे बरशकाल[1]
है नज़र[2] ख़ूकर्दए[3] अख़्तरशुमारी[4] हाय हाय।
गोश[5] महजूरे-पयाम[6] वा चश्म[7] महरूमे जमाल[8]
एक दिल तिसपर यह नाउम्मीदवारी हाय हाय।

ग़ालिबके इस दौरके कलाममें उपमाओं और रूपकोंकी भरमार है। कितनी ही ग़ज़लें ऐसी हैं जिनके द्वितीय मिसरे उदाहरण एवं उपमासे पूर्ण हैं। इनमें ग़ालिबकी कोशिश यह रहती है कि उपमाएँ नई-नई हों और हो सके तो विषय—मज़मून—भी नये हों। देखिये —

सरापा रेहने इश्क़ वा नागुज़ीरे[10] उल्फ़ते हस्ती[11]
इबादत[12] बर्क़[13] की करता हूँ और अफ़सोस हासिलका[14]।

× ×

थी वतनमें शान क्या ग़ालिब कि हो ग़ुर्बतमें क़द्र,
बेतकल्लुफ़ हूँ वह मुश्ते ख़ाक कि गुलख़न[15] में नहीं।

---

१ बरसातकी अँधेरी रातें २ दृष्टि आँखें ३ अभ्यस्त ४ तारे गिनना ५ कान ६ सन्देशसे हीन ७ आँख ८ दर्शनहीन ९ आपाद मस्तक १० अनिवार्य जिससे छुटकारा न हो ११ जीवनमय मायाका मोह, १२ उपासना १३ विद्युत्, १४ परिणाम १५ भट्ठी।

पहिले शेरमें कहते हैं कि सिरसे पाँवतक आपादमस्तक प्रेमम रहन-सिरकी—हूँ और उधर अपने प्राणको प्रिय समझनेपर भी मजबूर हूँ। विद्युत्की उपासना करता हूँ और खलिहानके जल जानेका शोक भी है। (प्रेमको विद्युत् और प्राणको अन्नभण्डार या खलिहान कहा है।)

दूसरे शेरमें कहते हैं कि कदाचन ही मेरी क्या शान थी कि परदेशमें सम्मान हो। मैं वह मुट्ठी भर घास हूँ जो भट्ठीमें पड़ तो वह उसे जला दे और भट्ठीसे बाहर (परदेश) जाय तो वहाँ उसे कोई न पूछे।

भावीकी झलक

इन बातोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि बचपनमें उनपर बेदिल शायब इत्यादिका रंग जमा हुआ था और कलाममें बड़ी दुर्बोधता एवं कृत्रिमता थी पर उनमें जन्मजात प्रतिभा भी थी और किशोरावस्थाकी ड्योढ़ी पार करते-करते वह सँभलने लग गये थे तथा बीस सालकी उम्रके बाद कलाममें सफाई और स्वाभाविक सुघड़ता आने लगी थी। इसी जमानेके दो शेर हैं, जिनके पीछे उनकी भावी श्रेष्ठता और ऊपर उठनेके लिए संघर्ष करती हुई प्रतिभाके दर्शन होते हैं —

रात के वक़्त मय पिये साथ रक़ीब[1] को लिये
आये वह याँ खुदा करे पर न खुदा करे कि यों।
मैंने कहा कि बज़्मे नाज़[2] चाहिए ग़ैर से तिही[3],
सुन के सितमज़रीफ़[4] ने मुझको उठा दिया कि यों।

२. मध्य युगका काव्य

इसमें उस दूसरे उत्थानकालके श्रेष्ठ काव्यकी झलक है जिसने उर्दू साहित्यके इतिहासमें गालिबको अमर कर दिया है। यह दूसरा युग १८२१

---

१ प्रतिस्पर्धी २ प्रेमिकाकी गोष्ठी ३ रिक्त शून्य ४ हँसी-हँसीमें अत्याचार करनेवाला।

मुझसे क्या पूछते हो कि तुम्हारे पीछे तुम्हारे विरहमें मेरा क्या हाल होता है, यह देखो कि मेरे सामने तुम्हारा क्या रंग होता है। (तुम मेरे सामने कितने परेशान हो जाते हो? अपनी इस परेशानीसे ही तुम अपने वियोगमें मेरी हालतका अन्दाज़ कर सकते हो।)

> देखना तक़रीरकी लज़्ज़त[1] कि जो उसने कहा,
> मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिलमें है।

अर्थ स्पष्ट है।

संशोधनकी कलाका निखार

इसी कालके उत्तरार्द्धमें मिर्ज़ाने 'दीवाने ग़ालिब'का सम्पादन किया था और उसमें पहिले लिखे हुए शेरोंमें जो परिवर्तन तथा संशोधन उन्होंने किये हैं उनसे पता चलता है कि न केवल उनकी कल्पना अनुभूति तथा अभिव्यक्ति अधिकाधिक सशक्त होती जा रही थी वरं काव्य-शिल्प भी अधिकाधिक उभरता और निखरता जा रहा था। कुछ उदाहरण लीजिए। पहिले उन्होंने लिखा था—

> गर निगाहे गर्म फ़र्माती रही ता'लीमेज़ब्त[2],
> शो'ला ख़समें जैसे ख़ूँ रग में निहाँ[3] हो जायगा।

अब इसे यों कर दिया—

> गर निगाहे गर्म फ़र्माती रही ता'लीमे ज़ब्त,
> शो'ला ख़समें जैसे ख़ूँ रगमें निहाँ हो जायगा।

पहिले लिखा था—

> इशरत ईजाद प बूए गुला दूदे चिराग़,
> जो तेरी बज़्मसे निकला सो परीशाँ निकला।

---

१ वाणीका स्वाद २ संयमकी शिक्षा ३ प्रच्छन्न।

अब यों कर दिया—

दूदे गुल[1], नाल-ए दिल[2] दूदे चिराग़े महफ़िल[3],
जो तेरी बज़्मसे निकला सो परीशाँ[4] निकला।

कहीं-कहीं पहिले लिखे हुए शेरोंमें एकाध शब्द ऐसे बदल दिये कि ज़मीन ही बदल गयी और नया मज़मून निकल आया। जैसे पहिले लिखा था—

नहीं बन्दे ज़ुलेख़ा बेतक़ल्लुफ़ माहे कनआँ[6] पर,
सफ़ेदी दीदए याक़ूब[7]की फिरती है ज़िन्दाँपर।

अब यों कर दिया—

न छोड़ी हज़रते यूसुफ़ने याँ भी ख़ाना आराई,
सफ़ेदी दीदए याक़ूबकी फिरती है ज़िन्दाँपर।

पहिलेकी उपमाओं रूपकों या तश्बीहोंमें शब्दोंकी जोड़तोड़को ऐसा बदल दिया है कि वे चमक उठी हैं और एक नई दुनिया जैसे व्यक्त हो गयी है। जैसे पहिलेका शेर था—

आता है दाग़े हसरते दिलका[8] शुमार याद,
मुझसे हिसाबे बेगुनही ए ख़ुदा न माँग।

इसमें 'दाग़े हसरते दिल'के स्थानपर 'बेगुनही' शब्दका जोड़ ठीक था किन्तु इसके कारण अर्थ-अभिव्यक्तिमें दुरूहता आ गयी थी इसलिए ग़ालिबने थोड़ा-सा बदल दिया और शेर ज़मीनसे आसमानपर पहुँच गया—

---

१ पुष्पगन्ध २. हृदयका रुदन ३ महफ़िलके दीपकका धुआँ ४ सभा ५. बिखरा हुआ अस्तव्यस्त ६ पैग़म्बरआलमका चाँद (यूसुफ़) ७ यूसुफ़के पिता जो उनके विरहमें अन्धे हो गये थे ८. हृदयकी कामनाओंके धब्बे ९. मबदा।

आता है दाग़े हसरते दिलका शुमार याद,
मुझसे मेरे गुनहका हिसाब ऐ ख़ुदा न माँग।

३. प्रौढ़ युगका काव्य

तीसरे दौर (१८३३–५५) में मिर्ज़ाने उर्दूकी अपेक्षा फ़ारसीकी ओर ज़्यादा ध्यान दिया। इस ज़मानेकी अधिकतम फ़ारसी ग़ज़लें 'गुले रा'ना'में एकत्र हैं। ज़्यादातर ग़ज़लें १८४७के पहिलेकी हैं। कुछ १८४८ तथा १८४९के बीच लिखी गयी हैं। समय-समयपर उर्दू ग़ज़लें भी लिखते थे पर कम। १८५०के बाद बादशाह बहादुरशाहसे उनके सम्बन्ध अच्छे हो गये तब उनके लिए फिर उर्दूमें लिखने लगे। इस ज़मानेका कलाम थोड़ा है किन्तु उसमें ग़ालिबका शिल्प और सौन्दर्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। शाही दरबारसे सम्बन्ध होनेके कारण भी इसमें भाषाकी सादगी मुहाविरोंका प्रयोग रोज़मर्रेका ग्रहण बढ़ गया है क्योंकि दरबार पर शाह नसीर और ज़ौक़ का रंग चढ़ा हुआ था। इस ग्रहणके कारण कहीं-कहीं स्तर गिर भी गया है। जैसे—

शिल्प और सौन्दर्यकी पराकाष्ठा

वाइज़[1]! न तुम पियो न किसीको पिला सको
क्या बात है तुम्हारी शराबे तहूर[2]की।

× ×

दर्दे मिन्नतकश[3] दवा न हुआ,
मैं न अच्छा हुआ बुरा न हुआ।

× ×

---

१ धर्मोपदेशक २ स्वर्गीय मदिरा ३ आभारकी प्रत्याशी।

ग़म खानेमें बोदा दिले नाकाम बहुत है,
यह रंज कि कम है मये-गुलफ़ाम[1] बहुत है।

पर ऐसे शेर ग़ालिबमें कम हैं। अछूते मज़मून और अभिव्यंजनाके ख़ास अन्दाज़वाले एकसे एक शेर मिलते हैं। जैसे—

बस कि मुश्किल है हर एक कामका आसाँ होना,
आदमीको भी मयस्सर[2] नहीं इंसाँ होना।

या—

हविस[3] को है निशाते-कार[4] क्या क्या
न हो मरना तो जीनेका मज़ा क्या?

× ×

यह न थी हमारी क़िस्मत कि विसाले यार[5] होता,
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार[6] होता।

× ×

दिल ही तो है न संगो-ख़िश्त[7] दर्दसे भर न आये क्यों?
रोयेंगे हम हज़ार बार कोई हमें सताये क्यों?

नीचेका शेर देखिए। छोटी कायामें एक-एक दुनिया आबाद है—

मुनहसिर[8] मरने पे हो जिसकी उमीद
नाउमेदी उसकी देखा चाहिए।

× ×

---

१ पुष्पाभमना २ प्राप्त ३ कामना वासना ४ कामकी उमंग ५ प्रिय-मिलन ६ प्रतीक्षा ७ पत्थर-ईंट ८ निर्भर।

दैर[1] नहीं, हरम[2] नहीं दर[3] नहीं, आस्ताँ[4] नहीं,
बैठे हैं रहगुज़र[5] पे हम ग़ैर हमें उठाये क्यों ?

× ×

जब मैकदा[6] छुटा तो फिर अब क्या जगहकी क़ैद
मस्जिद हो मदरसा हो, कोई ख़ानक़ाह[7] हो।

× ×

वफ़ादारी बशर्ते उस्तवारी अस्ले ईमाँ है,
मरे बुतख़ानेमें तो काबेमें गाड़ो बिरहमनको।

४. उत्तरकालिक काव्य

चौथा और अन्तिम युग जिसका आरम्भ ग़दरकी भूमिकासे और अन्त ग़ालिबकी मृत्युसे होता है, बहुत उपजाऊ नहीं। चूँकि ग़दरके बाद दिल्ली की बादशाहत ख़त्म हो गयी और एक ओर दिन-दिन गिरते हुए स्वास्थ्य तथा दूसरी ओर बढ़ती जानेवाली आर्थिक कठिनाइयोंके कारण ग़ालिबमें काव्यकी उमंग भी घिरती गयी इसलिए बहुत कम लिखा है। जो लिखा भी वह अधिकांश फ़ारसीमें लिखा या फिर पत्रोंके रूपमें गद्यमें जो उर्दू साहित्यके अभिमानकी वस्तु है।

१८५५ के बाद उनकी मानसिक स्थिति ख़राब होती गयी। १८५७–५८ में वह अन्दरसे इतने टूटे हुए थे कि शायद लिखनेकी ओर तबीयत ही न होती थी। एक पत्रमें स्वयं लिखते हैं—

---

१ मन्दिर २ काबा खुदाका घर, ३ द्वार ४ ड्योढ़ी निवास स्थान ५ आम रास्ते ६ मधुशाला ७ फ़कीरों एवं साधुओंके रहनेकी जगह आश्रम।

"...मियाँ तुम्हारी जानकी क़सम न मेरा अब रेख़्ता लिखनेको जी चाहता है, न मुझसे कहा जाय। इस दो बरसमें सिर्फ़ वह पचीस शेर क़सीदा, क़सीदा तुम्हारी ख़ातिरसे लिख भेजे थे। सिवाय इसके अगर कोई रेख़्ता कहा होगा तो गुनहगार बल्कि फ़ारसी ग़ज़ल भी वल्लाह नहीं लिखी।...क्या कहूँ कि दिलोदिमाग़का क्या हाल है?"

अब न वह जवानी थी जो प्रत्येक रूपसीमें स्वर्गका चित्र देखती है और जिसम चाहक काँटे भी फूल हो जाते हैं न वे उमंगें थे वलवले थे जो जमीनसे उठते हैं पर आकाशमें जीते और पुष्ट होते हैं। तब है—

था वह इक शख़्सके तसव्वुरसे,
अब वह रा'नाइए ख़याल कहाँ !

१८५९से १८६१ तक कुछ निश्चिन्तता आई थी किन्तु उसके बाद जो बीमारी शुरू हुई वह जानलेवा बन गयी। सच पूछें तो इनके तीसरे दौरके काव्यमें जो ताज़गी जो चित्र जो उच्च कल्पना तथा अनुभूतिका संगम है वह फिर दिखाई न दिया। काव्य-सौन्दर्यकी दृष्टिसे दूसरे तथा तीसरे युगकी कविताएँ श्रेष्ठ हैं।

ग़ालिबका काव्य २

लोकप्रियताका रहस्य

उर्दू काव्यमें एकसे एक कवि हुए हैं। मीरकी गहराई, सौदाकी उत्-कटता, नासिखकी संस्कारनिष्ठ भाषा और दर्दकी आध्यात्मिक दृष्टि, इंशाकी विविध व्यंजना, मोमिनकी आर्द्रता, ज़ौक़की नीति-प्रधानताका लाभ काव्य-प्रेमियोंको मिला है पर यह एक करिश्मा-सा मालूम पड़ता है कि लोक-मानसमें जो जगह गालिबको मिल गयी है वह किसीको नहीं मिली। आप उनकी प्रशंसा करें या विरोध पर आप उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। खुद गालिबने कभी न ख्याल किया होगा कि जीवनभर अपने जिस उर्दू-काव्यको अपने फ़ारसी काव्यके आगे वह तुच्छ समझते थे वही आगे इतना लोकप्रिय होगा और उन्हें उर्दू कवियोंमें शीर्षस्थानपर बिठानेका कारण होगा।

उर्दू का सबसे जिन्दा शाइर

गालिब न केवल उर्दूके सबसे लोकप्रिय कवि हैं किन्तु सबसे अधिक जिन्दा शाइर भी हैं। उनकी मृत्युको लगभग १ वर्ष हो गये हैं किन्तु आज भी वह उर्दू कविताके प्रत्येक पाठकके हृदय और मनपर उसी प्रकार छाये हुए हैं। वह एक नये युग एक नई परम्पराके जनक हैं। उनकी शाइरीमें कुछ ऐसी बात है जो पुरानी होकर भी नई-सी लगती है; एक ऐसी वाणी जिसे हमने किसी-न-किसी रूपमें पहिले भी और आज भी बार-बार सुना है फिर भी ऐसा जान पड़ता है जैसे वह क्षितिजपर घूमने

बेहद दिलचस्प है। उसमें अनुभूतिकी गहराइयाँ हैं तो कल्पनाकी उड़ान भी है, बल्कि कल्पनाका कुछ ऐसा रंग है कि वह खुद अनुभूतिकी सतह पर उठ जाती है। उसमें चिन्तनशीलता भी है, पर वह व्यंजनाके सौन्दर्यमें छिपी हुई है। डा. अब्दुर्रहमान बिजनौरीने भावावेशमें ग़ालिबको महामानवका रूप दिया है और न जाने क्या-क्या बना दिया है पर एक बात उन्होंने बिल्कुल ठीक लिखी है कि उनके काव्यमें प्रत्येक पाठक-वर्गकी दिलचस्पीका सामान है। वह लिखते हैं—

'बिस्म'[1] से तम्मत[2] तक मुश्किलसे सौ सफ़े[3] हैं। लेकिन क्या है जो यहाँ हाज़िर नहीं, कौन-सा नग़मा है जो इस जिन्दगीके तारोंमें बेदार[4] या ख़्वाबीदा[5] मौजूद नहीं है। *

काव्यकी अनेक परम्पराएँ, अनेक सम्प्रदाय हैं। कोई काव्यमें भावको, कोई व्यंजनाको कोई अलंकरणको कोई ध्वनिको प्रधान मानता है पर

अनेक रूपता

ग़ालिबका काव्य इनमेंसे किसी एक परम्परा एक सम्प्रदायमें समाप्त होकर रह नहीं जाता वह जीवनका चित्रण है और जिन्दगी किसी एक दिशा, एक परम्परा एक ढंग, एक देशमें सीमित नहीं। उसमें इतनी विविधता है कि अनेक बार वह स्वयं अपनेको ही काट देती है, एक रूप खींचती है और दूसरी जगह उसे ही मिटा देती है। यहाँ वह अनेक रूप-रूपायें हैं। यह भी सत्य है, वह भी सत्य है। इसीलिए हर आदमीको उसमें अपनी तस्वीर मिल जाती है, पूरी नहीं तो उसकी स्फुट रेखाएँ, या चेहरा जो छिप गया है, दिल जो नष्ट होकर भी धड़कता है, या आँखें जो प्रतीक्षा थककर रह गयी हैं या हाव-भाव जो सकतेमें हैं पर जिनमें एक व्यक्तिकी

---

१ आरम्भ २ अन्त ३ पृष्ठ ४ जागरित ५. स्वप्नावस्थित।

*मुहासिन कलामे ग़ालिब। डा. बिजनौरी पृ. १।

जोश भव भी है। 'इस शाख़में बेशुमार नग़मे हैं और हर नग़मा दिलावेज़[1] है।' †

ग़ालिबने दुनिया देखी थी उसके हर पहलूका मज़ा लिया था। रईसोंमें रईस थे फ़राख़ियोंमें फ़राख़ी थे जुआरियोंमें जुआरी जवानोंमें जवान बूढ़ोंमें बूढ़े, कवियोंमें कवि विचारकोंमें विचारक। उनके काव्यमें यह अनेकता है। उसमें उनके लिए पर्याप्त सामग्री है जो चुलबुलापन शोख़ी और विनोद चाहते हैं, उनको भी सन्तोष है जो तसव्वुफ़ और गहराईके प्रेमी हैं उनकी तृप्तिके लिए बहुत कुछ है जो हुस्नो इश्क़की नैरंगियोंके दिलदादा हैं और उनके लिए भी कम सामग्री नहीं जो वेदना और करुणाके उपासक हैं। हर प्रकारके पाठकको इसमें कुछ न कुछ मिल ही जाता है।

अनेक शैलियाँ

शैलीकी दृष्टिसे भी उनमें कई कई शैलियाँ मिलती हैं। एक ओर फ़ारसीकी उच्च संस्कृतिसे लदी भाषा है तो दूसरी ओर ठेठ बोलचालकी ज़बान है, कहीं बेदिलका रंग है कहीं उर्फ़ीका तो कहीं 'मीर' का है। कहीं अर्थोंमें अजीब लपेट और घुमाव है तो कहीं इतनी सरलता है मानो ज़बान नहीं दिल बोल रहा हो। कहीं इतनी बनावट, इतना शृंगार है कि आँखें नहीं ठहरतीं कहीं यह सादगी है कि अल्ला रे अल्ला! कहीं बातमें निनाद है; लय है, वीणा है बाजे हैं उसकी मज़बूत सिसकियाँ हैं उसकी चीख़-चीख़ कराहें हैं चौपायोंकी हैरत है तूफ़ानका हुजूम है कड़कें हैं कहीं इतनी तन्हाई है कि अपनी आवाज़ भी गुम हो गयी है, गला जकड़कर चुप हो चुकी है विरहकी वेदना केवल मौनमें बोलती है, सब कुछ खो गया है जानका एहसास भी। मजबूरियाँ हैं और मजबूरियाँ। कहीं यह दर्द है कि नासेह दरवाज़ा भी स्वागतके लिए खुला न हो तो फेर जावे

१ चित्ताकर्षक।

†ग़ालिबनामा मुहम्मद इकराम पृ० २३१।

है और कहीं यह गुण्डागर्दी है कि माशूक़का आँचल खींचनेके हौसले हैं। कहीं यह गहराई है कि इश्क़ अभिरुचि और आचरण बन जाता है तब माशूक़का हुस्न विश्व-सौन्दर्यमें परिणत हो जाता है, कहीं यह रंगरलस है कि मांसके चीत्कारसे देहका एक-एक अणु कम्पित है। कहीं यह सौन्दर्य है कि आँखोंको शान्ति और दिलको तस्कीन देता है, उच्च प्रेरणाएँ उत्पन्न करता है, कहीं यह उत्तेजना है कि जिसमें एक आग लग जाती है और आँखोंमें वासनाके शत-शत दीप जल उठते हैं दीप जिनसे रोशनी नहीं मिलती आगकी लपटें निकलती हैं लपटें जिनमें पशुका पैशाचिक आनन्द है। कहीं पनघट मंजिलकी हसरत बनकर रह गयी है तो कहीं साक्षात पद-चापसे राहका चप्पा-चप्पा मुखरित है ऐसा कि जिसमें चलना ही सत्य है चलना ही जीवन है, चलना ही सौन्दर्य है।

गहरी मानवीय अपील

दूसरी बात जिसके कारण ग़ालिबको इतनी लोकप्रियता प्राप्त हो रही है उसकी गहरी मानवी अपील है। आजका युग देवताओंका युग *नहीं है, आजका युग अवतारवादका युग नहीं है।* आजका युग मानवका युग है, आजका युग कर्मका युग है, आजका युग भोगका युग है। इस युगका देवता अभी तक नहीं पाया और जबतक यह अवस्था नहीं इंसान ही इस युगका देवता है। आदर्शकी कड़ियाँ टूट रही हैं सपने बिखर रहे हैं। मन और प्राणमें यह सवाल या ख़याल नहीं है कि मानवीमें भी देवीको खोज ले, इंसान क्या पत्थरमें भी देवताकी पूजा कर ले। आकाशमें हम उड़ने जरूर लगे हैं पर हमारा मन ज़मीनसे बँध गया है यहाँ हमारा शरीर ही सबकुछ है, अन्तरिक्षकी यात्राएँ होने लगी हैं परन्तु यहाँ रहते हुए भी हम मिट्टीकी ठोस शारीरिकतामें बँधे हुए रहते हैं। आजका इंसान धरतीपर जमा है वह धरतीका रस लेकर पलता है और धरतीका ही समस्त रस लेना चाहता है। इसलिए आजके काव्यके पाठकमें इसी धरतीके रसकी कामना अधिक है।

ग़ालिब हमें यहीं धरतीका रस देता है। वह इसी दुनियाके सौन्दर्यका कवि है। वह जब प्रेम देता है तो उस प्रेममें यौवनकी कामनाएँ मुखर होती हैं, कामनाएँ जो केवल प्राणोंकी अनुभूति नहीं इन्द्रियोंका भी भोजन हैं। वह जब सौन्दर्यकी छवि अंकित करता है तो उसमें वह लोच वह जादू होता है जो स्पर्श एवं आलिंगनकी भुजाओंमें बाँधनेको आतुर है। ग़ालिब अतीन्द्रिय स्वप्निल गूढ़ और रहस्यमय प्रेम एवं सौन्दर्यके स्थान-पर नयनाभिराम इन्द्रियगम्य सरल और जीवन्त प्रेम एवं सौन्दर्यके चित्र देता है, जिनमें खूनकी गर्मी और गति तथा जीवनकी धड़कनें होती हैं। वह हमारे मन-प्राणको स्वप्न-मुग्ध करके दूर, इस जगत्के पार किसी ऐसे लोकमें नहीं ले जाता जहाँ बुद्धिकी गति नहीं और जिसे न हम देख सकते न छू सकते हैं केवल सूक्ष्म और पकड़में न आनेवाली अनुभूतियोंकी झलक मात्र पा सकते हैं। वह इसी वसुधापर मनोरम और पकड़में आनेवाले सौन्दर्यकी सृष्टि करता है। यों भी कह सकते हैं कि वह धरतीको उठाकर स्वर्गमें नहीं ले जाता बल्कि स्वर्गको अपने दृढ़ पंजोंसे खींचकर धरतीपर उतार लाता है।

इसीलिए ग़ालिबके काव्यमें मानवकी पकड़ है, उस पारके सौ-सौ स्वर्ग इस धरतीपर निछावर हैं। उसका गान यहींका गान है, उसकी खुशी यहींकी खुशी है, उसका रोदन यहींका रोदन है। वह उस शराबकी बात नहीं करता जिसका स्वाद खुद उसके प्रचारकको भी नहीं मिल पाया[1] वह उस शराबकी बात करता है जो इसी जगत्में प्राप्त है।[2] वह उस जामेजमकी कामना नहीं करता जिसका मिलना भी संदेहास्पद है, वह

१ वाइज़ न तुम पियो न किसीको पिला सको
क्या बात है तुम्हारे शराबे तहूरकी।

२. साक़िया है बादः जिसके हाथमें जाम आ गया,
सब लकीरें हाथकी गोया रगे जाँ हो गयीं।

मिट्टीके मामपर ही मोहित है।[1] वह नहीं किसी मुश्कबूसम साकीको देखना चाहता है, स्वर्गकी परियोंका नहीं।[2] वह उसीको पानेकी उत्कण्ठा रखता[3] है। स्वभावतः मानवकी वस्तुवादी दुनियामें यह दृष्टिकोण अधिक प्रिय है।

फिर उर्दूके पुराने कवियोंमें ग़ालिब ही पहिला कवि है जिसमें मानवकी दुनियाका मानसिक द्वन्द्व दिखाई पड़ता है, जिसमें पुराने विश्वासों तथा पौराणिक परम्पराओंके प्रति गहरे व्यंगका स्वर है। वही है जिसने स्वर्गकी बार-बार हँसी उड़ाई है, उसके अस्तित्वपर शंका की है, और खुदाको भी इसकी बातोंपर खीज आया है।

इन कारणोंसे ही उसकी [illegible] पकड़ इतनी स्पष्ट है। इन्हीं कारणोंसे वह इतना लोकप्रिय है।

०

---

१ और बाज़ारसे ले आये अगर टूट गया
जामे जमसे तो मेरा जामे सिफ़ाल अच्छा है।

२ आते हैं फिर किसीको लबे बाम पर हवस
जुल्फ़े सियाह रुख़ पै परीशां किये हुए।

३ उम्र उसकी है दिमाग़ उसका है रातें उसकी हैं,
तेरी जुल्फ़ें जिसके बाजूपर परीशां हो गयीं।

ग़ालिबका काव्य ३

प्रेम और सौन्दर्य

प्रेम जीवनका तत्त्व है। जीवन उसी ज्योति-पुंजकी किरण-माला है। इन किरणोंमें इसीके कारण आकर्षण है। यही है जिसपर अपनेको शून्य कर अपनेको निछावरकर वह सार्थक हो जाता है। जीवन इसीसे है, इसीमें है और इसीके लिए है। मानवकी समस्त अभिव्यक्तियोंमें यही बोलता है, मौनमें भी और वाणीमें भी। स्वभावतः विश्व-काव्यपर इस प्रेमकी गहरी छाप है। संसार का सर्वोत्तम काव्य प्रेम-काव्य ही है। कविकी वृत्ति संस्कार, बुद्धिभेद सामर्थ्यके अनुसार प्रेमके विविध रूप और विविध शैलियाँ उसमें व्यक्त हुई हैं। प्रत्येक जातिका हृदय उसके साहित्यमें समन्वित है। इसलिए प्रत्येक देश या जातिके प्रेम-काव्यमें अपनी एक परम्परा अपनी एक विशिष्टता दिखाई पड़ती है।

प्रेम जीवनका तत्त्व है।

फ़ारसी-काव्यकी भी अपनी एक विशिष्टता है। उसका एक खास रंग है। यह वैभव एवं विलासकी रंगभूमिमें पल्लवित हुआ, गुलमें खिला, बुलबुलके गानमें उभरा, बहारमें हँसा, खिज़ांमें रोया, सेहरामें मारा-मारा फिरा। यह हुस्नकी अदाओंपे सदक़ा, नयनोंमें मशगूल हुआ, ज़ुल्फ़ोंकी ख़मोंमें खोया, मुखकी पूर्णिमामें दीवाना हुआ, प्यालोंकी खनकमें मस्त और हसीनों या दिलबरके स्पर्शसे

फ़ारसी-काव्यकी ज़मीन

उधर यह यौवन के मज़ाएँ, ये शोखियाँ और इधर यह पुरसत यह आह यह कराह, यह बेचैनी।

यही दुनिया यही वातावरण फ़ारसी शायरीमें मिलता है। उर्दू पली हिन्दुस्तानकी धरतीपर किन्तु उसमें दिलकी धड़कन रही ईरानकी।

ईरानका गुल है भारतका कमल नहीं

अधिकतर कवि बाहरसे आये थे या उनकी सन्तति थे जो बाहरसे आये या जिनपर वहाँके सपने और नशे हिन्दुस्तानमें भी छाये हुए थे। कुछ लोगोंने पुराने रास्तोंमें और एक अच्छी तादादने आजकल इस क्रियाको बदलनेकी कोशिश की पर सब मिलाकर आज भी उर्दू शायरी वह है जिसमें हिन्दुस्तानके दिलका सुकून नहीं ईरानके दिलकी बेक़रारी है, जिसमें ईरानका गुल खिलता है पर भारतका कमल नहीं जिसमें ईरानका बुलबुल गाता है किन्तु हिन्दुस्तानकी कोयल नहीं कूकती जिसमें कोहकन-की कुदालका शब्द प्रेमको अर्घ्य देते हैं और शीरींका हुस्न अँगड़ाइयाँ लेता है पर कृष्णकी बाँसुरीसे प्रेमकी रागिनी नहीं फूटती न राधाका पद-चाप किसी मल्लिका-कुंजमें सुनाई देता है।

ग़ालिबके ज़मानेमें तो यह बात और भी सत्य थी। खुद वह फ़ारसीयतसे ओतप्रोत थे फ़ारसीके कवि थे। स्वभावतः उनमें भी इश्क़ोहुस्नकी वही परम्पराएँ मिलती हैं। उनके प्रारम्भिक काव्यमें ये अधिक हैं और परम्परागत एवं प्रासंगिक मालूम पड़ती हैं पर बादके काव्यमें उनमें निजी अनुभूतियोंके स्पर्शसे एक जीवित आकर्षण आ गया है।

आँख और दिल शृंगार-काव्यके प्रेरक अंग हैं। आँखसे दर्शन होता है, दिलसे अनुभूति आती है। दर्शन (आँख) सौन्दर्य और अनुभूति (दिल)

आँख और दिलका खेल

प्रेमका साधन है। जो कुछ है आँख और दिलका खेल है। आध्यात्मिक प्रेमका सम्बन्ध शाश्वत सम्बन्ध है यह देखना पहिले आवश्यक हो चुका है। वह पैदा होनेके लिये ही मजबूर है, बल्कि उसीसे पैदा हुआ है; आदमका सौन्दर्य भी नूर

उसकी अपनी आँखोंके मुग्ध सौन्दर्यकी छाया है। वह भक्तको ही उसमें देखता है। पर ऐसा सौन्दर्य-दर्शन ऐसी प्रेमानुभूति ऐसा सर्वस्व-विलोप संसारमें किसी-किसीको मिलता है।

प्राकृत मानवमें प्रेमका पूर्व दर्शन और सौन्दर्य है। वह पहिले देखता है, तब रीझता है। स्वभावतः शरीर और उसका चरम सौन्दर्य बुद्धिको लुभाता है। बुद्धि ही सौन्दर्यका आधार है इससे दिलमें एक आलोडन होता है एक सम्मोहन-सा होता है एक बेचैनी एक मस्ती पैदा होती है, एक स्पन्दन होता है। प्रेमकी यह ऊर्मी दिलकी यह बेचैनी सौन्दर्यको और आकर्षक बना देती है। दिलके इसी स्पन्दसे कविताकी धारा बहती है। इसके लिए दिलकी तपिश जरूरी है। ग़ालिबने इसे अनुभव किया था। कहते हैं—

बुद्धि सौन्दर्यका आधार है

हुस्ने फ़रोग़े शमए सुख़न दूर है 'असद',
पहले दिले गुदाख़्ता पैदा करे कोई।

[ऐ असद! काव्यकी शमाका ज्योतिर्मय सौन्दर्य अभी दूर है; पहले कोई द्रवणशील हृदय तो पैदा करे। (तब वह प्राप्त होगा)]

मैं इसे कह चुका हूँ कि ग़ालिबका प्रेम एक मानवका प्रेम है। वह प्रियतमाके शारीरिक सौन्दर्यपर आसक्त है। इस सौन्दर्यमें शरीरकी सहज छवि अलंकार शृंगार सब सम्मिलित है। उसकी चमक और संगीतकी भाँति लहराती उसकी गति और भावावेगपर वह मुग्ध है।

चपलता

है साइक़े[1] व शोले[2] व सीमाबका[3] आलम
आना ही समझमें मेरी आता नहीं गो आय।

---

१ बिजली २ विद्युत, ३ पारद।

[तड़पती हुई बिजलीकी लपट और पारेकी-सी अवस्था है, यह आती है तब भी उसका आना समझमें नहीं आता ।]

उनके उर्दू-फ़ारसी काव्यमें प्रियतमाके क़द-क़ामतका ज़िक्र बार-बार आता है । इसपर उनकी दृष्टि पहुँच जाती है—

क़द-क़ामत

अगर वह सरोक़द गर्मे ख़रामेनाज़ आ जावे,
कफ़े हर ख़ाक गुलशन शक्ले क़मरी नाल-फ़र्सा हो ।

निश्चय ही वह उनके कलेजे कचोटती है—

न यादे क़ामत अगर हो बुलन्द ख़ाहिशे गाम,
हर एक ज़र्रा जिगर आफ़ताबे महशर हो ।

या

असद उठना क़यामत क़ामतोंका वक़्ते आराइश
लिबासे नज़्ममें बालीदने मज़मूने आली है ।

बाल

क़द-क़ामतके अलावा उसके बालोंमें बड़ा आकर्षण और सौन्दर्य है । उसपर वह मुग्ध है । उनकी ख़ुशबू उन्हें मस्त कर देती है—

अभी आती है बू बालिशकी उसकी ज़ुल्फ़े मुश्कींसे ।

× ×

तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ूपर परीशाँ हो गयीं ।

× ×

तू और आराइशे ख़मे काकुल ।

× ×

ज़ुल्फ़के सायाके माशूक़ हज़ार बेक़रार ।

× ×

कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़के सर होने तक।

कभी उनका दिल सौन्दर्यके जादूसे आक्रान्त पूछता है—

जिनके ज़ुल्फ़े अम्बरीं क्यों है ?
निगाहे चश्मे सुर्मा सा क्या है ?

यह 'ज़ुल्फ़े अम्बरीं' (सुगन्धित अलकें) और 'निगाहे चश्मे सुर्मा सा' (सुर्मई आँखोंकी दृष्टि) उन्हें कभी नहीं भूलती। सुर्मई आँखें उन्हें सदा खींचती रहती हैं, बार-बार याद आती हैं।

आँखें

ख़मोशियोंमें तमाशा अदा निकलती है,
निगाह दिलसे तेरे सुर्मा सा निकलती है।

× ×

हलक़े हैं चश्महाय कुशादः बसूए दिल,[1]
हर तारे ज़ुल्फ़को निगहे सुर्मा सा कहूँ।[2]

× ×

सुर्मए मुफ़्ते नज़र हूँ, मेरी क़ीमत यह है—

ये आँखें यों भी हर हालतमें उनके लिए काम्य हैं—

मुँह न दिखलावे न दिखला पर बअन्दाज़े इताब,
खोलकर पर्दा ज़रा आँखें ही दिखला दे मुझे।
('आँखें ही दिखला दे' में मुहाविरेका क्या प्रयोग है!)

अनूठे ढाई नयनोंका सौन्दर्य और मोहक हो जाता है—

क़यामत है सरिश्क आलूद[4] होना तेरी मिज़गाँका।

---

१ तेरी ज़ुल्फ़ोंमें जितने भी पेंच या घूँघर हैं उन मेरे दिलपर आँख (घाव) लगाये हुए हैं। २ तेरी ज़ुल्फ़के हर तारको सुर्मई दृष्टि कहना चाहिए, ३ ज़रा मुफ़्तमें ४ अश्रुपूर्ण।

था—

करे है क़त्ल लगावटमें तेरा रो देना,
तेरी तरह कोई तेग़े निगहको आब तो दे।

(इसमें भी तलवारको पानी देनेके मुहावरेका कैसा निर्वाह है!)

मग़रूरी आँखोंमें तीर ही असर है—

कोई मेरे दिलसे पूछे तेरे तीरे नीमकशको,[1]
यह ख़लिश[2] कहाँ से होती जो जिगरके पार होता।

कभी-कभी वह जिगर तक चोट करती है—

दिलसे तेरी निगाह जिगर तक उतर गयी।

वह देखते-देखते आँखें चुरा लेना या बनावटी क्रोध प्रकट कर देता है—

लाखों लगाव एक चुराना निगाहका
लाखों बनाव एक बिगड़ना इताब[3]में,

(बनाव और बिगड़नाका विरोधाभास तो देखिए!)

ये आँखें ऐसी हैं कि—

आँखोंको रखके ताक़ पे देखा करे कोई।

माशूक़ पर्देमें है, त्योरी चढ़ी हुई है और पर्देमें होकर भी वह पर्देसे बाहर है—

है तेवरी चढ़ी हुई अन्दर नक़ाबके,
है इक शिकन पड़ी हुई तर्फ़े नक़ाबमें।

---

१ आधे खींचे हुए, २ खटक करकराहट, ३ गुस्सा।

उनकी छवि स्वयं देखे जानेकी कामनासे भरी हुई है। आख़िर जौहर भी प्रकट होना चाहता है—

> जल्वा अज़ बस कि तक़ाज़ाए निगह करता है,
> जौहरे आईन भी चाहे है मिज़गाँ होना।

कभी-कभी घूँघटसे सौन्दर्य बढ़ जाता है—

> मुँह न खुलने पर है वह आलम कि देखा ही नहीं,
> ज़ुल्फ़से बढ़कर नक़ाब उस शोख़के मुँहपर खुला।

कभी मेंहदी-रंजित अँगूठा घुमाता है—

> दिलसे मिटना तेरी अंगुश्ते हिनाईका ख़याल,
> हो गया गोश्तसे नाख़ुनका जुदा हो जाना।

उसकी चाल उसके चरण सब मोहक हैं—

> दिल हवाए ख़िरामे नाज़से फिर,
> महशरिस्ताने बेक़रारी[1] है।
> वाये बहारे नाज़ कि तेरे ख़िरामसे[2]
> दस्तारे गिर्दे जादा गुले नक़्श पा करें।

या—

> देखा तो दिल फ़रेबिए अन्दाज़े नक़्शे पा,
> मौजे ख़िरामे यार भी क्या गुल कतर गयी।

लज्जासे सौन्दर्य और अनावृत हो जाता है—

> शर्म इक अदाए नाज़ है अपने ही से सही
> हैं कितने बेहिजाब कि हैं यों हिजाबमें।

---

१ बेचैनीका प्रलयस्थल २ चरण-प्रक्षेप।

पर माशूकके सौन्दर्यके बखान उसकी अदाओंके ज़िक्रमें सर्वत्र ग़ालिब-के प्रेममें स्वाद लेने और पानेकी कामना है। इस कामनाकी तृप्तिके लिए

मरकज़परस्ती शारीरिक सीमाओंको स्पर्श करते हैं। वह कहीं उस रूपको छूते हैं, कहीं उसकी वाणी सुनते हैं कहीं उसे देखते हैं, कहीं उसका आलिंगन करते हैं, कहीं चुम्बन लेते हैं, कहीं चरणामृत लेनेकी चेष्टा करते हैं कहीं वक्ष-सौन्दर्यपर मुग्ध हैं। उनसे हर तरहकी तृप्ति हर तरहका स्वाद चाहते हैं—

ग़ालिब छुटी है उससे हम आग़ोशी[1] की आर्ज़ू,
जिसका ख़याल है गुलें जेबे क़बाए गुल।[2]

× ×

'असद' बंदे क़बाए यार है फ़िरदौसका ग़ुंचा[3],
अगर वाँ[4] हो तो दिखला दूँ[5] कि यक आलम गुलिस्ताँ है।

साक़िया! दे एक ही साग़र[6]में सबको मय[7] कि आज
आरज़ूए बोसए लबहाए मैगूँ[8] है मुझे।

यह सौन्दर्योपासना और प्रेम जीवन-भर चलता है। जब उम्र ढल जाती है, मिलन-मिलनकी धुन बीत जाती है तब भी यह उनकी कामनायें जीवित मिलती हैं। कहते हैं—

मस्तान तय करूँ हूँ रहे वादिए ख़याल[9],
ता बाज़गश्त[10] से न रहे मुद्दआ मुझे।

---

१ आलिंगन २ फूलके परिधान ३ स्वर्गकी कलिका ४ वहाँ ५ दिखला सकता ६ पात्र ७ मदिरा ८. मदिरा-जैसी लालिमावाले (रक्ताभ) ओठोंके चुम्बनकी कामना है, ९ कल्पनाकी घाटीका रास्ता १ प्रत्यावर्तन लौटना।

इन पुरानी स्मृतियोंको लौट आनेकी कामनामें उन स्मृतियोंका स्वाद लेते हैं—

मुद्दत हुई है यारको मेहमाँ किये हुए,
जोशे क़दहसे बज़्म चराग़ाँ किये हुए।
फिर वज़्अ इहतियातसे रुकने लगा है दम,
बरसों हुए हैं चाक गिरेबाँ किये हुए।
फिर पुर्सिशे जराहते दिल[2]को चला है इश्क़,
सामाने सद हज़ार नमकदाँ किये हुए[3]।
फिर शौक़ कर रहा है ख़रीदारकी तलब,
अर्ज़े मताए चश्मे निगाहाँ किये हुए।
माँगे है फिर किसीको लबे बामपर हविस,
ज़ुल्फ़े सियाह रुख़ पे परीशाँ किये हुए[5]।
चाहे है फिर किसीको मुक़ाबिलमें आरज़ू[6],
सुर्मेसे तेज़ दश्नए मिज़गाँ[6] किये हुए।
जी ढूँढता है फिर वही फ़ुरसत कि रात-दिन,
बैठे रहें तसव्वुरे जानाँ किये हुए।

यदि यह लगाव-परस्ती एक स्वाभाविक गुनाह है तो वह अपने गुनाहको स्वीकार करते हैं, उसेभी पौरुषके साथ स्वीकार करते हैं—

१ मधुपानकी उमंग उफान २. दिलके घावकी पूछताछ करने (सहानुभूति प्रकट करने) ३ लाखों नमकदाँ लिये हुए (घावपर नमक छिड़कनेकी अधिक सामग्रीके साथ) ४ प्रेमिका निगाहें, ५. मुँहपर काली ज़ुल्फ़ें फैलाये हुए, ६ पलकोंकी बरछियोंको।

तमाशाए गुलशन, तमन्नाए चीदन,[1]
बहार आफ़रीना ! गुनहगार हैं हम।

इस स्वाद-भिन्नताके कारण ही कुछ-न-कुछ छेड़ चली जानेका उपक्रम करते रहते हैं। कृपा न सही दुश्मनी सही जुल्म सही पर किसी-न-किसी तरह उनसे सम्बन्ध तो बना रहता है—

हमको सितम अज़ीज़, सितमगरको हम अज़ीज़,
नामेहर्बां नहीं है, अगर मेहर्बां नहीं।

× ×

क़त्अ कीजे न तअ़ल्लुक़ हमसे,
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही।

शुरू जवानीमें इन्द्रियपरस्तीकी यह स्थिति ज्यादा स्पष्ट थी। उत्तर जीवनमें आत्मिक बन्धन कामनाओंपर बढ़ता गया। यहाँ तक कि बिना बन्धनमें पड़े बिना आसक्तिके भी एक मज़ा ले लेने एक मर्दानी बेफ़िक्री कला उनमें आ जाती है—

आशिक़ हूँ पे मा'शूक़फ़रेबी है मेरा काम,
मजनूँको बुरा कहती है लैला मेरे आगे।

× ×

हूँ मैं भी तमाशाइए नैरंग तमन्ना,[2]
मतलब नहीं कुछ इससे कि मतलब ही बर[3] आवे।

---

१ चुननेकी कामनाएँ, २ कामनाके इन्द्रजालका दर्शक ३ पूर्ण हो।

स्पष्ट ही ग़ालिबके प्रेम और सौन्दर्यका सम्पूर्ण दृष्टिकोण मानवी है; उसमें स्वाद लेनेकी भोगकी कामना है। यह कवि उन्माद तक बढ़े हुए प्रेमको अतीन्द्रिय प्रेमको उपासना युक्त प्रेमको समझ ही नहीं सकता उसका मानसिक निर्माण ही वैसा नहीं है। वह ऐसे प्रेमको पागलपन मस्तिष्ककी विकृति मात्र समझता है। स्पष्ट कहा है—

उपासनापूर्ण प्रेमपर व्यंग

बुलबुलके कारोबार पै हैं ख़न्दःहाये गुल,
कहते हैं जिसको इश्क़ ख़लल है दिमाग़का।

उसके कामनाजनित आकर्षणको जब कुछ लोग भ्रमवश प्रेमोपासना समझ बैठे हैं तब वह चिढ़कर कहता है—

ख़्वाहिशको अहमक़ोंने परस्तिश दिया क़रार,
क्या पूजता हूँ उस बुते बेदादगरको मैं?

सच पूछें तो ग़ालिब उस स्थलपर है जहाँ ईश्वरीय प्रेम तथा भौतिक प्रेम दोनोंके भ्रमसे प्रेमी ऊपर उठ जाता है—

ऐ महरमसराजाने मजाज़ी व हक़ीक़ी,
अल्ताफ़ तेरे हर्फ़ो नातिक़से जुदा हैं।

इसीलिए इस कामनापूर्ण स्वाद-सुखमें गन्दगी नहीं है, उसमें स्वस्थ मानवका शारीरिक आकर्षण है पर पतनशील प्रवृत्तियोंका पतन नहीं है।

कामनाका रंग है इन्द्रिय लुब्धता नहीं

उसमें रसकी कमी नहीं है, शरीर-सौन्दर्यका बोध और संकेत है कामनाका रंग है पर निम्न स्तरकी इन्द्रियलुब्धता नहीं है। उसके यहाँ दिखावट है कि सौन्दर्योपासना और प्रेमकी परम्पराको प्रगल्भतम निम्न

१ फूल हास्यपूर्ण २ पूजा।

या—

> वाँ वह ग़ुरूरे इज़्ज़ो नाज़[1] याँ यह हिजाबे पासे वज़अ[2],
> राहमें हम मिलें कहाँ, बज़्ममें वह बुलाये क्यों ?

अहंजनित ईर्ष्या भी व्यापक है—

> हम रश्कको अपने भी गवारा नहीं करते,
> मरते हैं पर उनकी तमन्ना नहीं करते।

सबसे पूछते फिरते हैं कि किधर जायें पर रश्कका यह आलम है कि ज़बानसे उसका नाम नहीं लेते—

> छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ,
> हर इकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं।

इस प्रकार उनका दिल अनेक मानवी भावनाओंका आकर है, वह सुन्दरको देखना छूना उसका प्यार लेना चाहते हैं पर अपनी पिछली अपने ढंग अपनी वज़अको छोड़ना भी उन्हें गवारा नहीं। उनमें तृष्णा है पर वह क्षण भर भड़ककर बुझ जानेवाली घासकी आग-जैसी नहीं है। यह वह तृष्णा है जिसमें दिल एक शाश्वत अग्निकुण्ड बन कर रह जाता है वह उसी प्रेमकी अक्षय तृष्णा-वेदनाको चाहते हैं जिससे जीवन सचमुच जीवन है, वह उस उलझनको उस जीवन-स्रोतको चाहते हैं जिससे समस्त क्रियाएँ, समस्त उत्कण्ठाएँ उत्पन्न और उर्जस्वित होती हैं। उनके मतसे जो दिल आगकी भट्ठी न हो वह भी कोई दिल है !

प्यासका अतल भरी तृष्णा

---

१ मान व सम्मानका गर्व २. अपने वज़अकी लाज।

ग़ालिबका काव्य ४ :

काव्य शिल्प

काव्य कल्पकी साधना है। जब शब्द मुँहसे बाहर निकलते हैं, जब उनके अन्दरसे एक प्रच्छन्न दुनिया निकलकर आँखोंके सामने तैर उठती है, तब काव्यकी कला निखरती है। ललित-कलाओंमें काव्यका स्थान सबसे ऊपर है क्योंकि इसमें सब कलाओंके तत्त्व हैं। इसमें नृत्यकी गतिशीलता, मूर्तिकलाका सौन्दर्य, चित्रकलाका रेखाङ्कन और रंग तथा संगीतकी गूंज अथवा ध्वनि है। वही सौन्दर्य जो फूलमें मधुरता है, कविके श्वाससे भी सृत होता है। खुद ग़ालिबके शब्दोंमें—

> वही इक बात है जो याँ नफ़स वाँ नक्हते गुल है,
> चमनका जल्वा बाइस है मेरी रंगीनवाईका।

काव्य-शास्त्रमें यथातथ्य चित्रण, अभिभाषा माधुर्य, रंग और ध्वनिकी सूक्ष्मता, अनुभूति एवं कल्पनाकी ऊँचाई, अभिव्यंजनाका वैचित्र्य तथा भावोद्रेककी गहराईको महत्त्व दिया गया है। ग़ालिबके काव्यमें इनमेंसे अधिकांश गुण पाये जाते हैं। मौलाना हालीने उनके काव्यकी विशेषताओंमें विषय-माधुर्य (जद्दते मज़ामीन) कल्पना-वैचित्र्य (शोख़ीए ख़याल) नवीन उपमा-रूपक-विधान, शोख़ी और विनोदको प्रधान स्थान दिया है।

ज़बान

ग़ालिबकी ज़बानके बारेमें लोगोंके परस्पर विरोधी मत हैं। कुछने उसकी अत्यधिक प्रशंसा की है, कुछ इस क्षेत्रमें मीर और सौदाको उनसे

बहुत ऊपर मानते हैं। सत्य इन दोनोंके बीच है। इसमें तो सन्देह नहीं कि मीरकी भाषाकी घुलावट और सादगी तथा सोज़का शब्द-सौन्दर्य ग़ालिबमें नहीं है पर साथ ही विषयके अनुरूप भाषाका चयन उनकी विशेषता है। जहाँ फ़ारसी वातावरण सामग्री श्रेष्ठता और संस्कारकी बात है वहाँ वह फ़ारसीपनसे भरी है, पर जहाँ दिलकी गहराईसे निकली भावनाओंका सवाल है वहाँ ठेठ हिन्दुस्तानी ज़बान है। कहीं कहते हैं—

हवाए सैरे गुल आईनए बेमेहरिए क़ातिल,
कि अन्दाज़े बख़ूँ ग़ल्तीदने बिस्मिल पसन्द आया।

तो कहीं अत्यन्त सरल ठेठ शब्दोंकी तहमें भावनाओंकी एक ऐसी दुनिया करवट लेती दिखाई देती है कि जिसमें सादगीके सौन्दर्यका जादू है—

मौतका एक दिन मोअय्यन[1] है
नींद क्यों रात भर नहीं आती।
पहले आती थी हाले दिल पे हँसी,
अब किसी बातपर नहीं आती।

भाषा उनके हाथमें एक अस्त्र है, जब जैसा चाहते हैं उसको रखते हैं। जहाँ शृंगार और सजावटका वातावरण है वहाँ शृंगार और सजावट इतनी है कि कुछ न पूछिए, और जहाँ सादगीसे असर पैदा किया जा सकता है वहाँ सादगी है। शब्दोंके चयन और उपयुक्त स्थानपर उनको बैठानेकी कलामें ग़ालिब एक ही हैं। मुहम्मद एकरामने लिखा है—

अगर हम ज़बानसे मुराद लें अल्फ़ाज़का इन्तख़ाब[2] उनकी हम-आहंगी[3] और निशस्तें[4] तो मिर्ज़ाका मर्तबा[5] तमाम उर्दू शुअरा[6] से बुलन्द

---

१ निश्चित २ शब्द-निर्वाचन ३ सन्तुलन ४ बैठक स्थान ५. दर्जा ६ शाइरका बहुवचन।

ग़ज़लकी इस मर्यादाके होते हुए भी ग़ालिबने उसे खींचकर काफ़ी बड़ा किया है और उसके क्षितिजको विस्तृत कर दिया है। उसमें महा काव्यत्वकी विशालता तो सम्भव नहीं पर गीति-काव्यका पूर्ण सौन्दर्य है। ग़ालिबमें तुलसीकी विराटता या 'प्रसाद' की सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि एवं सृष्टि नहीं है फिर भी अनुभूतियोंकी गहराई और कल्पनाकी उड़ान है। शेरमें कई मुसल्सल विचार तो संकलित नहीं हो सकते पर ग़ालिबकी विशेषता यह है कि उसके एक शेरमें भाव या विचारकी व्यंजना कुछ ऐसे ढंगपर होती है कि भावोंकी एक शृंखला आरम्भ हो जाती है। एक भावना अपने में ही समाप्त होकर नहीं रह जाती। 'ग़ालिब एक ख़यालको इस पैरायेमें बयान करते हैं जिससे दूसरे ख़यालातकी तरफ़ ख़ुदबख़ुद मुन्तक़िल[1] होती है और शेर पढ़कर ज़ेहन इन दूसरे ख़यालातकी जुस्तजू[2] में मशगूल[3] हो जाता है गोया महदूदियतमें ख़यालमें[4] दरवाज़ा खुल जाता है।

उदाहरण लीजिए—

दहर जुज़ जल्वए यकताइए माशूक़ नहीं
हम कहाँ होते अगर हुस्न न होता ख़ुदबीं।

× ×

फूँका है किसने गोशे मुहब्बतमें ऐ ख़ुदा
अफ़सूने इन्तज़ारे तमन्ना कहें जिसे।

ये शेर अपने ही में ख़त्म होकर नहीं रह जाते। इनमें आकर दुनिया नयी दुनियाओंके द्वार खोल देती है। इनमें एक ध्वनि एक इशारा है। इनकी आँखें दूर क्षितिजपर किसीको खोजती हैं।

---

१ ज़िहन फेरता २ अन्वेषण, ३ निमग्न ४ बन्धनयुक्त प्रसंग स्थल ५. काव्यकी प्रतीकात्मक वस्तु।

व्यंजनाका प्रवाह (जोशे बयान)

कहीं-कहीं शेरोंमें तीव्र प्रवाह और गति है। जो बहते हैं जोशके साथ बहते हैं उसमें भावनाकी हरहराती नदीकी आवाज है; उसकी और पहाड़ी बरसाती नदीकी रवानी है, देखिए—

ऐ अन्दलीब[1]! यक कफ़े ख़स बहरे आशियाँ[2],
तूफ़ाने आमदे आमदे फ़स्ले बहार है[3]।

× ×

चाक मतकर जेब बेअय्याम गुल,
कुछ उधरका भी इशारा चाहिए।

× ×

लरज़ता है मेरा दिल ज़हमते मेहरे दरख़्शाँ[4] पर,
मैं हूँ वह क़तरए शबनम कि हो ख़ारे बयाबाँ पर।

× ×

मुनहसिर मरने पे हो जिसकी उमीद,
नाउमीदी उसकी देखा चाहिए।

इन शेरोंमें आन्तरिक अनुभूतियाँ शिल्पके पर्दोंको फाड़कर अभिव्यंजनाकी खिड़कियोंसे झाँक-झाँक उठती हैं।

अंगसौष्ठव और चित्रांकन

मूर्तिकलाका सर्वोत्तम नमूना—मानव—कहा जाता है। इसमें अंगोंका सौष्ठव संतुलन और सामञ्जस्य होता है। अंग साँचेमें ढले-से होते हैं। काव्यमें भी यही संतुलन शिल्पका प्राण है। ग़ालिबमें कहीं-कहीं यह गुण

१ बुलबुल २ आशियानेके लिए, ३ बसंत ऋतुके आगमनमें तूफ़ान आया है ४ प्रकाशमान सूर्यकी विपत्ति।

उभरता है; शेर ऐसे जान पड़ते हैं जैसे मूर्तियाँ किसी दक्ष मूर्तिकारने पत्थरमें काट दी हों या भावका चित्र कागज़की छवि-सा बोल-बोल उठता हो। एक मशहूर ग़ज़लका क़िता है—

ए ताज़ा वारिदाने[1] बिसाते हवाए दिल,
ज़िनहार अगर तुम्हें हविसे नायोनोश[2] है।
देखो मुझे जो दीदए इबरत निगाह[3] हो,
मेरी सुनो जो गोशे नसीहत नियोश[4] है।
साक़ी बजल्वा दुश्मने ईमानो आगही[5],
मुतरिब[6] बनग़मा रहज़ने[7] तमकीनो होश है।
या शब को देखते थे कि हर गोशए बिसात,
दामाने बाग़बानो कफ़े गुलफ़रोश है।
लुत्फ़े ख़रामे साक़ी[8] व ज़ौक़े सदाए चंग,
यह जन्नते निगाह वह फ़िरदौसे गोश है।
या सुब्हदम जो देखिए आकर तो बज़्ममें,
ने वह सुरूरो सोज़ न जोशो ख़रोश है।
दाग़े फ़िराक़े सोहबते शबकी जली हुई,
इक शमअ रह गयी है सो वह भी ख़मोश है।

कहते हैं हृदयकी आकांक्षाओंकी भूमिपर आकर नये बैठनेवालो! (प्रेमकी दुनियाके नवागन्तुको!) यदि तुम्हें खान और पानका शौक है किन्तु शिक्षा लेनेवाली दृष्टि मुयस्सर है तो मुझे देखो अगर उपदेश सुनने-

१ हृदयाकांक्षाकी भूमिपर नये आने वालो २ खान-पान ३ शिक्षा ग्रहण योग्य दृष्टि, ४ उपदेश ग्रहण करने योग्य कान ५ बुद्धि ६ गायक ७ डाकू ८ वाटिका बरबसनिधानका सौन्दर्य या आगार।

जाके कान रखते हो तो मेरी बात सुनो। यहाँ साक़ी अपना रूप अपनी छवि (जल्वा) दिखाकर ईमान और अक़्लको लूट लेता है, गायक अपना गान सुनाकर सिरको और चेतनापर डाके डालता है। रात इस विलास-कक्षमें यह हाल था कि बूटीकी बिसातका हर कोना मालीके दामन और फूल बेचनेवालेके हाथकी तरह फूलोंसे भरा हुआ था (इसमें रूपसियोंका जमघट था)। साक़ीके चरण-निक्षेप एवं सारंगीकी धुनें आँखों और कानोंके लिए स्वर्गकी सृष्टि करती थीं। किन्तु सुबह उसी महफ़िलमें आकर देखता हूँ तो यह हाल है कि न वह आनन्द है, न प्रेमका वह उत्ताप (जोश) है न वह उमंग-उत्साह है। रातके आमोद-प्रमोदके विरह-दुःखमें जली हुई एक शमा रह गयी है किन्तु वह भी मौन है। (महफ़िलका अन्तिम चिह्न भी मिट गया है)।

कैसा जीवन्त चित्र है! रातके विलास-कक्ष और प्रातःकालीन उदासीकी मूर्ति शब्दोंके पत्थरोंपर उभर आई है। आँखोंमें प्रियतमाके हाव-भाव बेहोशीसे भरी और बेहोश करनेवाली आँखें फिर जाती हैं उसकी कोकिल-तान कानोंके पर्देमें गूँज रही है, और फिर जब सब मिट गया है कोई शेष स्मृति भी शेष नहीं है, तबकी उदासी और नीरसता चतुर्दिक छा गयी है।

फ़ानीने लिखा है— 'एक नई दुनिया आलमआशोब है। बेरब्ती और परागन्दगीका यकसर[3] नामोनिशान नहीं। यहाँ तामीरी यक-जहती[4] का वजूद[5] है जाती इन्फ़िरादियत अस्त व इन्तिहा[6] में रब्त व मुताबिक़त है। एक नक़्शे असबाब सिमात व तअल्लुक़के सामने अपना हुस्न मरतब[7] करता है। ग़ालिबने इस मामूली और आम ख्यालको बामराम हुस्न और बायराम सदाक़तके साथ बयान किया है। अलबत्ता अपनी

---

१ असंतुलन २ असम्बद्धता ३ बिलकुल ४ निर्माणकी समानता ५ अस्तित्व ६ आरम्भ मध्य एवं अन्त ७ सम्पादित।

प्रकृतिके चित्र

ग़ालिब तथा उर्दूके सभी कवियोंका काव्य प्रकृतिके सुन्दर चित्रोंसे खाली है। कहीं-कहीं रेखाएँ भर हैं फिर भी ग़ालिबमें एकाध नमूने मिल ही जाते हैं और अच्छे नमूने—

> फिर इस अन्दाज़से बहार आई,
> कि हुए मेहो मह[1] तमाशाई[2]।
> देखो ऐ साकिनाने ख़ित्तए ख़ाक[3],
> इसको कहते हैं आलम आराई[4]।
> कि ज़मीं हो गयी है सर ता सर[5],
> रूकशे[6] सत्हे चर्ख़े मीनाई[7]।

बहार इस ठाठसे आई है कि सूर्य-चन्द्र भी दर्शक बन गये हैं। हे पृथ्वीके रहनेवालो देखो संसारका शृंगार इसे कहते हैं। सारी धरती ऐसी सज उठी है कि रंगीन आकाशकी बराबरी करने लगी है।

चिन्तन एवं अनुभूतिका सन्तुलन

चिन्तन एवं अनुभूतिका गहरा सन्तुलन तथा सामञ्जस्य ग़ालिबके काव्यकी एक विशेषता है। दो-तीन शेर देखिए—

> दीदार बादः हौसला साक़ी निगाह मस्त,
> बज़्मे ख़याल मयकदए बेख़रोश है।

(प्रियतमकी महफ़िलमें प्रियतमाका दर्शन शराबका काम देता है। आँख पीकर मस्त हो जाती है। यह मधुशाला दूसरोंसे भिन्न नीरव है।)

---

१ सूर्य-चन्द्र २ दर्शक ३ धरतीके निवासी ४ संसारका शृंगार, ५ एक सिरेसे दूसरे सिरे तक पूरीकी पूरी ६ प्रतिद्वन्द्वी ७ नीला, (रंगीन) नभ।

मक़्तलको किस निशातसे जाता हूँ मैं, कि है
पुरगुल ख़यालेज़ख़्मसे दामन निगाहका।

(वधस्थलमें जो ज़ख़्म लगेंगे उनकी कल्पना मात्रसे निगाहका आँचल फूलोंसे भर गया है और मैं किस उमंगसे वहाँ चला जा रहा हूँ ।)

तबअ है मुश्ताक़े लज़्ज़तहाय हसरत क्या करूँ,
आरज़ूसे है शिकस्ते आरज़ू मतलब मुझे।

(तबीयत हसरत—निराशामयी आकांक्षा—की लज़्ज़तोंके लिए उत्कण्ठित है; यों मैं कोई अभिलाषा भी करता हूँ तो मेरा अभिप्राय अभिलाषाकी असफलता ही होता है ताकि इस असफलतासे फिर हसरतका जन्म हो और तबीयतको बराबर उसका स्वाद मिलता रहे ।)

भावना एवं अनुभूतिकी विविधता

भावना और अनुभूतिकी विविधता ग़ालिबमें ख़ूब पाई जाती है । सबसे बड़ी बात तो यह है कि व्यंजनामें एक अजब शोख़ी है, जैसे दूसरोंको जवाब दे रहे हों—

इन आबलोंसे पाँवके घबरा गया था मैं,
जी ख़ुश हुआ है राहको पुरख़ार देखकर।

(निरन्तरके चलनेसे रेगिस्तानोंमें पाँवमें जो छाले पड़ गये हैं उनको देख देखकर मैं घबरा गया था कि इनमें टीसकी लज़्ज़त कैसे भर दूँ । अब रास्तेको काँटोंसे भरा देखता हूँ तो तबीयत ख़ुश हो गयी है; अब काँटों और आबलोंमें अच्छी पटेगी ।)

क्यों गर्दिशे मुदामसे घबरा न जाय दिल,
इंसान हूँ पियाला-ओ-साग़र नहीं हूँ मैं।

(इस तरह चक्कर काटनेसे दिल क्यों न घबरा जाय ? मैं भी इंसान हूँ कोई प्याला नहीं हूँ—प्याला सदा फिरता रहता है ।)

नवीन उपमाएँ, रूपक, उत्प्रेक्षाएँ

ग़ालिबकी एक बड़ी विशेषता उनकी उपमाएँ और रूपक हैं। वह प्रचलित और पिटी-पिटाई उपमाओं और रूपकोंका प्रयोग नहीं करते सदा नयी उपमाएँ और रूपक ढूँढ़ते हैं। मुहम्मद हसनने लिखा है— 'मिर्ज़ा तश्बीह और इस्तआरेके बादशाह थे।' उनकी उपमाएँ और रूपक ऐसे हैं कि उपमेय तथा विषयको सरस और जोरदार बना देते हैं। एक अद्भुत रूप उजागर हो जाता है। इस प्रकारकी नवीनता प्रारम्भिक काव्यमें भी है। जैसे ग्लासकी उपमा तरंग (लहर) से, मैखानेकी दरियासे, बगूलोंकी पगे बगूलेके वहिनेष निष्ठा-मार्गकी तलवारकी धारसे पाँवकी जंजीरकी झनकारसे।

बादमें तो काव्यमें इसकी और पुष्टि होती गयी है। कुछ उदाहरण लीजिए—

> हैं ज़वालआमादा अजज़ा आफ़रीनिशके तमाम,
> मेह्रे गर्दूँ है चिराग़े रहगुज़ारे बाद याँ।

इसमें सूर्यकी उपमा वायु-मार्गमें प्रज्वलित दीपकसे दी गयी है। (इस संसारके सभी अंग पतनोन्मुख हैं नाशशील हैं। इसमें सूर्य हवाके रास्तेमें रखा गया दीपक है।)

> ग़मे हस्तीका 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग इलाज,
> शमअ हर रंगमें जलती है सहर होने तक।

इस शेरमें मृत्युको प्रभात बताया गया है क्योंकि प्रभात शमअके लिए मृत्युका कारण है। (ऐ असद! जीवनके दुःखकी चिकित्सा मृत्युके सिवा कौन कर सकता है? शमअको प्रभात होने तक हर रंगमें जलना ही पड़ता है।)

> जूए ख़ूँ आँखोंसे बहने दो कि है शामे फ़िराक़,
> मैं यह समझूँगा कि दो शमएँ फ़रोज़ाँ हो गयीं।

आस-पास कठिनाइयों और मुसीबतोंके जाल बिछे थे और होश सँभालनेके पहिले ही हम उसमें फँस गये।

शोखी

मिर्ज़ाकी तबीयत ही चुलबुली और विनोदप्रिय थी। उनके काव्यमें उनकी शोखीकी झलक प्रायः मिलती है—

> पकड़े जाते हैं फ़रिश्तोंके लिखे पर नाहक़,
> आदमी कोई हमारा दमे तहरीर भी था।

फ़रिश्तोंके लिखनेपर हम नाहक पकड़े जा रहे हैं। उनके लिखते वक्त कोई हमारा भी आदमी उपस्थित था? बेगवाहीकी तहरीरपर पकड़ना भी कोई न्याय है!

> जमा करते हो क्यों रक़ीबोंको,
> एक तमाशा हुआ गिला न हुआ।

मैंने शिकायत की थी तुमने तमाशा खड़ा किया। तुम मेरे प्रतिस्पर्धियोंको क्यों एकत्र कर रहे हो? (शिकायतका क्या जवाब मिला है!)

> ग़ालिब गर इस सफ़रमें मुझे साथ ले चलें,
> हजका सवाब[1] नज़्र करूँगा हुज़ूर की।

यदि इस यात्रामें मुझे भी साथ ले चलें तो हजका जो पुण्य होगा उसे मैं हुज़ूरकी नज़र कर दूँगा।

> वाइज़ न तुम पियो न किसीको पिला सको,
> क्या बात है तुम्हारी शराब तहूर[2] की।

---

१ पुण्य २ स्वर्गीय मदिरा।

'क्या बात है' शेरकी जान है।

हम भी कहते हैं कि हम हश्रमें लेंगे तुमको
किस रऊनत[1] से वह कहते हैं कि 'हम हूर नहीं।''

इस्लाम धर्मका विश्वास है कि प्रलयके समय खुदा लोगोंको पुरस्कार देता है उसमें हूरें (अप्सराएँ) मिलती हैं। इसीपर कहते हैं कि हम प्रलयके समय तुम्हींको लेंगे और वह किस गर्वसे जवाब देती है कि मैं कोई हूर तो नहीं हूँ।

व्यंग-विनोद :

ग़ालिबके काव्यकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह प्रच्छन्न व्यंग और विनोद (तंज़ और ज़राफ़त) है जो उनके कलामोंमें पाई जाती है। व्यंगमें उन्होंने किसीको छोड़ा नहीं। यहाँ तक कि 'उर्दू शायरीमें ग़ालिब पहिले शख़्स हैं जिन्होंने स्वयं ख़ुदाको मुख़ातिब किया है। उनमें 'सेन्सह्यूमर' (मज़ाकपर हँसनेका गुण) भी था और इसी गुणने उन्हें मुसीबतोंकी घाटीमें भटकनेसे बचा लिया।

यह शेर देखिए—

की मेरे क़त्लके बाद उसने जफ़ासे तौबा,
हाय उस ज़ूदपशेमाँ[2] का पशेमाँ होना।

जब कोई देरसे आता है तो लोग व्यंगमें कहते हैं—बहुत जल्द आये! यहाँ भी ग़ालिब उसी ढंगमें व्यंग करते हैं। 'अपने कियेपर शीघ्रतासे पछतानेवालेकी यह अदा! उसने मेरा क़त्ल करनेके बाद ही जफ़ासे तौबा कर ली।' (जब क़त्ल कर दिया गुनाह पूर्णतापर पहुँच गया और इतनी देर हो गयी कि मनुष्यतासे पूर्ति न हो सके तब वह अपने कियेपर लज्जित हो उठा।)

---

१ गर्व २ शीघ्र पछतानेवाला।

हूँ मुनहरिफ़[१] न क्यों रह्मो रस्मे सवाब[२] से,
टेढ़ा लगा है क़त क़लमे सरनविश्त[३] को।

मैं पुण्यकी परम्पराभक्ति प्रति विद्रोही क्यों न होऊँ जब मेरी भाग्यलिपि लिखनेवाली लेखनीमें ही कुछ टेढ़ा कत लगा है ?

मिटता है फ़ौते फ़ुर्सते हस्तीका ग़म कोई,
उम्रे अज़ीज़ सर्फ़े इबादत ही क्यों न हो !

चाहे यह प्यारी उम्र उपासनामें ही खर्च कर दी जाय पर क्या जीवन-की इस सुगम अवधिके नष्ट होनेका दुःख मिट सकता है ? (तब भी दुःख रहेगा कि और बहुतसे काम न कर सका और उम्र बीत गयी।)

हमको मालूम है जन्नतकी हक़ीक़त लेकिन,
दिलके बहलानेको ग़ालिब य' ख़याल अच्छा है।

हमको स्वर्गकी वास्तविकताका पता है, पर हाँ दिल बहलानेके लिए यह एक अच्छी कल्पना है !

यह दूसरोंपर ही नहीं अपनेपर भी हँस लेते हैं व्यंग कर लेते हैं—

ग़ालिब इन महसम्पतोंके वास्ते,
चाहनेवाला भी अच्छा चाहिए।
चाहते हैं ख़ूबरूओंको 'असद'
आपकी सूरत तो देखा चाहिए।

आप सुन्दरियोंको चाहते हैं ज़रा अपना मुँह तो देखिए। ऐ ग़ालिब ! इन चन्द्रमुखियोंके लिए चाहनेवाला भी तो अच्छा—सुन्दर—होना चाहिए।

---

१ पृथक् चलनेवाला विद्रोही २ पथ-परम्परा और मार्ग ३ भाग्यलिपि।

प्रेमदर्शन :

परत्वे ख़ुर[1] से है शबनमको फ़ना[2] की तालीम,
मैं भी हूँ एक इनायतकी नज़र होने तक।
मुहब्बतमें नहीं है फ़र्क़ जीने और मरनेका,
उसीको देखकर जीते हैं जिस काफ़िर पे दम निकले।
इशरते क़तरा है दरियामें फ़ना हो जाना,
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।
जबतक दहाने ज़ख़्म न पैदा करे कोई,
मुश्किल कि तुझसे राहे-सख़ुन वा[3] करे कोई।

तसव्वुफ़ :

हम वहाँ हैं जहाँसे हमको भी,
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।
था ख़्वाबमें ख़यालको तुझसे मुआमिला
जब आँख खुल गयी न ज़ियाँ था न सूद था।
एक एकके हर मुक़ाम पे दो चार रह गये
तेरा पता न पायें तो नाचार क्या करें?

वेदनाविह्वलता और मार्मिकता :

आगे आती थी हाले दिल पे हँसी,
अब किसी बात पर नहीं आती।
रगोंमें दौड़ने फिरनेके हम नहीं क़ायल
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है?

---

१ सूर्य-प्रकाश २. विनाश ३ अनावृत करे, खोले।

इब्न मरियम हुआ करे कोई,
मेरे दुखकी दवा करे कोई।
कहता है कौन नालए बुलबुलको बेअसर,
पर्देमें गुलके लाख जिगर चाक हो गये।
करने गये थे उनसे तग़ाफ़ुलका हम गिला
की एक ही निगाह कि बस ख़ाक हो गये।

निराशा :

अब सबकद[1] ही उठ गयी ग़ालिब,
क्यों किसीका गिला करे कोई।
मुनहसिर[2] मरनेपै हो जिसकी उमीद,
नाउमेदी उसकी देखा चाहिए।
सँभलने दे मुझे ए नाउमेदी, क्या क़यामत है,
कि दामाने ख़यालो यार छूटा जाय है मुझसे।
रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो,
हमसुख़न कोई न हो और हमज़बाँ कोई न हो।
पड़िए गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार,
और अगर मर जाइए तो नौहख़्वाँ कोई न हो।

मुहावरा

देके ख़त मुँह देखता है नामबर,
कुछ तो पैग़ामे ज़बानी और है।
जाता हूँ थोड़ी दूर हर एक तेज़रौके साथ
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मैं।

---

१ बुलबुलके रोनेका चीत्कार २. आशा-भरोसा ३ निर्भर।

> वह आयें हमारे घर ख़ुदाकी क़ुदरत है,
> कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते हैं।

मुतजाहिलआरिफ़ी[1]

> जिस मुँहसे शुक्र कीजिए उस लुत्फ़े ख़ासका,
> पुर्सिश है और पाए सुख़न दरमियाँ नहीं।
> हर एक बातपे कहते हो तुम कि तू क्या है,
> तुम्हीं कहो कि यह अन्दाज़े गुफ़्तगू क्या है?
> ग़म्ज़ा है उसने किसका सितम देखो जुर्म किसका है,
> न खींचो गर तुम अपनेको कशाकश दरमियाँ क्यों हो?

इनकी कवितामें अर्थ-चमत्कार (मा'नी आफ़रीनी) भी ख़ूब मिलता है—

> हस्ती हमारी अपनी फ़ना पर दलील है,
> यों तक मिटे कि आप हम अपनी क़सम हुए।
> मरते हैं आरज़ूमें मरनेकी,
> मौत आती है पर नहीं आती।
> नक़्शको उसके मुसव्विर[2] पर भी क्या क्या नाज़ हैं,
> खींचता है जिस क़दर उतना ही खिंचता जाय है।

उलटबासियाँ

इनके काव्यमें पेचसे घुमा-फिराकर, विरोधी शब्दों द्वारा भी किसी तथ्यकी अभिव्यक्ति की गयी है —

१ पूछ-ताछ स्वागत-सत्कार, २ चित्रकार।

के लिए, नामके लिए, पैसेके लिए। यही भौतिकताका स्तर उनका दोष है, पर यही उनका गुण भी है। उनके काव्यके सम्बन्धमें यही बात है। उनकी दृष्टि यथार्थ वस्तुकी दृष्टि है। एक पत्रमें लिखते हैं —

'मैंने नवाब मुख्तारुलमुल्कको क़सीदा भेजा, कुछ क़द्रदानी न फ़रमाई। "मसनवी" मुहीउद्दौलाको भेजी, रसीद भी न आई। एक कम सत्तर बरसकी उम्र हुई। सिवाय शोहरतके कुछ फल न पाया।

फिर लिखते हैं — 'मेरा मक़सूद तो इतना है कि इसीसे गुज़रें और कुछ हमारे-तुम्हारे हाथ आये।

निराशामें भौतिक तृष्णा इतनी यथार्थ हो उठी है कि साफ़-साफ़ लिखते हैं — मैं अभी शीला[1] के हुस्न और नज़ीरी[2] के शेरको काम और बेफ़ायदा और मौहूम[3] जानता हूँ। ज़ीस्त[4] बसर करनेको कुछ थोड़ी राहत दरकार है और बाक़ी हिकमत व सल्तनत व शायरी और साहिरी[5] सब ख़ुराफ़ात है। हिन्दुस्तानमें कोई औतार हुआ तो क्या, मुसलमानोंमें नबी बना तो क्या, दुनियामें नामआवर हुए तो क्या और गुमनाम जिये तो क्या? कुछ वजहे-मआश[6] हो और कुछ सेहत जिस्मानी[7] बाक़ी सब वहम।

इसीलिए उनकी शायरीमें दिलोंकी गहराइयाँ उतनी नहीं जितनी मस्तिष्क और कल्पनाकी उड़ानें हैं। यों कह सकते हैं कि शायरीसे अधिक शिल्प है।

ग़ालिबके काव्यका बहुत-सा भाग ऐसा है जिसमें अनुभूतियोंका दर्शन नहीं जिसकी गहरी पकड़ नहीं। वह बौद्धिक या चेतनात्मक स्पर्श मात्र बन-कर रह गया है। शेर दिमागको छूते हैं पर दिलको ठण्डा छोड़ जाते हैं। जैसे —

---

१ एक उस्ताद २ फ़ारसीका एक प्रसिद्ध कवि ३ भ्रमात्मक ४ जीवन ५ जादूगरी ६ जीविकाका साधन ७ शारीरिक स्वास्थ्य।

मुग़ल वैभवकी वेदनाओंका चित्रण पर उसके साथ आशाकी झलक तथा भूत एवं भविष्यको वर्तमानसे मिलानेकी चेष्टा पाई जाती है।

उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह यथार्थकी भूमिपर खड़ा है। उसमें निजी कामनाओंकी दुर्बलता है पर निर्माणकी आकांक्षा भी है। ग़ालिब अपने युगसे निराश था। उसे इतना यश मिला पर उसने उसे बहुत कम समझा उसे इतना संरक्षण प्राप्त हुआ पर वह और पानेके लिए होंठ निपोरता रहा। भीखका झटका देकर आश्रयदाताको दूर फेंक देना उसे कभी न आया। उसने अयोग्य लोगों एवं इस मुल्कको पामाल करनेवाले अंग्रेज अफ़सरोंकी प्रशंसामें क़सीदे कहे चौखटपर ज़िन्दगी बिताता रहा ख़ून उगलता रहा पर वर्मकी शराब पीता रहा। पर इसी अन्तर्द्वन्द्वमें उसने युग मानसको एक यथार्थताका स्वर दिया। उसमें भावनाका वेग बुद्धिसे नियन्त्रित है। उसकी कल्पना यथार्थके नीड़से उड़ती है पर फिर उसीमें लौट आती है। सब बुराइयोंके बावजूद उसमें हँस-हँसकर चोट खानेका सामर्थ्य है; वह हँसीके आँचलसे आँसुओंको पोंछता चलता है, वह ग़मको मुसकराते होंठोंसे पी जाता है वह अपनेपर, अपनी क़िस्मतपर, ज़िन्दगीपर हँसना जानता है—भीषणसे कठिनाइयोंको चुनौती देता चलता है। तकलीफ़में दर्दमें तूफ़ानमें भी चलना नहीं छोड़ता। जब पाँव ज़ख्मी हो जाते हैं तब सीनेके बल चलता है ‡ रुकता है और चलता है, पर चलता ज़रूर है।

जीवनके प्रति इस आस्थाके साथ उसके काव्यकी विषय-व्यापकता है

---

‡ एक फ़ारसी शेरमें ग़ालिबने कहा है— 'ज़िन्दगीकी एक ऐसी दुर्गम घाटीमें जहाँ ख़िज़्रकी रहनुमाई भी काम नहीं देती और जहाँ मेरे पाँव चलनेसे बेबस हैं वहाँ मैं सीनेके बल चल रहा हूँ।

श्री रशीद अहमद सिद्दीक़ीने लिखा है'— ग़ालिबने किसी हालमें अपना मान न खोया। वह हर जिस्मानी मौक़ेसे फटे हाल लेकिन मुसकराते हुए निकलते थे।'

जिसके विषयमें मैं सरदार जा'फ़रीके शब्दोंको यहाँ दोहरा भर देना चाहता हूँ:—

"'इसके साथ ग़ालिबकी मुतहर्रिक और रक्साँ इमेजरी है जो तस्वीरगरीकी मे'राज है। जब वह अपनी अछूती तस्वीरों और नादिर इस्तआरोंका जादू जगाता है तो एक-एक अक्षर नृत्य करने लगता है। ठहरे हुए नक़्श मुतहर्रिक हो जाते हैं मुजस्सिम ख़याल एक पैकरे रंगोबू बनकर सामने आ जाता है क़दम गर्मिए रफ़्तारसे चलने लगते हैं, सेहराके जिस्ममें रास्ते नब्ज़ोंकी तरह धड़कने लगते हैं बेजान पत्थरोंके सीनेमें नातराशीदा बुत नाचने लगते हैं आईनोंके जौहरोंमें पलकें लरज़ने लगती हैं शराबके प्यालोंको उठाये हुए हाथोंकी लकीरोंमें ख़ून दौड़ने लगता है। मा'शूक़की पुश्तसे दीवारोंमें जान पड़ जाती है। अर्थात्— 'इसके साथ ग़ालिबकी गतिशील एवं नर्तित इमेजरी है जो चित्रांकनकी पराकाष्ठा है। जब वह अपनी अछूती उपमाओं और अनुपम रूपकोंका जादू जगाता है तो एक-एक अक्षर नृत्य करने लगता है। स्थिर चित्र तरल बन जाते हैं। एकाकी विचार रंग एवं सुगन्धका शरीर धारण कर सामने आता है, चरण गतिके उत्साहसे चलने लगते हैं मरुस्थलकी कायामें मार्ग नाड़ी-तुल्य धड़कने लगते हैं बेजान पत्थरोंके सीनोंमें अनगढ़ी मूर्तियाँ नाचने लगती हैं आईनोंके जौहरोंमें पलकें कम्पित होने लगती हैं जिन हाथोंमें मधुपात्र होते हैं उनकी रेखाओंमें रक्त दौड़ने लगता है। मा'शूक़के चरणसे दीवारोंमें प्राण थिरकने लगते हैं। *

ग़ालिबकी सबसे बड़ी देन इन्सानके लिए उनका अदम्य प्यार और इस दुनियाके लिए उनकी कभी न बुझनेवाली तृष्णा है। वह संसारकी तृष्णाका कवि है। वह नहीं तो इस धरतीसे उनका सम्बन्ध बना रहता है। श्री रशीदअहमद सिद्दीक़ीने ठीक ही लिखा है— वह नहीं हैं

* 'दीवान-ग़ालिब की भूमिका बम्बई संस्करण पृ २०-२१।

उनका पाँव ज़मीनपर ही रहता है। किसी हालमें वह हमसे जुदा होना या जुदा रहना गँवारा नहीं करते। † निश्चय ही ग़ालिबने उर्दू की पुरानी शायरीको एक नया स्वर, एक नया अन्दाज़, एक नई दृष्टि दी और ग़ज़लको प्रेम-वचनके वाह्यतः जीवन-वचनका विषय बना दिया। विषय पुराना है पर उसे प्रस्तुत करनेमें कविका तेवर नया है। उसके काव्यमें अतीतका मोह, वर्तमानकी संपन्नता और भविष्यकी आशा है। उसमें उस रातकी वेदना है जिसमें माँ'शूक़की अदाएँ और अठखेलियाँ हैं, उसकी सौ-सौ चितवनोंकी चुभन है, उस महफ़िलका मातम है जो उजड़ चुकी है; उसमें उस शमाकी दास्ताँ है जो रातभर जलकर मौन हो चुकी है पर उसमें उस प्रभातीका जीवन-स्पर्श भी है जो दल-दल कलियोंके निहित नयन-पटल उन्मीलित कर देता है, इसके साथ ही उसमें उस भविष्यके चरणोंकी चमक है जो अभी दूर है पर जिसको आना ही है और जिससे कल जीवन-पथ मुखरित हो उठेगा।

---

† नक़्शे ग़ालिब' पृ ११७ ('कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या ?')

ग़ालिब तथा अन्य कवि

तुलना

मीर और ग़ालिब

प्राय: ग़ालिबकी तुलना 'मीर' तथा अन्य उर्दू कवियोंसे की जाती है। किसी कविके अध्ययनकी यह कोई उत्तम प्रणाली नहीं है फिर भी यह युग ही तुलनात्मक समीक्षाका है इसलिए इस विषयपर संक्षिप्त चर्चा कर देना अच्छा ही है। ग़ालिबके काव्यका रंग सबसे अलग है। वह किसी उर्दू कविको अपने सामने कुछ समझते न थे। आरम्भमें जब उन-पर फ़ारसीयतका रंग चढ़ा हुआ था वह अपने उर्दू काव्यको भी तुच्छ समझते थे और कहा करते थे कि मेरा महत्त्व आँकना हो तो मेरे फ़ारसी काव्यको देखो। इसलिए उनकी किसी उर्दू कविसे तुलना क्या करें? पर इतना मानना पड़ेगा कि यदि किसी उर्दू कविसे वह विशेष प्रभावित थे तो वह कवि 'मीर' थे। वह दूसरे कवियोंकी प्रशंसा बहुत कम करते थे किन्तु 'मीर'की प्रशंसा उन्होंने कई स्थानोंपर की है। अपने शिष्योंको जो पत्र लिखे हैं उनमें भी 'मीर'के शेर बार-बार उद्धृत करते हैं। उत्तर कालमें जब उनकी तूफ़ानी कल्पनाओंमें एक सामञ्जस्य आया और बेदिल, असीर तथा फ़ारसीयतका नशा कुछ धीमा पड़ गया तब वह ज़मीनपर उतरे और 'मीर'की उनकी शैलीका अनुकरण किया तो ऐसी बहरोंमें जो ग़ज़लें लिखीं वे उनकी सर्वोत्तम ग़ज़लोंमेंसे हैं और सामान्य लोगोंकी ज़बान-पर चढ़ गयी हैं।

इस प्रभावके होते हुए भी ग़ालिबकी जीवन-दृष्टि मीरकी जीवन-दृष्टिसे बिलकुल भिन्न है। मीर अन्त तक अपनी दुनियामें खोये हुए हैं। उनमें

आत्म-विस्मरणका तत्त्व बहुत अधिक है। वह यह सोचकर बहुत कम लिखते हैं कि दूसरे लोग भी हमारी कविता पढ़ेंगे। अक्सर देर बड़ी समय वह पद्यके वातावरणमें डूब जाते हैं और आत्मविस्मृति एवं निमग्नताकी वह अवस्था आ जाती है कि लोग आते हैं सलाम करते हैं, बैठते हैं और उठकर चले भी जाते हैं पर उन्हें कोई खबर नहीं होती। लखनऊमें आया है पर अपने आशायानके सौन्दर्यमें ऐसे डूबे कि उसकी तरफ खिड़कियाँ नहीं खुलतीं न यही खयाल होता है कि यहाँ कोई बाग भी है। यह तत्त्व उनमें अपने सूफी पिता और चचा तथा उस वातावरण-से आया है जिसमें उनका बचपन बीता।

जीवन-वृत्तिकी विफलता

ग़ालिब प्रधानतः बाह्य-जगत् और उसके वैभवके कवि हैं। उनके मज़े इसी दुनिया तक हैं। आन्तरिक जगत्में प्रवेश करते भी हैं तो घर वहाँ कभी बन्द नहीं करते घूम रहते हैं, बल्कि होशियार रहते हैं कि निकलनेका रास्ता बन्द न हो जाय। और अन्तर्जगत्की एकाध झाँकी लेनेके बाद, फिर अपनी दुनियामें और अपनी ज़मीनपर लौट आते हैं। इसमें 'मीर'का आत्मविस्मरण कहीं नहीं दिखाई पड़ता। उन्हें अपना कलाम सुननेकी उत्कण्ठा अधिक मात्रामें रहती है। जब नज़दीक कोई नहीं रहता तो दूरके शिष्यों एवं मित्रोंको पत्रोंके द्वारा अपना कलाम सुनाते वे नहीं चूकते।

इस धरतीके कवि

'मीर' अरबीके अच्छे जानकार एवं फ़ारसीके उस्ताद एक फ़ारसी दीवानके रचयिता तथा कई गद्य-पुस्तकोंके लेखक होकर भी भारतीय वातावरणमें साँस लेते हैं, वह दिल्लीमें दिल्ली-के होकर रहते हैं, उर्दूमें फ़ारसी तरकीबोंका सही और सुन्दर प्रयोग करके भी वह उर्दूके ही हैं उर्दूपर उनको गर्व है। ग़ालिब जब उर्दू लिखते हैं तब भी

दिल्ली और ईरान-का वातावरण

फ़ारसीमें अनपर ग़ालिब रहती है। उर्दूके प्रति उनमें तुच्छताका भाव है। भावना एवं दृष्टिकोणसे वह इतनी अधिक भारतीय कम है। दिल्लीमें रहते हुए भी वह ईरानके निवासी मालूम पड़ते हैं। जहाँतक गहराईका सम्बन्ध है उर्दूका दूसरा कोई कवि मीर तक नहीं पहुँचता। पर जहाँ तक विस्तृतिका सम्बन्ध है ग़ालिब सबसे आगे हैं।

मीर सरल दिलसे सीधे ज़बानपर आनेवाली भाषाका प्रयोग करते हैं। ग़ालिब भावोंको घुमा-फिराकर उसमें गहरा पेंच पैदा करनेकी कोशिश करते हैं। दिमाग़ चूर करना पड़ता है तब उनका मतलब समझमें आता है। ग़ालिबके पूर्वार्ध जीवनका काव्य तो हिन्दी कवि केशवकी भाँति (जिन्हें 'कठिन काव्यका प्रेत' कहा गया है) जान-बूझकर दुर्बोध बनाया हुआ काव्य है। जनाब 'असर' लखनवीने ग़ालिबका ही एक शेर उद्धृत करके इस विषयपर प्रकाश डाला है

ग़ालिबकी क्लिष्टता

> लेता न अगर दिल तुम्हें देता कोई दम चैन,
> करता जो न मरता कोई दिन आहो फ़ुग़ाँ और।

जब किसीने इसका मतलब पूछा तो ग़ालिबने कहा

"यह बहुत अच्छी तक़रीर[1] है। लेनाको रब्त[2] देनेसे करता मरबूत[3] है [illegible]। अरबीमें ता'क़ीद लफ़्ज़ी[4] व मा'नवी[5] दोनों मा'यूब[6] हैं। फ़ारसीमें ता'क़ीदे मा'नवी ऐब और ता'क़ीद लफ़्ज़ी जायज़ बल्कि फ़सीह व मलीह। ऐसी तक़रीर[7] है फ़ारसीकी। हासिल मा'नी मिस

---

१ सुन्दर वाणी २ सम्बन्ध ३ सम्बद्ध प्रसंगयुक्त ४ किसी वाक्य या शेरमें शब्दोंका ऐसा उलट-फेर जिससे अर्थ बदल जाय ५. किसी वाक्य या शेरमें किसी शब्दका ऐसा अर्थ लेना जो उसके साधारण अर्थके विपरीत हो ६ दूषित ७ सरल एवं प्रभावित ८. सुन्दर, लावण्ययुक्त ९. अनुकरण।

ठीक ही लिखा है— 'मीर' रूमानी (रोमैंटिक) शायर था और ग़ालिब रूमानियत । मीरकी शायरीमें सब्जीक्त (सब्जैक्टिटी) प्रधान है; ग़ालिब-की शायरी करक्टर (कैरेक्टर) की ग्राहिनी चार है।

मीरका प्रभाव

मीरमें अनुभूति प्रधान है। ग़ालिबमें कल्पना प्रधान है। मीरका काव्य भावावेश भावानुभूतिकी प्रबलताका चित्र है, ग़ालिबमें अभिव्यञ्जनाका माधुर्य एवं अर्थ-गाम्भीर्य है। मीरमें तरकीब भी है पर अर्थ (मानी) समन्वित ग़ालिबमें वह अर्थपर छा गई है।*

फिर भी जैसा मैं कह चुका हूँ ग़ालिब मीरसे काफ़ी प्रभावित है। अनेक स्थानोंपर तो भाव क्या शब्द भी टकरा गये हैं। देखिए—

मीर :

हाला है याँ जहाँमें हर रात्रोसम तमाशा,
देखा जो खूब तो है दुनिया अजब तमाशा।

ग़ालिब :

बाज़ीचए इतफ़ाल है दुनिया मेरे आगे,
होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे।

मीर

बेखुदी ले गयी कहाँ हमको,
देरसे इन्तज़ार है अपना।

ग़ालिब

हम वहाँ हैं जहाँसे हमको भी
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।

---

*'अपर मुग़'ल्स ग़ालिब पृ ९।

मीर

इश्क उनको है जो यारको अपने दमे रफ़्तन¹,
करते नहीं ग़ैरतसे ख़ुदाके भी हवाले।

ग़ालिब

क़्यामत है कि होवे मुद्दईका हमसफ़र 'ग़ालिब',
वह काफ़िर जो ख़ुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे।

मीर

आदमे ख़ाकीसे आलमको जिला² है वर्ना,
आइना था तो मगर क़ाबिले दीदार³ न था।

ग़ालिब

लताफ़त बेकसाफ़त जल्वा पैदा कर नहीं सकती,
चमन जंगार है आईनए बादे बहारीका।

कहीं ज़मीन मिलती है, कहीं भाव मिलते हैं। जो साम्य है वह मालूम कम या अधिक है। एक ही तरह की पंक्तियोंमें यह समता अधिक दिखाई पड़ती है—

मीर:

क्या तरह है आशना गाहे गहे नाआशना,
या तो बेगाने ही रहिए हूजिए या आशना।

ग़ालिब

खुदपरस्तीसे रहे बाहम दिगर नाआशना,
बेकसी मेरी शरीक आइना तेरा आशना।

---

१ विदा या प्रयाणके समय मरनेके वक़्त २ आभा चमक ३ देखने योग्य।

मीर :

दिल इश्क़का हमेशा हरीफ़े नबर्द[1] था,

ग़ालिब

धमकीमें मर गया जो न बाबे नबर्द था।

मीर

मरते हैं तेरी नर्गिसे बीमार देखकर,
जाते हैं जीसे किस क़दर आज़ार देखकर।

ग़ालिब

क्यों जल गया न ताबे रुख़े यार देखकर
जलता हूँ अपनी ताक़ते दीदार देखकर।

कहीं-कहीं तो मीरके पदके पद ग़ालिबमें मिलते हैं—

मीर

तेज़ यूँ ही न थी शब आतिशे शौक़[2],
थी ख़बर गर्म उनके आनेकी।

ग़ालिब

थी ख़बर गर्म उनके आनेकी
आज ही घरमें बोरिया[3] न हुआ।

मीर :

न हो क्यों ग़ैरते गुलज़ार वह कूचा ख़ुदा जाने
लहू उस ख़ाकपर किन-किन अज़ीज़ोंका गिरा होगा।

---

१ युद्धमें प्रतिद्वन्द्वी २. उत्कण्ठाकी अग्नि ३ (खजूरकी) चटाई।

ग़ालिब

ख़ुदा मालूम किस किसका लहू पानी हुआ होगा

क़यामत है सरश्क आलूदः होना तेरी मिज़गाँ का।

मीर :

आवेगी एक बला तेरे सिर सुन ले ऐ सबा,

ज़ुल्फ़े सियहका उसके अगर तार जायगा।

ग़ालिब

हम निकालेंगे सुन ऐ मौजे सबा बल तेरा,

उसकी ज़ुल्फ़ोंके अगर बाल परीशाँ होंगे।

एक ज़मीनपर लिखते हैं पर दोनोंके दृष्टिकोणकी भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। 'मीर' कभी प्रियतमासे शिकायत करते हैं यहाँतक कि उलझते भी हैं तो भी मर्यादाको नहीं छोड़ते शिकायत बात-चीत तक रह जाती है, कर्ममें नहीं रूपान्तरित होती।

शिकवा करूँ हूँ बख़्तका इतने ग़ज़ब न हो बुताँ,

मुझको ख़ुदा न ख़्वास्ता तुमसे तो कुछ गिला नहीं।

× ×

माफ़ किया न कर गुना, नौहे पै मेरे अन्दलीब

बाग़में बाग़ पेश है, मैंने तुझे कहा नहीं।

बल्कि उनकी उच्च नैतिकता अपनेसे ही शिकायत आत्म-प्रताड़ना करती है

इतनी भी बद-मिज़ाजी हर लहज़ा मीर तुमको,

उलझाव है ज़मींसे झगड़ा है आसमाँ से।

---

१ अश्रुपूरित २ पलकें ३ पुरवैया मृदुसमीर ४ शिकायत ५ रोदन ६ बुलबुल।

ग़ालिब तो दया-प्रार्थनाके असफल होनेपर पुष्कई तक पर तुल जाते हैं, यही सामग्री यम

इज्ज़-नियाज़से तो वह आया न राहपर,
दामनको आज उसके हरीफ़ाना[*] खींचिए।

'मीर' में सादगी है। उनके कलाम अन्से सुलझे हुए हैं। उनमें लोकवाणीकी छाया है। लोक-जीवन बोलता है। ग़ालिबमें बनावट घुमाव शृंगार-सजावट है। वह बातको संक्षेपमें और जटिल रूपमें कहते हैं। उनकी वाणी उच्चवर्गकी वाणी है।

ग़ालिबकी ज़बानमें वह सफ़ाई नहीं जो मीरमें है, न वह घुलावट वह तड़प वह बेचैनी और वह दर्द है जो 'मीर' में प्राय मिलता है। पर 'मीर' के काव्यमें वह समतलता (हमवारी) नहीं जो ग़ालिबमें है। जहाँ मीरके शेर अच्छे हैं वहाँ बहुत अच्छे हैं। पर उनका बहुत-सा काव्य सामान्य कोटिका है। कदाचित् इसका कारण यह हो कि ग़ालिबको मीरके मुक़ाबले बहुत कम मिला उनका काव्य-विस्तार बहुत कम है या उनकी चुनी हुई ग़ज़लें ही उपलब्ध हैं।

ग़ालिब और मोमिन :

ग़ालिब (१७९७ ई०—१८६९ ई०) और मोमिन (१७९८–१८५१ ई०) दोनों एक ही कालके कवि हैं। मोमिनकी मृत्यु ग़ालिबके जीवन-कालमें ही हो गयी थी। मोमिनकी भाषा बहुत साफ़ है उनमें कल्पनाकी तरलता एवं सूक्ष्मता है, दार्शनिक चुनाव प्रशंसनीय है। उनकी तबीयत ग़ज़लगोईके लिए बहुत उपयुक्त थी अपनी अनुभूतियोंकी अभिव्यक्तिमें उन्हें कमाल हासिल था पर वह ग़ालिबकी भाँति दर्शनके

---

[*] प्रतिद्वन्द्वीकी भाँति।

दाँव-पेंच और व्यंजनाकी युक्तियोंमें उलझ गये और उर्दू काव्य उनकी प्रतिभाका काम उस सीमातक नहीं चला सका जिस सीमा तक चल सकता था।

श्री मुहम्मद एकरामने ठीक ही लिखा है— 'दोनोंको कुदरतने शायराना दिल व दिमाग़ दिये थे दोनोंमें कुदरतसन्नी बहुत थी। दोनों फ़ारसीके

समता

मद्दाह[1] और मुक़ल्लिद[2] थे और दोनोंकी कलाममें फ़ारसीयत और तसन्नो[3] का अंसरे[4] नुमायाँ[5] है। दोनों मानी आफ़रीनी[6] और ख़याल बन्दी[7] पर फ़िदा थे। दोनों क़दीम और मज़मूनमें ऊँचे तबक़े[8] के क़द्रदान[9] थे। नाज़ुक ख़याली और दिक़्क़तपसन्दीके मालिक और मोमिन दोनो शिकार थे और पुराने मज़ामीनके लिए नये असलूबे बयान[10] इख़्तराअ[11] करनेमें दोनों बड़ा ज़ोर व दिमाग़ सर्फ़[13] करते थे। इस मक़सद[14] के हुसूल[15] के लिए दोनो एक ही तरहका तकल्लुफ़-फ़न[16] (Mannerism) इस्तेमाल करते हैं। महज़ूफ़ातके[17] दोनों आदी हैं। और दोनोंके कई अशआरमें किसी वाक़्ये या हालत का बयान करते हुए कई ऐसे अज्ज़ा[18] छोड़ दिये गये हैं जिन्हें पूरा करनेके लिए दिमाग़पर ज़ोर देना पड़ता है। ग़ालिबका मशहूर शेर है—

> क़फ़समें मुझसे रूदादे चमन कहते न डर हमदम,
> गिरी थी जिसपे कल बिजली वह मेरा आशियाँ क्यों हो?

---

१ प्रशंसक २ अनुकरणकर्ता ३ बनावट ४ तत्त्व ५ प्रकट ६ अर्थ-वैचित्र्य ७ कल्पनाकी उड़ान ८ पाठक ९ कोटि, १० रूपान्तरकार अनुवादक ११ अनोखा ढंग १२ उत्पन्न करने, निकालने १३ श्रम १४ उद्देश्य १५ प्राप्ति १६ शिल्प-शैली १७ शब्द-लोप १८ अंश।

इस ज़मीनके मतलआ कुल्लियाते मोमिनमें दर्ज है—

"ऐ काश उदू[१] को ग़ैरत आये,
मैं मुन्तज़िर अपनी मौतका हूँ।
मेरे तग़य्युरे रंग[२] को मत देख,
तुमको अपनी नज़र न हो जाये।"

ग़ालिबकी विशेषता

पर ग़ालिबमें एक विशेषता थी वह ज़मानेसे सीखते थे। अपनी काव्य-कलामें सदैव नूतन प्रयोग करते रहते थे तथा श्रम करते थे। इस लिए उत्तरकालके उनके काव्यमें वह नाज़ुक-ख़्याली और दिमाग़-पसन्दी जो उनकी विशेषता थी कम होती गयी। ग़ालिब और मोमिन दोनोंमें मैत्री थी और दोनों शेर कहनेकी कलामें अपने बराबर किसीको न मानते थे परन्तु जहाँ ग़ालिबने इस बातके होते हुए भी अपने काव्यमें निरन्तर संशोधन और सुधारका प्रयत्न किया मोमिनने नहीं किया। फिर भी तग़ज़्ज़ुल और मुआमिलाबन्दीमें मोमिन ग़ालिबसे आगे हैं।

मोमिनमें ग़ज़लकी 'तर्ज़े-अदा' (अभिव्यञ्जना) मिलती है। उनके निम्नलिखित शेरको सुनकर वज्दमें झूमे हुए ग़ालिब भी झूम पड़े थे और कहते थे— 'काश मोमिन ख़ाँ मेरा सारा दीवान ले ले और यह शेर मुझे दे दे।"

तुम मेरे पास होते हो गोया
जब कोई दूसरा नहीं होता।

इन दोनों कवियोंके भाव भी अक्सर टकरा गये हैं। ढंग अलग-अलग पर ज़मीन एक है। कुछ शेर देखिए—

---

१ दुश्मन २ रंग-परिवर्तन।

मोमिन

अब तुम जो पास ग़ैरमें आँखें चुरा गये,
खोये गये हम ऐसे कि अग़्यार[1] पा गये।

ग़ालिब

ग़म है शर्मेतग़ाफ़ुल[2] पर्दादारे राज़े इश्क़,[3]
पर हम ऐसे खोये जाते हैं कि वह पा जाय है।

मोमिन

छूटकर कहाँ असीरे मुहब्बतकी[4] ज़िन्दगी,
नासेह! यह बंदेग़म नहीं क़ैदे हयात है।

ग़ालिब :

क़ैदे हयात वो बंदेग़म अस्लमें दोनों एक हैं,
मौतसे पहिले आदमी ग़मसे नजात पाये क्यों?

ग़ालिब

दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है?
आख़िर इस दर्दकी दवा क्या है?

मोमिन

मरीज़े इश्क़ पर रहमत ख़ुदाकी,
मरज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।

ग़ालिब

काबा किस मुँहसे जाओगे 'ग़ालिब'
शर्म तुमको मगर नहीं आती।

---

१ प्रतिस्पर्धी २ उपेक्षाका ढंग ३ प्रेम रहस्यको छिपानेवाला ४ प्रेम-बन्दी ५. जीवन-बन्धन।

मोमिन

> उम्र सारी तो कटी इश्क़े बुताँमें 'मोमिन'
> आख़िरी वक़्तमें क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे ?

ग़ालिब और दाग़

'दाग़' वस्ल-मिलनके उस्ताद हैं, ग़ालिब दर्द-वैफल्यके पर एक ही ज़मीनमें कहे हुए दोनोंके कई शेर मिलते हैं —

ग़ालिब

> दरियाए मआसी[1] तुनुक आबीसे[2] हुआ ख़ुश्क
> मेरा सिरे दामन भी अभी तर न हुआ था।

दाग़

> यह मैं हज़ार जगह हश्रमें पुकार आया
> कि और भी कोई मुझसा गुनाहगार आया ?

जुदाईका मज़मून पुराना है। विरह-वेदनाका पार कौन पा सका है ? पातियाँ लिखी जाती हैं। लिखनेमें मिलनका स्वाद है इसलिए पत्र लम्बे होते जाते हैं। सन्देश-वाहक (दूत नामा-बर) को सन्देश देर हो रही है डर भी है कि लम्बा पत्र देखकर और न चिढ़ जाय। इसी ज़मीनपर दोनों कहते हैं —

ग़ालिब

> न दे नामेको इतना तूल 'ग़ालिब' मुख़्तसर लिख दे
> कि 'हसरत संज हूँ[3] अर्ज़े सितमहाए जुदाईका[4] !"

---

१ पाप-नद २ जलाभाव ३ प्रश्न ४ विरहके ज़ुल्मोंकी दास्तानोंको व्यक्त कर रहा हूँ।

दाग़

ख़तमें था और कुछ तो हमारी मजाल क्या,
इतना ही लिखके भेज दिया है—"तरस गये।"

दाग़का संयम देखिए, जैसे दाग़के मन्त्र हों। ग़ालिबमें न उत्कण्ठाका जोश है, न बेचैनी है, जैसे अपना नहीं किसी दूसरेका अनुभव बयान कर रहे हों।

ग़ालिब

क़यामत है कि होवे मुद्दईका हमसफ़र 'ग़ालिब'
वह काफ़िर जो ख़ुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे।

दाग़

दावरे हश्र[1] से अब हक़ है उमीदे इंसाफ़
क्या करेंगे जो पसंद उसकी अदाएँ आईं।

ग़ालिब कहते हैं कि वो मेरे लिए इतना प्रिय है कि जुदाईके समय 'ख़ुदा हाफ़िज़' कहके या उसे ख़ुदाको सौंपनेमें भी मैं असमर्थ हूँ (किसी भी दूसरेको फिर चाहे वह ख़ुदा ही हो उसे सौंपनेको तैयार नहीं) कैसा ग़ज़ब है कि वही मेरे प्रतिद्वन्द्वीका सहगामी हो (उसके साथ चला जाय।)

ग़ालिबकी प्रियतमा ऐसी है कि उसके बारेमें वह ख़ुदापर भी भरोसा करनेको तैयार नहीं वही विरोधीके साथ चली गयी तब परिणाम क्या होगा।

दाग़की प्रियतमा ऐसी है कि उसकी ज़्यादतियोंका इन्साफ़ प्रलयके समय ख़ुदासे करानेका आसरा तो लगाये बैठे हैं पर डरते हैं, कहीं उसकी अदाएँ ख़ुदाको भी पसन्द आ गयीं तब मैं क्या करूँगा?

---

१ प्रलयके दिन न्याय करनेवाला ईश्वर।

ग़ालिब

हवा मुख़ालिफ़ो शबतारो बह्र तूफ़ाँख़ेज़,
गसस्त लंगरे कश्ती व नाख़ुदा ख़ुफ़्त अस्त।*

दाग़ :

पा बिरहना दश्त वीराँ, दूर मंज़िल राह सख़्त,
तू बता ऐ शामे ग़ुर्बत, मैं करूँ तो क्या करूँ।

ग़ालिब कहते हैं कि हवा प्रतिकूल है, रात अँधेरी है समुद्रमें तूफ़ान उठ रहे हैं, नौकाका लंगर टूट गया है, और कर्णधार सुप्त है। पर यह परिस्थितिका मार्मिक चित्र मात्र है। इस परिस्थितिमें ख़ुद उनकी नौकाके आरोहियोंकी क्या हालत है, यह कुछ नहीं बताते।

दाग़की तड़प

'दाग़'का चित्र अधिक स्पष्ट है, स्थिति भी अधिक दर्दनाक है। 'ग़ालिब'के पास कश्तीका कर्णधार है। क्या हुआ जो सो गया है। उसे जगाया जा सकता है। कश्ती उलट जाय तो भी दरियामें तैरा जा सकता है, हाथ-पाँव तो मार ही सकते हैं। पर 'दाग़' तो अकेले हैं कहीं कोई नहीं। नंगे पाँव निर्जन वन प्रान्त या मरुभूमि मंज़िल दूर है, रास्ता कठिन शाम हो गयी है। ऐसे समय क्या उपाय है? दाग़की भाषामें प्रवाह और दर्द है।

ग़ालिब

यह मसायले तसव्वुफ़[1] ये' तेरा बयान 'ग़ालिब',
तुझे हम वली[2] समझते जो न बादाख़्वार[3] होता।

---

* हाफ़िज़का शेर है—

शबे तारीको बीमे मौजो गर्दाबे चुनीं हाइल।
कुजा दानिन्द हाले मा सुबुकसाराने साहिलहा॥

१ ईश्वरानुभूति (तसव्वुफ़) की समस्याएँ, २ पहुँचा हुआ साधु, सिद्ध ३ शराबी।

दाग़ :

वाक़िफ़[1] रमूज़े[2] इश्क़को मुहब्बतसे 'दाग़' है,
मिलता अगर तो पूछते कुछ इस वलीसे हम।

ग़ालिबमें अन्तर्विरोध है, दाग़में सामञ्जस्य है।

ग़ालिब :

इशरते क़तरा है दरियामें फ़ना हो जाना,
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।

दाग़

कमाले इश्क़ है पै दाग़ महो हो जाना,
मुझे ख़बर ही नहीं नफ़अ क्या ज़रर[3] क्या है।

ग़ालिब समुद्रमें बूँदके विलीन हो जानेको बूँदका ऐश्वर्य मानते हैं। ऐसा करनेसे बिन्दुको अपने असीमका लाभ मिल जाता है। दर्दका सीमासे बढ़ जाना असीम हो जाना ही उसकी दवा है। (गोया फ़ना ही दवा है।)

दाग़ प्रेमकी अधिक ऊँची स्थितिमें हैं। वह कहते हैं कि निमग्न हो जाना ही प्रेमकी सीमा है, आदर्श है। मैं नहीं जानता कि हानि-लाभ क्या है? (दाग़का प्रेम हानि-लाभके विचारसे परे है, जब ग़ालिबमें एक बचाव एक 'रिज़र्व' है।)

ग़ालिब

सब कहाँ कुछ लाल:ओ गुलमें नुमायाँ हो गयीं,
ख़ाकमें क्या सूरतें होंगी कि पेनहाँ हो गयीं।

---

१ जानकार २ प्रेम-प्रीतिका रहस्य ३ हानि।

ज़ौक़

> नहीं सबात बुलन्दीए इज़्ज़ोशाँके लिए,
> कि साथ औज के पस्ती है आस्माँके लिए।

ग़ालिब कहते हैं कि प्रियका अत्याचार मेरे प्राणके लिए शाश्वत नियम है क्योंकि उसने सितमका हर एक ढंग मुझीपर ख़त्म कर दिया है और आस्माँके लिए कुछ नहीं छोड़ा है। (आस्मान मुझे क्योंकर सतायेगा? उनके ज़ुल्म सह-सहकर मैं ऐसा हो गया कि आस्मानके ज़ुल्म-ज़ुल्म न रहे।)

ज़ौक़ नीतिकी बात कह रहे हैं कि मान-सौभाग्य या ऐश्वर्यकी उच्चता सदा नहीं रहती उसमें स्थिरता नहीं है। आसमानमें ऊँचाई है (ऊँची हमें दिखाई देती है) पर पस्ती गिरावट निचाई (क्षितिजमें दिखाई देती है) भी लगी हुई है। थोड़ा मस्तियानीके शब्दोंमें 'मिर्ज़ाके मज़मूनमें मानी-आफ़रीनी तो बहुत है मगर मज़मून नेचुरल नहीं मानी हाशियेसे बरी है।" ज़ौक़में स्वाभाविकता अधिक है, ग़ालिबमें वैचित्र्य है।

ग़ालिब

> फ़लक न दूर रख उससे कि मैं ही नहीं,
> दराज़ दस्तिए क़ातिलके इम्तहाँके लिए।

ज़ौक़

> यह मोल लेते हैं जिस दम कफ़न नई तलवार,
> लगाते पहिले मुझीपर हैं इम्तहाँके लिए।

दराज़दस्तीका तात्पर्य ज़ुल्मसे है पर 'दराज़' शब्दसे ध्वनि यह निकलती है कि 'ज़ुल्म दूरसे हो रहे हैं इसलिए ऐ आस्माँ! तू मुझे उनसे दूर न रख

---

१ स्थिरता २ उत्थान ३ पतन नीचाई ४ सितम अत्याचार।

उसके नज़दीक कर दे क्योंकि दूरके चुम्बनसे ज़ालिम सहनेके लिए तो और भी ज़ोम मौजूद है। (उनकी निकटतामें आनेके लिए क्या हक है!) यद्यपि वैचित्र्य तो इसमें खूब है पर कृत्रिमता आ गयी है। ज़ौक़ने अपनी बात बड़ी सरल रीतिसे कही है। कल्पनाकी सूक्ष्मतामें ग़ालिब बाज़ी ले गये हैं स्वाभाविकता और बेतकल्लुफ़ीमें ज़ौक़ बाज़े हैं।

ग़ालिब

> यह लाश बेकफ़न 'असद' ख़स्ता जाँकी है,
> हक़ मग़फ़िरत[1] करे, अजब आज़ाद मर्द था।

ज़ौक़

> कहते हैं आज 'ज़ौक़' जहाँसे गुज़र गया,
> हक़ मग़फ़िरत करे अजब आज़ाद मर्द था।

कहते हैं 'ज़ौक़'ने मरनेके चन्द मिनट पहले यह शेर कहा था।

मिर्ज़ा यद्यपि जीवनकी तृष्णाके कवि हैं और उनके ग़ममें भी एक प्रकारका आह्लाद एवं उल्लास है पर जब ग़म आता है तो घबरा जाते हैं —

> हैराँ हूँ दिलको रोऊँ कि पीटूँ जिगरको मैं
> मक़दूर[2] हो तो साथ रखूँ नौहागर[3] को मैं।

यह सामर्थ्यकी अभिलाषा तो देखिए कि ख़ुद रोना भी नहीं चैनसे एक रोदक रखनेकी तमन्ना दिलमें रखते हैं।

उधर ज़ौक़ नैतिकता और सदाचरणके बन्दे हैं। दुःख-सुख दोनोंमें चुप हैं। उनकी केवल इतनी-सी माँग है कि ईश्वर ऐसा दिल दे जो रंजकी घड़ियोंको हँसी-ख़ुशीके साथ झेल ले जाय —

---

१ ईश्वर क्षमा करे, २. सामर्थ्य ३. रोनेवाला।

दिल दे तो इस मिज़ाजका परवरदिगार दे,
जो रंजकी घड़ी भी ख़ुशीसे गुज़ार दे।

किसीका एहसान और अवलम्ब न लेनेकी भावना दोनोंमें प्रधान है —

दीवार बार[1] मिन्नते मज़दूरसे है ख़म[2],
ऐ ख़ानमाँ ख़राब न एहसाँ उठाइए।
—ग़ालिब

न पकड़ें थामने इख़्लासें गिरते वक़्तमें हम
कि बदतर डूबकर मरनेसे है जीना सहारे का।
—मीर

तसव्वुफ़का रङ्ग, प्रेमप्रणय-वर्णन एवं रिन्दाना शोख़ीमें ग़ालिब मीरसे बढ़े हुए हैं और इसीलिए उनके कलाममें अर्थवैचित्र्य, कल्पनाकी उड़ान और कथनकी नवीनता (जिद्दतपसन्दी) है। नैराश्यका रङ्ग, बयानकी सफ़ाई, ज़बानकी सादगी और मुहाविरेके लिहाज़से मीर ग़ालिबसे आगे हैं।

सौदा और ग़ालिब

यद्यपि दोनोंके कलाममें बहुत ज़्यादा समता नहीं पाई जाती पर दोनोंकी ख़्याल और तबीयत एक-सी थी। दोनोंमें उत्कृष्टता और तमन्नाके तत्त्व अधिक हैं। दोनोंमें शोख़ी है। हाँ ग़ालिबकी भाषामें निखार आ गया है।

अन्य कवि

कहीं-कहीं अन्य कवियोंके भावोंके साथ भी ग़ालिब टकरा गये हैं —

१ बोझ २ टेढ़ी ३ एक पैग़म्बर जो (हमारे लोमशकी भाँति) सदा जीवित रहते हैं, समुद्रोंके संरक्षक हैं और डूबतोंको बचानेका काम करते रहते हैं ४ विपत्तिकी भँवरमें।

ग़ालिब

सताइशगर[1] है जाहिद[2] इस क़दर जिस बाग़े रिज़्वाँका[3],
वह इक गुलदस्ता है हम बेख़ुदोंके ताक़े निसियाँका[4]।

अमीर मीनाई

बहारे दामन दिल देख अगर शौक़े तमाशा है,
बहिश्त[5] एक फूल मुरझाया हुआ है इस गुलिस्ताँका।

ग़ालिब कहते हैं— "जाहिद जिस स्वर्गोद्यानकी इतनी प्रशंसा कर रहा है वह हमारे लिए केवल ऐसा पुष्प-गुच्छ है जिसे हम ताक़पर रखकर भूल गये हैं।"

अमीर मीनाईकी बात साफ़ है और उसमें शोख़ीका स्वर है। कहते हैं, अगर देखनेका तमाशेका शौक़ है तो दिलके चमन—हृदय—बसन्त को देख। स्वर्ग तो इस (दिलके बसन्तके) पुष्पोद्यानका एक मुरझाया हुआ फूल मात्र है।

ग़ालिब और फ़ारसी कवि

ग़ालिब फ़ारसीके उस्ताद थे। उसके ज्ञानका उन्हें गर्व था। उन्होंने फ़ारसीके कवियोंका गहरा अध्ययन किया था और ख़ुदपसन्दीका यह आलम था कि सिवा ख़ुसरोके किसीको कुछ न समझते थे। फ़ैज़ीकी तारीफ़ भी खुलकर नहीं की है। आश्चर्य तो यह है कि फ़ारसीमें ख़ुसरो और उर्दूमें मीरकी तारीफ़ तो करते हैं पर अपनी काव्य-शैलीमें उनका अनुकरण बहुत ही कम करते हैं। ख़ुसरो और मीर सादा एवं भावपूर्ण काव्यके प्रेमी थे ग़ालिबके कलामपर मुश्किलगोईका मुलम्मा छाया हुआ है। ग़ालिबमें कल्पनाकी उड़ान एवं अलंकरण भी दोनोंसे अधिक है। उनकी उपमाएँ एवं

---

१ प्रशंसक २ तपस्वी विरक्त ३ स्वर्गोद्यान ४ वह ताक़ जिसमें किसी चीज़को भूलनेके लिए रख दिया जाता है ५. स्वर्ग।

व्यंग भी दोनोंमें अच्छे हैं। तबीयत और विचारस्वातन्त्र्यकी दृष्टिसे ग़ालिब फ़ैज़ीके अधिक नज़दीक है। उदारताके कारण ही फ़ैज़ीपर पुरानी परम्परा-के मुस्लिम धर्माचार्योंने ये दोष किये कि इस्लामसे उसका विश्वास ही मिट गया था। स्वयं कहता है —

अगर हक़ीक़ते इस्लाम दर जहाँ ईं अस्त
हज़ार ख़न्दए कुफ़्र अस्त बर मुसल्मानी।

अगर दुनियामें इस्लामकी हक़ीक़त यही है तो मुसल्मानीपर कुफ़्र सहस्र मुख प्रकाशमान है।

उसने बार-बार प्रेमकी राहको धर्मकी राहपर तर्जीह दी है। कहता है, काबा और विहार-विश्रामपर क्या ध्यान दूँ तीव्र गतिसे चलने-वालोंको इन बूढ़ोंकी भाँति फ़ुर्सत कहाँ है? फिर कहता है—

कारवाने का'बः ख़ुद मंज़िलनशीं
रहरवाने इश्क़ रा आराम नेस्त।

काबेका कारवाँ तो मंज़िलपर बैठा हुआ है। किन्तु प्रेमके पथिकोंको विश्राम कहाँ?

ग़ालिबने भी धार्मिक कट्टरताको बार-बार चुनौती दी है, स्वर्गका मज़ाक उड़ाया है, खुदाकी ओर तक सन्देह भरा इशारा किया है पर आश्चर्य है कि फ़ैज़ीकी प्रशंसा खुलकर नहीं करते। बात यह है कि फ़ैज़ीमें जो जोश है, जो गहराई है वह ग़ालिबमें नहीं। फ़ैज़ी और इक़बाल दार्शनिक थे और अपने तत्त्वान्वेषणमें बार-बार बुद्धिकी पंगुता अनुभव करते हैं। फ़ैज़ी तो बेचैन होकर कह उठता है— 'बुद्धिके आडम्बरमें बड़ा समय विनाश हो रहा है। तू अपनी कृपा या इश्क़की धारा बहा दे।" पर ग़ालिब इसी दुनियाके जीव होनेके कारण अपनी बुद्धिपर गर्वित है। फ़ैज़ी और ग़ालिब दोनों मुग़ल संस्कृतिकी अभिव्यक्तियाँ हैं पर फ़ैज़ीमें मुग़ल शासनके उत्थान-की झलक है, वही उज्ज्वलता अब ग़ालिबमें मिटती हुई मुग़ल हुकूमतकी

टिमटिमाहट है। फ़ारसी कवियोंमें ग़ालिब 'उर्फ़ी'के सबसे निकट मालूम पड़ते हैं। दोनोंके कलाममें वही ज़ोर, वही कल्पनाकी उड़ान, वही नई बात पैदा करनेकी उत्कण्ठा, वही पेंचदार अभिव्यक्ति है। पर उर्फ़ी तरुणावस्थामें ही परलोकगामी हुआ और ग़ालिबकी भाँति उसे अपने फ़नमें निखार लानेका अवसर नहीं मिला।

इसी प्रकार ग़ालिब और इक़बालमें भी बड़ा फ़र्क़ है। दोनों दो भिन्न युगके निवासी हैं। ग़ालिब कवि हैं इक़बाल सन्देशवेत्ता हैं। ग़ालिब चित्रकार हैं, उनके निकट ज़िन्दगीका हर पहलू सुन्दर है इक़बाल सन्देश देनेवाले हैं, उनपर एक नई दुनिया बनाने नई दुनियाका सन्देश देनेका नशा छाया हुआ है। ग़ालिबमें सामान्य मानवकी तरहमें उसकी वासनाएँ, उसकी निराशाएँ हैं, इक़बाल सतहके नीचे प्रवेश करनेवाले दार्शनिक हैं। दोनोंका दृष्टिकोण भिन्न है वातावरण भिन्न है, जीवन-दर्शन भिन्न है।

व्याख्या-भाग

कुछ शेर

[१]

कहते हो "न देंगे हम दिल अगर पड़ा पाया"
दिल कहाँ कि गुम कीजे हमने मुद्दआ पाया।

अगर किसीकी कोई चीज किसी औरको मिल जाती है तो वह छेड़नेके लिए कहता है कि अगर हमें मिल गयी तो हम नहीं देंगे। कभी दूसरेकी चीज किसीके मनमें आती है उसे छिपाकर कहते हैं कि तुम्हारी चीज हमें मिल गयी तो हम न देंगे। यही स्थिति इस शेरमें है।

'तुम कह रहे हो कि अगर तुम्हारा दिल हमें कहीं पड़ा मिल गया तो हम न देंगे। पर वह है कहाँ? हमारे पास तो है नहीं कि खोनेका डर हो। हाँ तुम्हारी बातसे मैं तुम्हारा मतलब समझ गया कि तुम्हें मेरे दिलकी कामना है या तुम उसे पहिले ही पा चुके हो। वह तो तुम्हारे ही पास है। तब मुझे क्यों नाहक छेड़ रहे हो?'

[२]

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्तका मज़ा पाया
दर्दकी दवा पाई दर्द बेदवा पाया।

अर्थ स्पष्ट है। प्रेमके कारण ही तबीयतको जीवनका स्वाद मिला। इसके बदलेमें हमें अपने दर्दकी दवा मिल गयी पर इसके साथ ही एक ऐसी वेदना भी मिली जिसकी कोई दवा नहीं।

जीवनका आनन्द प्रेमसे ही है। प्रेमशून्य जीवन स्वादहीन नीरस है। ग़ालिबने स्वयं सम्यक कहा है —

> रौनक़े हस्ती है इश्क़े ख़ान वीरॉसाज़से,
> अंजुमन बेशमअ है गर बक़ ख़िरमनमें नहीं।

यह एक दर्द है जो दर्द भी है, दवा भी है। इसमें एक ऐसा दर्द मिलता है जिसकी दवा कम तक महीं बन पाई पर मजा यह है कि इसी दर्दको पानेके लिए आदमी तड़पता है क्योंकि उस तड़पमें उस कसकमें भी एक स्वाद है।

ग़ालिबकी जमीनपर ही मौलाना रूम और फ़ारसीके प्रसिद्ध कवि अत्तारी-ने भी शेर कहे हैं। मौलाना रूम कहते हैं —

> मर्हबा ऐ इश्क़ ख़ुश सौदाए मा,
> ऐ तबीबे जुम्ला इल्लतहाए मा।

'वाह! ऐ प्रेम! तुम मेरे प्रिय सम्वाद और सम्पूर्ण व्यथाओंके वैद्य हो। कुछ लोगोंने महबासे 'तुम्हारा स्वागत है' अर्थ भी किया है पर यहाँ 'महबा' शब्द आनन्दातिरेकका एक उद्‌गार है। अनुभूतिकी आर्तता शब्दोंमें उतर आई है। प्रेमी अनुभव करता है कि यह प्रेम मेरे सम्पूर्ण रोगोंका वैद्य है। यह आ गया है तो सब व्यथाएं मिट जायेंगी सम्पूर्ण रोम-कष्ट कट जायेंगे। मौलाना रूम बहुत ऊँची मानस-भूमिपर जाते हैं जहाँ प्रेम ही सम्पूर्ण प्रश्नों एवं शंकाओंका समाधान है।

'अत्तारी कहता है :—

> सब्र तबीब मा मुहब्बत मक़सद दरमाने मा
> मेहनते मा राहते मा दर्दे मा दरमाने मा।

इसमें कल्पनाका स्वाद ज्यादा उभरा है। वह भी कहता है कि 'मुहब्बत मेरा तबीब है और मैं प्राणसे उसके प्रति कृतज्ञ हूँ। वही मेरा श्रम है

यही विश्राम है, यही मेरा दर्द है और यही दवा है। इसमें मेहनत राहत दर्द और दरमान शब्द जिस क्रमसे आये हैं उसमें कविका चमत्कार है। इससे साफ़ यह ध्वनि भी निकलती है कि तेरे आते ही मेरा श्रम विश्राम और दर्द दवा बन गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि ग़ालिबमें थोथी ज्यादा है पर इसमें गहराई और चतुरीमें काव्य-चमत्कार कहीं अधिक है। ग़ालिब पहिले जिन्दगीको एक दर्द क़रार देते हैं, फिर कहते हैं कि प्रेमके बिना जीवन स्वादहीन है। दूसरे मिश्रेमें और आगे बढ़ते हैं—इस स्वादहीनताकी इस दर्दकी दवा प्रेमके रूपमें मिल गयी। पर दवा भी कैसी है? स्वयं एक वेदना दर्द है। इसकी अनुभूतिमें प्रेम जीवनके सम्पूर्ण प्रश्नोंका हल सम्पूर्ण कष्टोंकी दवा है। शब्द ऐसे हैं जैसे वह उसकी अन्तिम पा रहे हों। यह सामान्य स्तरसे ऊँचा अनुभूतिका स्तर है। यहाँ सम्पूर्ण प्राप्ति प्रेमके प्रति निवेदित है। वही उनका श्रम और विश्राम दोनों है बल्कि उसने श्रमको विश्राम और दर्दको दवा बनाकर द्वन्द्वको मिटा दिया है।

[३]

है कहाँ तमन्नाका दूसरा क़दम यारब !
हमने दश्ते इम्काँको एक नक़्शेपा पाया।

ग़ालिब वास्तव तृष्णा और कामनाके कवि हैं। उनकी कामनाकी सीमा नहीं है। इसीकी ध्वनि इस शेरमें है। कहते हैं—हे ईश्वर ! संभावनाओंका जंगल तो उसका (कामनाका) एक चरण-चिह्न है तब उसका (कामना)का दूसरा चरण कहाँ है? एक ही चरणमें सम्भावनाओंकी समस्त भूमि वामन भगवान्‌की भाँति उसने नाप ली है। कामना गतिमान है। वह सम्भावनाओंके जंगलसे गुज़र चुकी है। उसका एक पद-चिह्न दिखाई देता है, दूसरा पता नहीं कहाँ है।

[४]

बूए गुल, नालए दिल, दूदे चिराग़े महफ़िल,
जो तेरी बज़्मसे निकला सो परीशाँ निकला।

इस शेरकी सजावट देखने योग्य है। फिर पढ़िये जिसके शब्दों और पदोंमें ध्वनि और संगीत तथा अनुप्रासका ऐसा संयोग है, मानो तम्बूरपर कोई ठेका दे रहा हो। 'बूए गुल'से 'नालए दिल'के उच्चारणमें कुछ अधिक समय लगता है, फिर 'दूदे चिराग़े महफ़िल'में कुछ और लम्बा पर इनमें ताल है और सब एक समयपर समाप्त होते हैं।

ग़ालिब कहते हैं कि तेरी सभामें जितनी भी चीज़ें हैं—गुल है (तेरे और तेरे कक्षके शृंगारके लिए) दिल हैं (तेरे प्रेमियोंके जो तेरी बज़्मसे आबद्ध हैं) दीपक या शमअ है। पर सबमें एक हलचल है, एक परीशानी है। फूलके प्राण गन्ध बनकर बिखर रहे हैं दिलकी आह चली जा रही है दीपकका धुआं ऊपर लहराते हुए बिखर रहा है। तुम्हारी बज़्मसे जो भी निकलता है परीशान निकलता है। क्या इसका कारण तुम्हारी निर्दयता है? या यह इसलिए भी तो हो सकता है कि सबमें तुम्हारे लिए तड़प है कोई तुमसे जुदा होना नहीं चाहता पर जुदा होना पड़ता है इसलिए तुमसे जुदा होकर जो भी निकलता है परीशान नज़र आता है।

[५]

कुछ खटकता था मेरे सीनेमें लेकिन आख़िर,
जिसको दिल कहते थे सो तीरका पैकाँ निकला।

मेरे सीनेमें कुछ खटकता तो था। मैं उसे अपना दिल समझ रहा था पर आख़िर देखा गया तो वह तीरका पैकाँ (नोक) निकला। आँखोंके बाणसे दिल तो बिंधता ही है, यह तो एक सामान्य-सी बात है पर यहाँ बाण ही दिल बन गया है।

कलेजेमें छिपाये होते हैं वैसे ही मेरे मौनमें भी रक्तरंजित आखों कामनाएँ निहित हैं। दीपककी ज्योतिकी प्रायः जबानसे उपमा दी जाती है इसलिए 'चिराग़े मुर्दः' (मृत या बुझा दीपक) को बेज़बान कहना खूब सार्थक है।

[८]

कहते मर्फ़ है साक़ी! ख़ुमारे तश्न-कामी भी
जो तू दरियाए मय है तो मैं ख़मियाज़ हूँ साहिलका।

ख़ुमार – नशेका उतार। तश्न-कामी – प्यासकी कामना प्यास। ख़मियाज़ – अँगड़ाई। साहिल – तट जो ऊँचा-नीचा (अँगड़ाई—ऐंठा) होता है।

ऐ साक़ी! प्यासकी कामना भी अपने-अपने हौसलेके अनुसार होती है। कुछ लोग एक चुल्लूकी थोड़ी-सी पीनकी तमन्ना रखते हैं किन्तु मेरा हाल दूसरा है। अगर तू मयका सागर है तो मैं उसके तटकी अँगड़ाई हूँ। समस्त दरियाको भी अपने आलिंगन (आगोश) में लेकर तट की प्यास नहीं बुझती वह नशेके उतार (ख़ुमार) की अँगड़ाई लेता रहता है। मेरा भी यही हाल है। यहाँ भी पानेकी कामना और तृष्णाका अन्त नहीं है।

[९]

मुँह न खुलने पर है वह आलम कि देखा ही नहीं,
ज़ुल्फ़से बढ़कर नक़ाब उस शोख़के मुँहपर खुला।

गोरे-गोरे मुखपर काली-काली छिटकी हुई अलकें गोराई और सौन्दर्यमें चार चाँद लगा देती हैं। ग़ालिब कहते हैं कि उस शोख़के मुँहपर जो घूँघट है वह अलकोंसे भी अधिक उसके सौन्दर्यको बढ़ा रहा है। मुँह न खुलने-पर यह आलम है कि मैंने (अबतक) नहीं देखा। ऐसा सौन्दर्य देखा ही नहीं और 'मुँह न खुलनेमें' है। मुँह नहीं खुला है तब कोई देखेगा

गया। पर इस न देखनेमें ही प्रसन्न है। न देखकर भी ऐसा देखा है कि वैसा कहीं नहीं देखा।

[१०]

जल्वा अज़ बस कि तक़ाज़ाए निगह करता है
जौहरे आईना भी चाहे है मिज़्गाँ होना।

उनकी छवि देखनेका आग्रह करती है। कहती है—मुझे देखो। दर्पण स्वयं नयन बन गया है और उसका जौहर पलकोंके रूपमें बदल जानेको बेचैन है। उसका कमाल है कि जिस दर्पणमें वह अपनेको देखते हैं वह स्वयं उनको एकटक देख रहा है।

[११]

तेरे वादेपर जिये हम तो यह मान, झूठ माना,
कि ख़ुशीसे मर न जाते, अगर एतबार होता।

उर्दू काव्यमें माशूकके वादेपर न आने जितने शेर लिखे गये होंगे पर मिर्ज़ाने अपने ढंगसे उसमें एक बात पैदा कर दी है। और लोग उसके वादे (आश्वासन) के विश्वासपर जीते हैं परन्तु ग़ालिब इसलिए जीते हैं कि उसके वादेको झूठा समझते हैं।

कहते हैं— 'तेरे वादेपर जो हम जीते रहे तो समझ कि मैंने उसे झूठा ही समझा था। अगर तेरे वादेपर विश्वास होता तो मारे ख़ुशीके मर न जाते। माशूकके वादेपर कैसा तीखा व्यंग है।

[१२]

कोई मेरे दिलसे पूछे तेरे तीरे नीमकशको,
यह ख़लिश कहाँसे होती जो जिगरके पार होता।

अधखुली अधमुँदी आँखों सैन और कटाक्षके आनन्दको प्रेमी ही जानता है। यदि नयनबाण ज़ोरसे खींचकर चलाये गये होते तो दिलके

बाहर चले जाते और यह जो स्थायी वेदना रह-रहकर जो कसकदार टीस होती है उसका मजा क्योंकर मिलता ?

कहते हैं—तेरे आधे खिंचे तीरका स्वाद कोई मेरे दिलसे पूछे (अर्थात् उसे मेरा दिल ही जानता है)। अगर यह जिगरके पार हो गया होता तो यह टीस कैसे होती !

[१५]

दिले हर कतरा है साजे अनलबह्र,
हम उसके हैं हमारा पूछना क्या ?

अनलबह्र—मैं समुद्र हूँ।

हर बूँदका दिल एक साज (बाजा) है जिससे निरन्तर ध्वनि उठ रही है कि मैं समुद्र हूँ। हम तो उसके हैं ही हमारा क्या पूछना !

कतरा और दरियाके द्वारा प्रकृति और ब्रह्म या उपासक उपास्यकी एकता न जाने कबसे काव्यमें प्रतिपादित होती चली आ रही है। उसी बातको नये ढंगसे कहा है। फ़ारसी कवि 'ग़नीमत' ने भी कहा है—

ता मुहब्बत सीना-हा जौलाँ गहे बर्के,
दिल हर ज़र्रे बर जोश अनलख़ुर्शीदके।

उसकी मुहब्बतने सीनेको बिजलीकी दौड़का मैदान बना दिया है। बिजलीकी तड़प सिद्ध है। उसका सीनेपर गिरना ही क्या कम है ? यहाँ तो सीना ही बिजलीका 'रेसिंग ग्राउण्ड' है। 'असर' लखनवीने ठीक ही लिखा है कि ग़नीमतका शेर बहुत ऊँचा है। बिजलीकी दौड़ है; सीनेका मैदान है जिसे (प्रेम) की बिजली रौंद रही है। उधर प्रत्येक कणका हृदय घोष करता हुआ कहता है—मैं सूर्य हूँ।

[१४]

बंदगीमें भी वह आज़ादा-ओ-ख़ुदबीं हैं कि हम,
उलटे फिर आये दरे काबा अगर वा न हुआ।

इस बंदगीमें उपासनामें भी इतने स्वतन्त्र और अभिमानी हैं कि अगर काबाका द्वार भी खुला नहीं मिलता तो प्रतीक्षा नहीं करते लौट आते हैं। परमात्मा तकका मानके खिलाफ़ समझते हैं।

ग़ालिबको अपने सम्मानका बड़ा ख़याल रहता था। वह अपनेको रीति-परम्परासे ऊपर समझते थे। इसलिए भाव उनके अनुकूल ही है। फ़ारसीमें भी उन्होंने एक जगह कहा है—

तश्नःलब बर साहिले दरिया ज़ग़ैरत जाँ दहम
गर ब मौज उफ़्तद गुमाने चीने पेशानी मरा।

[१५]

कोई वीरानी-सी वीरानी है,
दश्तको देखके घर याद आया।

वैसे सरल है पर इसमें दो प्रकारके अर्थ छिपे हैं। यह वीरानी अप्रतिम है। जंगलको देखकर उसकी वीरानीको देखकर घरकी याद आ गयी। दूसरा अर्थ यह है कि जंगलको देखा तो वीरान घर याद आ गया।

[१६]

बिजली एक कौंद गयी आँखोंके आगे तो क्या
बात करते कि मैं लब-तश्नए तक़रीर भी था।

रूप और कामनाके चित्रणमें ग़ालिब निपुण हैं। कहते हैं—वह आकर और एक झलक-सी दिखाकर ग़ायब हो गये। आँखोंके आगे एक बिजली-सी कौंद गयी। पर मैं तो उनसे बातचीतका प्यासा था। दो-एक बातें भी कर जाते तो कितना अच्छा होता।

[१७]

मशहदे आशिक़से कोसों तक जो उगती है हिना,
किस क़दर यारब ! हलाके हसरते पाबोस था ।

मशहदे आशिक – प्रेमीकी बलिवेदी । हलाके हसरते पाबोस – पाँव चूमनेकी कामनाका मारा हुआ ।

जिस जगह प्रेमीका रक्त बहा है वहाँ कोसों तक मेंहदी उगती है । क्यों ? इसलिए कि जिन्दगीमें तो उनका चरण चूमनेकी कामना पूरी न हुई और दिलकी हसरत दिलमें ही रह गयी । अब खून मिट्टीमें मिलकर उनका पाँव चूमनेके लिए मेंहदीकी शक्लमें समा है । (इसमें भी यही सूत्रम रख लिया है) जब यह मेंहदी उनके चरणोंमें लगेगी तो (चरण चूमनेकी) इसकी कामना पूरी हो जायगी ।

[१८]

कम मुल्क दर तश्नगी मुर्दगाँका
जियारतक़द हूँ दिल आज़ुर्दगाँका
हम नाउमीदी हम बदगुमानी
मैं दिल हूँ फ़रेबे वफ़ा ख़ुर्दगाँका ।

जियारतकद – तीर्थस्थान आजुर्द – खिन्न दुखी हमः – समग्र साकार ।

कैसी कल्पना है । कहते हैं—मैं उनलोगोंका मुल्क अमर हूँ जो (प्रेमकी कामनाकी) पिपासामें मर गये हैं । मैं सताये हुए दुखित लोगोंका तीर्थस्थान हूँ । मैं निराशा एवं शंकाकी साकार प्रतिमा वफ़ा (निष्ठा) का फ़रेब खाये हुए लोगोंका हृदय हूँ ।

[१९]

आईन देख अपना-सा मुँह लेके रह गये,
साहबको दिल न देने प, कितना ग़ुरूर था ।

देरमें क्या छोटी पैदा की है। कहते हैं, उन्हें दावा था कि मैं किसी को चाहता नहीं किसीको दिल नहीं देता किसीपर आशिक़ नहीं हो सकता। पर दर्पणमें अपनेको देखा तो अपना-सा मुँह लेके रह गये— लज्जित हो गये। अपनी छायाका सौन्दर्य देख यह भी भूल गये कि यह मेरा प्रतिबिम्ब मात्र है। उसे दूसरा व्यक्ति समझ लिया और उसे दिल दे बैठे।

ध्वनि यह है कि तुम्हारा सौन्दर्य ही ऐसा है कि जो देखता है तुम्हें दिल दे देता है। तुम्हारी समझमें यह बात नहीं आती थी पर जब तुम अपने अक्सपर मुग्ध हो गये तब तुम्हारा मकर टूटा। (जब तुम अपनी छायापर इतने मुग्ध हो और उसे दिल दे दिया तब मैं तुम्हें दिल दे बैठा तो क्या अपराध किया?)

[२०]

शायद कि मर गया, तेरे रुख़सार देखकर
पैमाना रात माहका लबरेज़ नूर था।

पैमाना लबरेज़ होना या प्याला भरजाना एक मुहाविरा है जिसका अर्थ होता है अब विनाशका समय आ गया है। प्रियतमाके कपोलों-का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रात चाँदका पैमाना प्रकाशसे भर गया था (पूर्ण चन्द्रकी ओर संकेत है) पर कदाचित् उसने तुम्हारे कपोलोंको देख लिया और ग्लानिसे मर गया (क्योंकि तुम्हारे कपोलोंकी छवि और ज्योतिके सामने उसकी ज्योति निष्प्रभ थी।)

[२१]

जाते हुए कहते हो, 'क़यामत को मिलेंगे
क्या ख़ूब! क़यामत का है गोया कोई दिन और।

प्रियतमका वियोग ही प्रलय है। बिछुड़नेका दुःख प्रेम करनेवाला ही जानता है। यह जा रहे हैं और कहते हैं कि अब क़यामत (प्रलय)

के दिन भेंट होगी। क्या ख़ूब! जब क़यामतका दिन और क्या होगा? (तुम्हारी जुदाई ही तो क़यामतका दिन है।)

[२२]

रुख़े निगारसे, है सोज़े जाविदानिए शमअ,
हुई है आतशे गुल आबे ज़िन्दगानिए शमअ।

निगार — प्रियतमा। जाविदानी — अमरत्व। आबेज़िन्दगानी — आबे-हयात अमृत। कहते हैं —प्रियतमाके मुख (के सौन्दर्य) से ही शमअको यह जलनेकी अमरता प्राप्त हुई है (उसके मुखको देखकर शमअ ईर्ष्यासे जल रही है।) उस फूलके (सौन्दर्य) की आग शमअके लिए अमृत बनी हुई है।

[२३-२४]

आशिक़ी सब्रतलब और तमन्ना बेताब
दिलका क्या रंग करूँ ख़ूने जिगर होने तक।
हमने माना, कि तग़ाफ़ुल न करोगे, लेकिन
ख़ाक हो जायेंगे हम तुमको ख़बर होने तक।

प्रेममें हृदयकी क्या दशा होती है। उसमें धैर्यकी आवश्यकता होती है यह लम्बी साधना है जिसमें भावनाओंपर नियन्त्रण रखना पड़ता है। तूफ़ान उठता है पर उसे बाँधकर रखना पड़ता है। इधर प्रेममें धीरज और संयमकी ज़रूरत है, उधर कामनाकी बेचैनी बढ़ती जाती है। प्रेमी इन दो चक्कियोंके बीच पिसता है। उसे नहीं सूझता कि वह क्या करे। उधर उसकी बेचैनीकी उसकी वेदनाकी उन्हें ख़बर भी नहीं। उधर कभी यह सम्भव है वह ध्यान दें कृपा करें परन्तु जब तक उन्हें ख़बर होगी बेचारा प्रेमी मिट जायगा।

कहते हैं —प्रेम धीरज चाहता है और इधर कामना बेचैन है।

जिगरका खून हो जाने तक सफल हो जाने तक विरहको किस तरह सँभालकर रखूँ ? मैं मानता हूँ तुम गफ़लत न करोगे लेकिन लौट आओगे पर तुम्हारे विरहमें हमारी क्या दशा होगी ? जब तक तुम तक मेरी दुरवस्थाका समाचार पहुँच पायेगा हम मिट चुके होंगे।

[२५]

परतवे ख़ुर से है शबनम को फ़नाकी ता'लीम
मैं भी हूँ एक इनायतकी नजर होने तक।

परतवे ख़ुर = सूर्य-प्रकाश। जिस तरह सूर्यकी रोशनी शबनमको विनाशकी शिक्षा देती है—उसे पी जाती है उसी तरह तुम्हारी कृपा-दृष्टि होने तक ही मेरा अस्तित्व है। तुम्हारी कृपा हुई और मेरा निजत्व विसिद्ध व्यक्तित्व क्या। कृपा-दृष्टिको सूर्यकी रोशनी और अपने अस्तित्वको शबनम कहकर कवि एक दार्शनिक तथ्यको प्रकट किया है। जब तक प्रियतमसे मिलन नहीं हुआ जब तक यह विरह है, विभेद है तभी तक जीवन है, उसका अस्तित्व है। उनकी कृपा होनेपर मिलन होनेपर मैं कहाँ रह जाऊँगा।

[२६]

तेरे ही जल्वे का है यह धोका कि आज तक
बे इख़्तियार दौड़े हैं गुल दरक़फ़ाए गुल।

फूल खिलता है तो कवियों समझती है कि तू ही फूलके परदेमें शोभायमान हो रहा है इसलिए तेरा सौन्दर्य तेरी शोभा देखनेके लिए मैं भी फूल बन-बनकर दौड़ी आ रही हूँ।

[२७]

आज हम अपनी परीशानिए ख़ातिर उनसे
कहने जाते तो हैं पर देखिए क्या कहते हैं।

प्रेमकी दुनिया ही दूसरी है। आदमी छटपटाता है पागल होता है। उधर यह है कि जैसे कुछ हुआ नहीं। यह उदासीनता ग़ज़ब ढाती है। कभी दिलमें आता है कि उनसे मिलूँ और कुछ अपनी व्यथा, अपना दर्द उनसे कहूँ शायद वह पसीजें। पर जब सामने होते हैं बात नहीं निकलती। इसी भावको इस शेरमें व्यक्त किया गया है। कहते हैं—आज हम अपने दिलकी परेशानी उनसे कहने जा रहे हैं, पर देखिए कुछ कह पाते हैं या नहीं ?

कुछ लोग यह अर्थ भी लगाते हैं कि आज हम अपनी हृदय-व्यथा उनसे कहने जा रहे हैं देखिए (वह) क्या कहते हैं। पर यह अर्थ नहीं अनर्थ है और ज़बर्दस्ती है।

इसीसे मिलती-जुलती ज़मीनपर हसरत मोहानीने कहा है—

कुछ समझमें नहीं आता कि यह क्या है हसरत'
उनसे मिलकर भी न इज़हारे तमन्ना करना।

[२८]

हो गये हैं जमअ अज्ज़ाए निगाहे आफ़ताब,
ज़र्रे उसके घरकी दीवारोंके रौज़नमें नहीं।

दीवारोंमें जो छिद्र या रोशनदान होते हैं उनपर जब सूर्यकी किरणें पड़ती हैं तो असंख्य कण आते या चढ़ते हुए दिखाई देते हैं। इसी तथ्यको लेकर क्या शेर कहा है। दीवारोंके छिद्रमें जो बेशुमार ज़र्रे चमकते दिखाई दे रहे हैं वे ज़र्रे नहीं हैं बल्कि सूर्यकी मुग्ध दृष्टिके कण हैं जो उसे देखने और झाँकनेके लिए एकत्र हो गये हैं। (सूर्य भी तेरी छवि देखनेके लिए बेचैन है और किरणकी आँखोंसे तुम्हारी ओर ताक-झाँक कर रहा है।)

[२९]

तमाशा कि ए महवे आईनःदारी
तुझे किस तमन्नासे हम देखते हैं।

सरल शेर है पर दूसरा मिसरा ज़ोरदार है। ओ दर्पणमें अपनेको देखनेमें तल्लीन! ज़रा इधर भी तो देख कि हम किस तमन्नाके साथ तुझे देख रहे हैं!

[३०]

था फिर न इन्तज़ारमें, नींद आये उम्र भर
आनेका अहद कर गये आये जो ख़्वाबमें।

प्रियतमकी छेड़ और शोख़ी देखिए। प्रेमी प्रतीक्षा करते-करते सो गया है। यह सोना भी उनको गवारा नहीं। वह ख़्वाब (स्वप्न) में आये भी तो फिर आनेका वादा करके चले गये कि फिर मुझे उनकी प्रतीक्षामें उम्रभर नींद न आये। (क्योंकि वह तो आयेंगे नहीं पर वादा कर गये हैं इसलिए उम्रभर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।)

प्रतीक्षाकी लम्बी घड़ियाँ नींद न आना उनका वादा सब यहाँ एक शेरमें एकत्र हो गये हैं।

[३१]

है तेवरी चढ़ी हुई, अन्दर निक़ाबके
है इक शिकन पड़ी हुई, तर्फ़े निक़ाबमें।

जब उनके सामने ऐसा ज़िक्र आ जाता है कि कोई भेद खुल रहा हो या कोई मनचाही बात निकल पड़ी हो तो बोलती नहीं है पर घूँघट भी उनके तेवरी चढ़ाने और क्रोधको छिपा नहीं पाता। कहते हैं घूँघटमें एक ओर शिकन पड़ी हुई है। जान पड़ता है घूँघटके अन्दर उनकी तेवरी चढ़ गयी है।

उनके बिगड़नेका क्या कहना है। आगे और कहते हैं—

[३२]

लाखों लगाव, एक चुराना निगाहका,
लाखों बनाव, एक बिगड़ना इताबमें।

लगाव — लगावट मुहब्बत। इताब — क्रोध।

बात मामूली है उनकी लाखों लगावटें प्रेमके हाव-भाव एक ओर और निगाहका चुराना एक ओर। लाखों बनाव-शृंगार एक तरफ और गुस्सेमें बिगड़ना एक तरफ। मा'शूककी लगावट प्रेमीके लिए बड़ी चीज है पर उसका आँख चुराना उन लगावटोंसे कहीं मोहक होता है। इसी प्रकार बनाव-शृंगारसे उसका सौन्दर्य अवश्य बढ़ जाता है पर गुस्सेमें बिगड़नेपर उसकी शोभाका क्या पूछना ?*

जिसने प्रेम किया है और प्रेमकी आँखोंसे प्रियतमाका आँख चुराना और बिगड़ना देखा है वही इस शेरके सौन्दर्यको पूर्णतः हृदयंगम कर सकता है। मौलाना हालीने लिखा है—'यह शेर लाजवाब है। अगर अल्फ़ाज़की तरफ देखिए तो ताज्जुब होता है कि क्यों कर ऐसे दो हमवज़्न मिसरे बहम पहुँच गये जिसमें हुस्ने तक़ाबुलका पूरा-पूरा हक़ अदा किया गया है और अगर मा'नीपर नज़र कीजिए तो हर मिसरमें एक ऐसा मुआमिला बाँधा गया है जो फ़िल्वाक़अ आशिक़ व मा'शूकके दर-मियान हमेशा गुज़रता रहता है। मा'शूककी लगावट आशिक़के लिए बहुत बड़ी चीज़ है मगर उसका आँख चुराना जो लगावटकी ज़िद है वह आशिक़की नज़रमें लगावटसे बहुत ज़्यादा दिलफ़रेब दिलचस्प होता है।

---

* किसीका शेर है—

उनको आता है प्यारपर गुस्सा
हमको गुस्से प प्यार आता है।

[२५]

है ग़ैब ग़ैब जिसको समझते हैं हम शुहूद
हैं ख़्वाबमें हनोज़ जो जागे हैं ख़्वाबमें।

शुहूद वह अवस्था होती है जब साधकको सब वस्तुओंमें ईश्वर ही ईश्वर दिखाई पड़ता है। ग़ैब ग़ैबका मतलब ग़ैबुल्ग़ैब या परोक्षका परोक्ष है। कहते हैं जिसे हम सम्मुख उपस्थित देखते हैं वह भी अत्यन्त परोक्ष ही है। जैसे स्वप्नमें जो जागरण होता है वह जागरणका अनुभव होते हुए भी स्वप्न ही है। हम सपनेमें ही जगते हैं, कुछ देखते हैं परन्तु सारी कार्रवाई सपनेमें ही होती है।

[२६]

वह आये घरमें हमारे ख़ुदाकी क़ुदरत है
कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते हैं।

मशहूर शेर है और भाव किसी दुर्लभ आगमनपर पढ़ा जाता है। कभी उम्मीद नहीं थी कि वह हमारे घर आयेंगे। निराशा चरम सीमापर पहुँच गयी है। हम चुप हो बैठे हैं। एकाएक वह आये। कैसे यह सम्भव हुआ ? निश्चय ही यह प्रभुका चमत्कार है। आश्चर्यसे कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते हैं (जैसे अब भी यह अविश्वसनीय घटना समझ में नहीं आ रही है।) आश्चर्यका अनुपम चित्र है।

[२७]

रंजसे ख़ूगर हुआ इंसाँ तो मिट जाता है रंज
मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझपर कि आसाँ हो गयीं।

जब आदमी दुःख-शोकका अभ्यस्त हो जाता है तो दुःख स्वयं मिट जाता है। मुझपर इतनी कठिनाइयाँ आई हैं कि सहन करते-करते वे कठिनाइयाँ कठिनाइयाँ नहीं रह गयी हैं—सरल हो गयी हैं।

[४८]

दिल ही तो है, न संगोख़िश्त दर्दसे भर न आये क्यों ?
रोयेंगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताये क्यों ?

यह जुल्म भी करते हैं और रोने भी नहीं देना चाहते। प्रेमी सहन करता है पर जब सहन शक्तिका अन्त हो जाता है तब कहता है—आखिर दिल ही तो है, कोई ईंट-पत्थर नहीं है, फिर दर्दसे क्यों भर न आये ? हम हजार बार रोयेंगे। कोई हमें क्यों सताता है ?

यहाँ 'कोई' पद काव्यकी जान है।

[४९]

जब वह जमाले दिल फ़रोज़ सूरते मेह्रे नीमरोज़
आप ही हो नज़्ज़ारा सोज़, पर्देमें मुँह छिपाये क्यों ?

मेह्रे नीमरोज़ – मध्याह्नका सूर्य जिस तीव्र प्रकाशके कारण नहीं देखा जा सकता। चमक इतनी तेज़ी है कि आँख नहीं ठहरती। कहता है—जब वह दिलको मुग्ध और प्रकाशित न करनेवाला सौन्दर्य मध्याह्नके सूर्यकी तरह दृष्टिको जला देता है तो फिर उस पर्देमें मुँह छिपानेकी क्या ज़रूरत है ? क्योंकि उसके मुखकी ओर तो कोई देख पाता नहीं है।

[५०]

है आदमी बजाए ख़ुद, एक महशरे ख़याल
हम अंजुमन समझते हैं ख़िल्वत हो क्यों न हो ?

उपनिषद्में कहा गया है कि मन ही बन्धनका कारण है। मोक्षमें कहा गया है कि 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः'—मन ही मनुष्यके बन्ध एवं मोक्षका कारण है। हम संसारके झंझटोंसे बचनेके लिए जंगलमें चले जाते हैं परन्तु वहाँ भी मन हमारा पीछा नहीं छोड़ता। मनमें हम सारी दुनिया लिए फिरते हैं।

ग़ालिब कहते हैं कि आदमी स्वयं अपनेमें कल्पना एवं विचारका प्रवाह लिये हुए है (जैसे महशरमें मुर्दे भी उठते हैं वैसे ही मनमें नाना प्रकारके विचार उठते रहते हैं) इसलिए एकान्तमें रहते हुए भी यानी हम अंजुमनम भीड़में सभामें रहते हैं।

[४१]

उनको किसीके ख़्वाबमें आया न हो कहीं,
दुखते हैं आज उस बुते नाज़ुकबदनके पाँव।

सदासे प्रेयसीका तन्वंगी—नाज़ुक—होना काव्यका एक विषय रहा है। सदासे कवि इस विषयपर उक्तियाँ कहते आये हैं। हिन्दी कवि बिहारीने कहा है—

भूषन-भार सँभारिहै, क्यों यह तन सुकुमार।
सूधो पाँव न धरि परत शोभा ही के भार॥

यह सुकुमार तन आभूषणोंका बोझ कैसे सँभाल सकेगा जब शोभाके बोझसे ही तुम्हारे पाँव सीधे नहीं पड़ते डगमगाते हैं।

ग़ालिबकी नायिका इस सीमा तक नहीं पहुँच पाई है पर उसकी नाज़ुकी भी गज़बकी है। कहते हैं, आज उस तन्वंगी एवं नाज़ुकबदनके पाँव दुख रहे हैं। कहीं वह किसीके स्वप्नमें न आई हो। स्वप्नमें आनेसे भी पाँव दुखनेकी कल्पना बिल्कुल नई है।

[४२]

यह कह सकते हो हम दिलमें नहीं हैं ?" पर यह बतलाओ,
कि जब दिल में तुम्हीं तुम हो तो आँखों से निहाँ क्यों हो ?

तुम यह तो कह नहीं सकते कि मेरे दिलमें तुम नहीं हो। यह तो तुम जानते हो। पर यह बताओ कि जब दिलमें तुम्हीं तुम भरे हुए हो तो आँखोंसे क्या छिपे रहते हो दर्शन क्यों नहीं देते। यह क्या ढंग है कि दिलमें तो घर कर लेना और आँखोंसे दूर रहना।

कैसे लगेगा? इसलिए चित्रखटके ऊपर ही आँखका चित्र बना दिया है ताकि बिना पढ़े भी उन्हें मालूम हो जाय कि इसको मेरे दर्शनकी लालसा है। यहाँ 'खुल जाने' क्रिया बहुत उपयुक्त है जिसमें 'पता चल जाय' का अर्थ भी छिपा है और जिसकी आँखें खुली होनेकी ध्वनि भी है।

'ज़ौक़' ने भी कहा है—

> यह चाहता है ज़ौक़ कि क़ासिद बजाय मुहर,
> आँख अपनी दो लिफ़ाफ़ए ख़तपर लगी हुई।

[४५]

> नज़्ज़ारे ने भी काम किया वाँ निक़ाबका,
> मस्तीसे हर निगाह तेरे रुख़ पै बिखर गयी।

मेरी निगाह तेरे मुख तक पहुँच कर ऐसी बदमस्त हुई कि वह बिखर गयी और बिखर जानेके कारण तुझे देख भी न सकी। मतलब दृष्टि ही तुम्हारे सौन्दर्य-दर्शनमें पर्देका काम कर रही है।

दृष्टि दर्शनमें बाधक है, इस बातको ग़ालिबने अनेक प्रकारसे कहा है। देखिए—

> नज़्ज़ारः क्या हरीफ़ हो उस बर्क़े हुस्नका,
> जोशे बहार जल्वःका जिसके निक़ाब है।

(दृष्टिमें यह शक्ति नहीं कि उसकी सौन्दर्य रूपी उस बिजलीका सामना कर सके जिसकी छविके लिए स्वयं बसन्तकी उत्कण्ठा-उत्सुकता घूँघट बन गयी है। बहारकी रंगीनीका जोश निक़ाबका काम कर रहा है या उसके जल्वेमें बहारका यह जोश है कि उसने स्वयं छविको छिपा लिया है।)

यह अर्थ भी निकलता है कि दृष्टि सदैव निक़ाबपर, उस बाह्य सौन्दर्यके आवरणपर पड़ती है—यानी दृष्टि केवल शरीर तक पहुँचती

[४८]

काँटोंकी ज़ुबाँ सूख गयी प्याससे यारब !
इक आबला पा वादिए पुरख़ारमें आवे ।

प्रेमकी घाटीमें काँटोंकी जिह्वा प्याससे सूख रही है। ऐ ख़ुदा ! (इस काँटोंकी घाटीमें) कोई ऐसा पथिक आवे जिसके पाँवमें चलते-चलते छाले पड़ गये हैं (जिससे छालोंके पानीसे काँटोंकी प्यास बुझ जाय ।)

[४९]

उनके देखेसे जो आ जाती है मुँहपर रौनक़,
वह समझते हैं कि बीमारका हाल अच्छा है ।

जब तक मा'शूक प्रेमीकी दुर्दशा और विरह-विह्वलताको न देखे उसे कैसे ज्ञान हो सकता है कि वह मुझे कितना चाहता है और इस चाहमें उसपर क्या गुज़र रही है। पर कठिनाई यह है कि जब माशूक नहीं होता जब विरह-काल आता है तब तो वेदनासे प्राण निकलते होते हैं किन्तु जब उसका दर्शन होता है तो उसके कारण प्रसन्नतासे मुँहपर एक रौनक़ एक शोभा खिल उठती है। वह आये तो बीमारको देखने पर देखते यह हैं कि इसका हाल तो अच्छा है, नाहक़ बीमारीका बहाना किये पड़ा है।

ऐसी हालतमें वह क्या करुणा मुझपर करेंगे ?

[५०]

हमको मालूम है जन्नतकी हक़ीक़त लेकिन,
दिलके ख़ुश रखनेको 'ग़ालिब' य' ख़याल अच्छा है ।

हम स्वर्गकी वास्तविकता जानते हैं कि किस प्रकार उसका बाग़ दिखाया गया है। हाँ इतना लाभ है कि इसकी कल्पनासे दिल प्रसन्न रहता है उसे एक प्रकारकी प्रसन्नता होती है।

[५१]

रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं क़ायल
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है ?

[illegible]

[५२]

इश्क़ पर ज़ोर नहीं है यह वह आतिश ग़ालिब
कि लगाए न लगे और बुझाए न बने।

[illegible]

इस ज़मीनपर 'ज़ौक़' का मशहूर शेर याद आता है—

अब तो घबराके यह कहते हैं कि मर जायेंगे,
मरके भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे ?

[५५]

सुबा था ! जज़्बए दिलकी मगर तासीर उलटी है
कि जितना खींचता हूँ और खिंचता जाये है मुझसे ।

कहते हैं, ऐ ख़ुदा ! मेरे हृदयके आकर्षणका असर उल्टा प्रकट होता है क्योंकि मैं उसे जितना ही अपनी ओर खींचता हूँ उतना ही वह मुझसे खिंचता जाता है, कड़ा होता जाता है। मुहाविरेका प्रयोग देखने योग्य है। ख़ूबी यह है कि इसमें आत्मदया और निवेदन दोनों हैं।

[५६]

उधर वह बदगुमानी है, इधर यह नातवानी है,
न पूछा जाये है उससे, न बोला जाये है मुझसे ।

वह तो मेरे बारेमें बदगुमां है समझते हैं कि मेरा प्रेम झूठा है इस-लिए मेरा हाल भी नहीं पूछते। इधर मैं इतना नातवाँ इतना क्षीण और दुर्बल हो चुका हूँ कि मुझसे बोला नहीं जाता अपना हाल कहा नहीं जाता। अजब मुश्किल है।

[५७]

सँभलने दे, मुझे ऐ नाउमीदी क्या क़यामत है,
कि दामाने ख़याले यार छूटा जाये है मुझसे ।

ऐ निराशा तू क्या क़यामत ढा रही है वह स्वयं तो दूर हैं ही मैं उनके ध्यानका आँचल पकड़कर बैठ रहा था तेरे कारण वह भी मुझसे छूटा जा रहा है। ज़रा मुझे सँभल तो लेने दे। यह ज़रा-सा सहारा तो न छुड़ा।

कर दे। (क्या तर्कीब निकाली है कि वह आँख दिखाकर अपना गुस्सा भी प्रकट कर दें तो हमारको दीदार भी नसीब हो जाय)। यहाँ मतलब यह है कि आँखें दिखायेंगी तो मुँह अपने आप दिख जायगा।

[६०]

मत पूछ, कि क्या हाल है मेरा तेरे पीछे,
तू देख, कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे।

इस शेरमें ग़ालिबने क्या रङ्ग पैदा किया है। यहाँ रङ्ग और आगे-पीछे शब्दोंने शेरमें जान डाल दी है।

कहते हैं, यह न पूछ कि तेरे पीछे तेरे विरहमें मेरा क्या हाल होता है। यह देख कि मेरे आगे तेरा क्या रङ्ग हो जाता है, तू मेरे सामने आकर कितना बेचैन हो जाता है। इसीसे अनुमान कर ले कि तेरे विरहमें मेरा क्या हाल होता होगा।

[६१]

ईमाँ मुझे रोके है जो खींचे है मुझे कुफ़्र,
काबा मेरे पीछे है कलीसा मेरे आगे।

'आसी' साहब इस शेरकी प्रशंसामें लिखते हैं—'बेमिसल शेर कहा है मज़मून मिसाए सानी। अगर दीवानके दीवान इसपर सिद्के कर दिये जायें तो बजा है।

कवाको ईमान और कलीसा (गिर्जाघर) को कुफ़्र कहा गया है। काबा (ईमान) पीछेसे खींच रहा है, रोक रहा है कि आगे मत बढ़ो। कलीसा (कुफ़्र) आगेसे अपनी तरफ़ खींच रहा है कि इधर आओ।

ईमानम साधक या सूफ़ीकी परमात्मसत्ता विषय वह 'अनलहक़' (अहं ब्रह्मास्मि) कहता है कुफ़्र है। कुफ़्र आगेकी तरफ़ है जिधर मैं जा रहा हूँ उसमें आकर्षण इतना है कि काबेको पीछे छोड़ चुका हूँ। बीच रास्तेमें हूँ

दोनोंके बीच विमूढ़ हो रहा हूँ कि किधर जाऊँ। ईमान या परम्परागत मज़हब मुझे रोकता है और कहता है—पीछे लौट आओ। कुफ़्र या उन परम्परागत रूढ़ियोंका त्याग मुझे आगेकी ओर खींच रहा है और कहता है—पीछे लौटे तो माशूक़के दर्शनसे वंचित रह जाओगे।

[६२]

ख़ुश होते हैं, पर वस्लमें यों मर नहीं जाते,
आई शबे हिजराँकी तमन्ना मेरे आगे।

ऊँचे पायेका शेर है। जोश मलीहाबादीने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है— 'यह शेर हर साहिबे ज़ौक़को दीवाना कर देनेके लिए काफ़ी है।'"मिर्ज़ा अगर और कुछ न कहते सिर्फ़ यही एक शेर कहते तो यह उनकी अज़मत और एतराफ़े कमालके लिए काफ़ी था। तबातबाई लिखते हैं— वस्लकी ख़ुशीमें मर जाना और क़ौम भी बाँधा करते हैं मगर यह बात ही और है। सारी करामात मुहाविरे और ज़बानकी है जिसने मज़मूनको ज़िन्दा कर दिया है।"

कहते हैं—मिलनमें सभी ख़ुश होते हैं पर मेरी तरह कोई मर नहीं जाता। जुदाई (विरह) की रातमें जो बार-बार तमन्ना किया करता था कि मरूँ तो तुम्हारे मिलन-क्षणमें मरूँ वह मेरे आगे आई—पूर्ण हुई।

[६३]

गो हाथको जुम्बिश नहीं आँखोंमें तो दम है
रहने दो अभी साग़रो मीना मेरे आगे।

अन्तिम वक़्त आ गया है। कमज़ोरीका यह हाल है कि हाथमें हिलने की भी ताक़त नहीं रही पर कहते हैं कि हाथोंमें शक्ति नहीं तो क्या हुआ? आँखोंमें तो अभी दम मौजूद है। प्याले और सुराहीको मेरे सामनेसे क्यों हटाते हो मेरे सामने ही पड़ा रहने दो ताकि मैं अपने दिलको तसकीन दूँ।

जो वस्तु सबसे प्रिय होती है मरते समय उसीको देखनेकी कामना हुआ करती है। पहिले मिसरेमें नज़अ (मरण काल) का चित्र है। वह शिथिल और निष्प्राण है हाथ-पाँवमें शक्ति नहीं है। केवल आँखोंमें जीवन-का चिह्न शेष है।

कहते हैं—यद्यपि हाथोंमें शक्ति नहीं है, तनमें शक्ति नहीं है कि सुराहीसे मदिरा निकालकर प्यालेमें भर सकें और प्यालेको उठाकर मुँह तक ला सकें किन्तु जान अभी आँखोंमें है इसलिए प्याले और सुराहीको मेरे सामने पड़ा रहने दो कि मैं उन्हें देखता तो रह सकूँ।

आकांक्षाका कैसा चित्र है।

[९४]

करने गये थे उससे तग़ाफ़ुलका हम गिला
की एक ही निगाह, कि बस ख़ाक हो गये।

सामान्य अर्थ तो यह है कि उनसे हम उपेक्षाकी शिकायत करने गये थे। उन्होंने एक बार ही आँख उठाकर देखा कि हम मिट्टी हो गये।

इस शेरमें तसव्वुफ़का रंग है। जब परम प्रियतमसे आँखें मिलती हैं तब दर्शकका अस्तित्व उसीमें विलीन हो जाता है। सहाबीने फ़ारसीमें कहा है—

ऐ ज़ाहिदो आशिक़ अज़ तू दर नाज़ व नियाज़
दूर तू न नज़दीक तेरा हाले तबाह
कस नेस्त कि जाँ ज़ तू बस सलामत पर्दुर्द
आँरा ब तग़ाफ़ुल कुशी ईंरा बनिगाह।

(ज़ाहिद और आशिक़ दोनों नाज़ और आह द्वारा तुमसे प्रार्थना कर रहे हैं। जो तुमसे दूर है वह भी तबाहहाल है और जो तुमसे नज़दीक है वह भी बर्बाद है। ऐसा कोई नहीं जो तुमसे जान बचा के जाय। उसको

(आशिक़ोंको) तग़ाफ़ुलसे उपेक्षासे क़त्ल करते हैं और इस (आशिक़ोंको) निगाहसे।)

[६५]

जबतक दहाने ज़ख़्म न पैदा करे कोई
मुश्किल, कि तुमसे राहे सुख़न वा करे कोई।

जबतक चोट या घावका मुँह न पैदा हो किसीके लिए तुमसे बात करनेका रास्ता निकालना सम्भव नहीं।

अर्थात् प्रेमका घाव खाये बिना प्रियतमसे बात नहीं की जा सकती।

[६६]

मुहब्बतमें नहीं है फ़र्क़ जीने और मरनेका
उसीको देखकर जीते हैं जिस काफ़िर प दम निकले।

प्रेममें जीवन और मरणमें कोई अन्तर नहीं है क्योंकि जिस काफ़िर पर मरते हैं जिसपर दम निकलता है उसीको देखकर जीते हैं।

[६७]

बेगानए रस्मे जहाँ है मज़ाक़े इश्क़
तर्ज़े जदीद ज़ुल्म कुछ ईजाद कीजिए।

प्रेम संसारकी रीतियों एवं परम्पराओंकी परवा नहीं करता। इसलिए पुराने ज़ुल्मके ढंग छोड़िए ज़ुल्मका कोई नया तरीक़ा पैदा कीजिए।

फ़िराक़ कहता है—

वस्लसे इन्कार है यह तो पुरानी बात है
अब नए अन्दाज़ सोचो जी जलानेके लिए।

[६८]

वह शोख़ अपने हुस्न प मग़रूर है असद
दिखलाके उसको आइना तोड़ा करे कोई।

यह दोस्त (चंचल माशूक) अपने सौन्दर्यपर गर्व कर रहा है। क्या अच्छा हो कि कोई उसे दिखाकर दर्पणको तोड़ा करता।

दर्पण दिखाना इसलिए कहा कि वह उसमें अपना अक्स-प्रतिछवि-देख ले। आईना तोड़ना इसलिए कहा कि उसके हज़ारों टुकड़ोंमें वह प्रतिबिम्ब दिखाई दे।

बिहारीने दूसरी ज़मीनपर कहा है:

हौं समुझ्यो निरधारि, यह जग काँचो काँच सम,
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियत जहाँ।

किसी उर्दू कविने कहा है

नज़र आते कभी काहेको इतने सूरत यकता,
यह हुस्ने इत्तिफ़ाक आईना उसका टूट गया।

दर्पणको लेकर एक दूसरा शेर है

आईना उठा लाये और अक्ससे यूँ बोले,
क्यों बात नहीं करता जो तू है वही मैं हूँ।

[१९]

पाता तुझ बिन मुझे नर्गिससे डराता है मुझे,
चाहूँ गर सैरे चमन आँख दिखाता है मुझे।

नर्गिस एक फूल है जिसकी आँखसे उपमा दी जाती है। 'आँख दिखाना' मुहाविरा है जिसका अर्थ है—नाराज़ होना। इसी मुहाविरेपर यह शेर कहा है।

मैं विरह-कालमें तेरे बिना यदि पुष्पोद्यानकी सैरको जाता हूँ तो उद्यान मुझे डराता है। किस प्रकार कि मुझे नर्गिसके फूल यानी आँख दिखाता है।

[७२]

शफ़क़ बदावए आशिक़ गवाहे रंगीं है,
कि माह दुज़्दे हिनाए कफ़े निगारी है।

शफ़क़ – उषा। दुज़्द – तस्कर, चोर।

उषाकालिमारंजित चाँदको देखकर प्रेमी दावा करता है कि चाँदने मेरी प्रियतमाकी मंजुल हथेलियोंसे मेंहदी चुरा ली है। इसका गवाह रक्तिम उषा है।

दूसरा अर्थ यह है कि चाँद दुज़्दे हिना (हिनाका चोर) है और यह वह चोर है जो मेरी प्रियतमाकी मंजुल हथेलियोंमें रह गया है। दुज़्दे हिना उस जगहको भी कहते हैं जो मेंहदी लगाते समय चित्रकलाका सौन्दर्य बढ़ानेके लिए छोड़ दी जाती है। उसी रिक्त स्थानको चन्द्र बताया गया है। उपमाको इस ढंगकी नवाहीमें पेश किया है।

[७३]

चमनज़ारे तमन्ना हो गयी सर्फ़े ख़िज़ाँ लेकिन,
बहारे नीमरंगे आहे हसरतनाक बाक़ी है।

मेरी पुष्पित तमन्नाके बहारको ख़िज़ाँने नष्ट किया किन्तु हसरतनाक आहकी अर्ध रंगीनी बहार अब भी बाक़ी रह गयी है।

'सिराज औरंगाबादी'का एक शेर है—

चली सिम्ते ग़ैबसे इक हवा कि चमन सुरूरका जल गया,
मगर एक शाख़े निहाले ग़म जिसे दिल कहें सो हरी रही।

परोक्षसे अकस्मात् एक ऐसी हवा चली कि सुरूर (आनन्द, प्रफुल्लता) का चमन (उद्यान) जल गया। किन्तु ग़म (दुःख) के पौधेकी एक शाख़ जिसे दिल कहेंगे हरी रह गयी।

हाले दिल नहीं मालूम लेकिन इस क़दर यानी,
हमने बारहा ढूँढा तुमने बारहा पाया।
शोरे पन्दे नासेहने[1] ज़ख़्मपर नमक छिड़का,
आपसे कोई पूछे, तुमने क्या मज़ा पाया।

[४]

दिल मेरा सोज़ निहाँ[2] से बे मुहाबा[3] जल गया,
आतिशे ख़ामोशकी[4] मानिन्द गोया जल गया।
दिलमें ज़ौक़े वस्लो यादे यार तक बाक़ी नहीं,
आग इस घरमें लगी ऐसी कि जो था जल गया।
अर्ज़ कीजे जौहरे अन्देशा की गर्मी कहाँ!
कुछ ख़याल आया था वहशतका कि सेहरा जल गया।

[५]

बूए गुल[5] नालए दिल[6], दूदे चिराग़ महफ़िल[7]
जो तेरी बज़्मसे निकला सो परीशाँ निकला।
चन्द तस्वीरे बुताँ चन्द हसीनोंके ख़ुतूत,
बाद मरनेके मेरे घरसे यह सामाँ निकला।

---

१ उपदेशकके उपदेशकी शोर (नमक अर्थ भी होता है) २ अन्तरकी अग्नि ३ बिना किसी लिहाज़के ४ मौन अग्नि ५ पुष्प-गन्ध ६ दिलकी फ़रियाद ७ सभाके दीपकका धुआँ ८ महफ़िल।

[८]

सरापा[1] रहने इश्क़ो[2] नागुज़ीर[3] उल्फ़ते हस्ती[4],
इबादत[5] बर्क़की[6] करता हूँ और अफ़सोस हासिलका।
ब क़द्रे ज़र्फ़ है साक़ी ख़ुमार तश्नकामी भी,
जो तू दरियाए मय है तो मैं ख़मियाज़ा हूँ साहिलका ।

[९]

महरम नहीं है तू ही नवाहाए राज़का[11],
याँ वर्ना जो हिजाब[13] है पर्दा है साज़का।
तू और सूए ग़ैर नज़रहाए तेज़ तेज़,
मैं और दुख तेरी मिज़्हाए दराज़का[14]।

[१०]

है ख़याले हुस्नमें[15] हुस्ने अमलका[16] सा ख़याल,
ख़ुल्दका[17] इक दर है मेरी गोरके[18] अन्दर खुला।
मुँह न खुलनेपर है वह आलम[19] कि देखा ही नहीं,
ज़ुल्फ़से बढ़कर नक़ाब उस शोख़के मुँहपर खुला।

१ आपादमस्तक २ प्रेमके हाथ बिकी ३ अनिवार्य ४ जीवनका प्रेम ५ उपासना ६ विद्युत् ७ नाम अभिज्ञान ८ प्यासका खुमार ९ अंगड़ाई परिणाम १० तट ११ मर्मज्ञ १२ मर्मके स्वर, १३ पर्दा, मगजा पूरट १४ लम्बी पलकें १५ सौन्दर्यकी कल्पना १६ कार्यका सौन्दर्य १७ स्वर्ग १८ क़ब्र १९ अवस्था।

रगे संग[1] से टपकता वह लहू कि फिर न थमता,
जिसे ग़म समझ रहे हो यह अगर शरार[2] होता।
ग़म अगर्चे जाँगुसिल[3] है, प कहाँ बचें कि दिल है,
ग़मे इश्क़ गर न होता ग़मे रोज़गार[4] होता।
कहूँ किससे मैं कि क्या है, शबे ग़म बुरी बला है,
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता।
यह मसायले तसव्वुफ़[5] यह तेरा बयान 'ग़ालिब',
तुझे हम वली[6] समझते जो न बादाख़्वार[7] होता।

[१३]

हवस को है निशाते कार[8] क्या-क्या
न हो मरना तो जीनेका मज़ा क्या!
दिले हर क़तरा[10] है साज़े अनलबह्र
हम उसके हैं हमारा पूछना क्या?
बलाए जाँ है 'ग़ालिब' उसकी हर बात,
इबारत[12] क्या इशारत[13] क्या, अदा[14] क्या!

[१४]

बन्दगीमें भी वह आज़ादओ ख़ुदबीं[15] हैं कि हम
उल्टे फिर आये दरे काबा अगर वा[16] न हुआ।

---

१ पत्थरकी नस २ (शरर) चिनगारी ३ प्राणलेवा ४ संसारका दुःख ५ तसव्वुफ़ (ईश्वर-सम्मिलन) की समस्याएँ, ६ ऋषि ७ मद्यप ८ कामका तृष्णा ९. काम करनेकी उमंग, १० प्रत्येक बिन्दुका हृदय ११ मैं सागर हूँ का स्वर, १२ स्वयम-पीड़ी १३ संकेत १४ हाव-भाव १५. अभिमानी १६. सम्मुख।

[१८]

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता,
बह्र[1] अगर बह्र न होता तो बयाबाँ[2] होता।

[१९]

न था कुछ तो ख़ुदा था, कुछ न होता तो ख़ुदा होता,
डुबोया मुझको होनेने न मैं होता तो क्या होता।
हुई मुद्दत कि 'ग़ालिब' मर गया पर याद आता है,
वह हर इक बातपर कहना कि यों होता तो क्या होता।

[२०]

दम लिया था न क़यामत[3] ने हनोज़[4],
फिर तेरा वक़्ते सफ़र याद आया।
ज़िन्दगी यूँ भी गुज़र ही जाती,
क्यों तेरा राहे गुज़र[5] याद आया।
कोई वीरानी-सी वीरानी है
दश्त[6] को देखके घर याद आया।

[२१]

निकली इक कौंद गयी आँखोंके आगे तो क्या
बात करते कि मैं लब तश्नए तक़रीर[7] भी था।

---

१ समुद्र २ मरुस्थल ३ प्रलय ४ अभी ५ मार्ग ६ जंगल ७ बातोंका प्यासा।

पकड़े जाते हैं फ़रिश्तोंके लिखे पर नाहक़
आदमी कोई हमारा दमे तहरीर भी था ?

[२२]

जबतक कि न देखा था क़दे यारका आलम
मैं मो'तक़िदे फ़ित्नए महशर न हुआ था।[1]
दरिया'ए म'आसी[2] तुनुकआबी[3] से हुआ ख़ुश्क,
मेरा सरे दामन भी अभी तर न हुआ था।

[२३]

अर्ज़े नियाज़े[4] इश्क़के क़ाबिल नहीं रहा
जिस दिलपे नाज़ था मुझे वह दिल नहीं रहा।
वा कर दिये हैं शौक़ने बंदे निक़ाबे हुस्न[5]
ग़ैर अज़ निगाह अब कोई हाइल[6] नहीं रहा।
गो मैं रहा रहीने सितमहाए रोज़गार[7],
लेकिन तेरे ख़यालसे ग़ाफ़िल नहीं रहा।

[२४]

मगर इक बुलन्दीपर और हम बना सकते,
अर्श से इधर होता काशके मकाँ अपना।
घिसते घिसते मिट जाता आपने अबस बदला
नंगे सिज्दा से मेरे संगे आस्ताँ अपना।

---

१ प्रलयकी मुसीबतोंका विश्वासी २ पाप-सागर, ३ पानीकी दरिद्रता ४ प्रणाम-निवेदन ५ उत्कण्ठाने माशूकके सौन्दर्यकी नक़ाबके बन्धन खोल दिये हैं ६ बाधक ७ संसारके अत्याचारोंका शिकार ८ ध्यान ९ बदला १० व्यर्थ ११ सिजदेके कलंक (शर्म) १२ देहलीका पत्थर।

[२५]

बज़्मे क़दह से ऐश तमन्ना[2] न रख कि रंग,
सैद ज़िदाम जस्ता[3] है इस दामगाह का।
रहमत अगर क़ुबूल करे क्या बईद[4] है,
शर्मिन्दगीसे उज़्र न करना गुनाहका।
मक़्तलको किस निशातसे जाता हूँ मैं, कि है
पुरगुल ख़यालेज़ख़्मसे दामन निगाहका।

[२६]

जौर से बाज़ आये पर बाज़ आयें क्या,
कहते हैं 'हम तुमको मुँह दिखलायें क्या?"
रात दिन गर्दिशमें हैं सात आसमाँ,
हो रहेगा कुछ-न-कुछ घबरायें क्या?
लाग हो तो उसको हम समझें लगाव
जब न हो कुछ भी तो धोका खायें क्या!
पूछते हैं वह कि 'ग़ालिब कौन है?"
कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या?

[२७]

इश्रते क़तरा है दरियामें फ़ना[12] हो जाना
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।

१ प्यालाकी महफ़िल २ कामना-जनित आनन्दमय विलास ३ जालसे छूटकर भागा शिकार, ४ बातसे पूर्ण स्थान ५. प्रसन्नता ६ पूर ७ घावस्पर्श ८ दृष्टिका आँचल घावकी कल्पनाके पुष्पसे भरा हुआ है ९ घुमाव १० लगाव, ११ बूँदका ऐश्वर्य १२ विलीन।

ऐ आफ़ियत¹ किनारा कर, ऐ इन्तिज़ाम चल,
सैलाबे गिरिया दरपैए दीवारो दर है आज²।
ला हम मरीज़े इश्क़के तीमारदार हैं,
अच्छा अगर न हो तो मसीहाका क्या इलाज।

रदीफ़ 'चे'

[१]

नफ़स न अंजुमने आरज़ू³ से बाहर खींच
अगर शराब नहीं, इन्तिज़ारे साग़र खींच।
कमाले गर्मिए सइए तलाशे दीद⁴ न पूछ
बरंगे ख़ार मेरे आइनेसे जौहर⁵ खींच।
तेरी तरफ़ है बहसरत नज़ारए नर्गिस,⁶
बकोरिए दिलो चश्मे रक़ीब⁷ साग़र खींच।

रदीफ़ 'दाल'

[२१]

शमअ बुझती है तो उसमेंसे धुआँ उठता है,
शोलए इश्क़ सियहपोश हुआ मेरे बा'द।
ख़ूँ है दिल ख़ाकमें अहवाले बुताँ पर या'नी
इनके नाख़ुन हुए मुहताजे हिना⁸ मेरे बा'द⁹।

---

१ कुशलता २ आज रोदनका तूफ़ान घर-बार ढा देनेपर तुला हुआ है, ३ भद्र तरुणोंकी महफ़िल कामनाओंकी भीड़ ४ प्रियदर्शनकी कोशिश प्रयत्नकी सीमा ५. कण्टक-गुल्म ६ नरगिसकी दृष्टि तेरी ओर लालसापूर्वक देख रही है, ७ रक़ीब (प्रतिद्वन्द्वी) के अन्धेपन और अपनी आँखके नामपर, ८ अभाव ९. मा'शूक़ोंकी दवा १ मेंहदीके मुहताजोंकी।

कौन होता है हरीफ़े मये मर्द अफ़गने इश्क़,
है मुकर्रर[1] लब साक़ी[3] पे सला[4] मेरे बा'द।
आये है बेकसीये इश्क़ प रोना 'ग़ालिब',
किसके घर जायेगा सैलाबे बला मेरे बा'द।

[१२]

मक़सद है नाज़ो ग़म्ज़ा[5] वले गुफ़्तगूमें काम,
चलता नहीं है दश्न-ओ-ख़ंजर[6] कहे बग़ैर।
हरचन्द हो मुशाहदा-ए हक़[7] की गुफ़्तगू,
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र[8] कहे बग़ैर।

[१३]

साबित हुआ है गर्दने[9] मीना पे ख़ूने ख़ल्क़[10]
लरज़े है मौज मय तेरी रफ़्तार देखकर।
इन आबलोंसे पाँवके घबरा गया था मैं,
जी ख़ुश हुआ है राहको पुरख़ार देखकर।
गिरनी थी हम प बर्क़े तजल्ली[12] न तूर[13] पर
देते हैं बादा ज़र्फ़े क़दह ख़्वार[14] देखकर।

---

१ प्रेमकी विजयिनी मदिराको ग्रहण करनेमें मेरी बराबरी करनेवाला २. बराबर, ३ साक़ीके अधर, ४ आमंत्रण ५ कटाक्ष और हाव-भाव ६. प्यार और छुरी ७. ब्रह्म-दर्शन ८ मधु एवं मधुपात्र ९. सुराहीकी गरदन १० संसारका ख़ून ११ पदचिह्न १२ ब्रह्मज्योतिकी बिजली १३. एक पर्वत १४ पात्रता प्याला पीनेवालेका साहस देखकर।

ऐ आफ़ियत[1] किनार कर ऐ इन्तिज़ाम चल,
सैलाबे गिरियः दरपैए दीवारो दर है आज[2]।
हाँ हम मरीज़े इश्क़के बीमारदार हैं,
अच्छा अगर न हो तो मसीहाका क्या इलाज।

रदीफ़ 'चे'

[२]

नफ़स न अंजुमने आरज़ू[3] से बाहर खींच
अगर शराब नहीं इन्तिज़ारे साग़र खींच।
कमाले गर्मिए सइए तलाशे दीद[4] न पूछ,
बरंगे ख़ार[5] मेरे आइनेसे जौहर खींच।
तरी तरफ़ है बहसरत नज़ारए नर्गिस[6]
बकारिए दिलो चश्मे रक़ीब[7] साग़र खींच।

रदीफ़ दाल[8]

[३१]

हमसे खुलता है तो उसमेंसे धुआँ उठता है
शोलए इश्क़ सियहपोश हुआ मेरे बा'द।
ख़ूँ है दिल ख़ाकमें अहवाले बुताँ पर या'नी
इनके नाख़ुन हुए मुहताजे हिना मेरे बा'द।

---

१ कुशलता २ आज रोदनका तूफ़ान घर-बार को घेरकर दौड़ा हुआ है ३ अरमानोंकी महफ़िल कामनाओंकी भीड़ ४ प्रियदर्शनकी खोजमें यत्नकी सीमा ५ कण्टक-तुल्य ६ नर्गिसकी दृष्टि तेरी ओर लालसापूर्वक देख रही है ७ रक़ीब (प्रतिद्वन्दी) के अप्रतिम और अन्धी आँखके नामपर ८ काफ़्य या तुकान्तका रदीफ़ ९ मेंहदीके मुहताजी।

कौन होता है हरीफ़े मये मर्द अफ़गने इश्क़,
है मुकर्रर लबे साक़ी पे सला मेरे बा'द।
आये है बेकसीए इश्क़ प रोना 'ग़ालिब',
किसके घर जायगा सैलाबे बला मेरे बा'द।

रशीद ने।

[३२]

मक़सद है नाज़ो ग़मज़े वले गुफ़्तगूमें काम
चलता नहीं है, दश्न ओ ख़ंजर कहे बग़ैर।
हरचन्द हो मुशाहदए हक़की गुफ़्तगू,
बनती नहीं है बादा ओ साग़र कहे बग़ैर।

[३३]

साबित हुआ है गर्दने मीना पे ख़ूने ख़ल्क़
लरज़े है मौजे मय तेरी रफ़्तार देखकर।
इक आबलेसे पाँवके घबरा गया था मैं,
जी ख़ुश हुआ है राहको पुरख़ार देखकर।
गिरनी थी हम प बर्क़े तजल्ली न तूर पर
देते हैं बादा ज़र्फ़े क़दह ख़्वार देखकर।

---

१ प्रेमकी विनाशिनी मदिराको सहन करनेमें मेरी बराबरी करनेवाला २ बारम्बार, ३ साक़ीके अधर, ४ आमंत्रण ५ असमर्थता और हाय-हाय ६ कटार और छुरी ७ ब्रह्म-दर्शन ८ मधु एवं मधुपात्र ९ सुराहीकी गरदन १० संसारका खून ११ कम्पित १२ ब्रह्मज्योतिकी बिजली १३ एक पर्वत १४ पानका प्याला पीनेवालेका साहस देखकर।

[५४]

लरज़ता है मेरा दिल ज़हमते मेहरे दरख़्शाँ[1] पर,
मैं हूँ वह क़तरए शबनम[2] जो हो ख़ारे बयाबाँ[3] पर।
न छोड़ी हज़रते यूसुफ़ने याँ भी ख़ाना आराई,
सफ़ेदी दीदए या'क़ूबकी, फिरती है ज़िन्दाँपर[4]।
मुझे अब देखकर अब्रे शफ़क़ आलूद[5] याद आया
कि फ़ुर्क़तमें तेरी आतिश बरसती थी गुलिस्ताँपर।
बजुज़ परवाज़े शौक़े नाज़[6] क्या बाक़ी रहा होगा,
क़यामत इक हवाए तुन्द[7] है ख़ाके शहीदाँपर[8]।

[५५]

यारब न वह समझे हैं, न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको जो न दे मुझको ज़बाँ और।
क्या न अगर दिल तुम्हें देता कोई दम चैन
करता जो न मरता कोई दिन, आहो फ़ुग़ाँ और।
हैं और भी दुनियामें सुख़नवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि ग़ालिबका है अन्दाज़े बयाँ और।

[५६]

लाज़िम था कि देखा मेरा रस्ता कोई दिन और,
तनहा गये क्यों अब रहा तनहा कोई दिन और।

---

१ चमकते सूर्यका कष्ट २ ओसकी बूँद ३ वन-कण्टक ४ घर [illegible] यूसुफ़के पिता से जब यूसुफ़ ज़िन्दाँमें छोड़कर लिये गये तो बाप रो-रोकर अन्धे हो गये इसीपर यह उक्ति है, ५ सन्ध्याकालिमा-रञ्जित बादल ६ प्रेमकी उमंगमें उड़ते-फिरते ७ प्रभंजन ८ शवोंके।

आये हो कल और आज ही कहते हो, कि जाऊँ,
माना कि हमेश नहीं अच्छा, कोई दिन और।
जाते हुए कहते हो, क़यामतको मिलेंगे
क्या ख़ूब, क़यामतका है गोया कोई दिन और।
नादाँ हो, जो कहते हो कि क्यों जीते हो 'ग़ालिब',
क़िस्मत है मरनेकी तमन्ना कोई दिन और।

रुबाइयाँ

[५७]

क्योंकर उस बुतसे रखूँ जान अज़ीज़,
क्या नहीं है मुझे ईमान अज़ीज़ ?
दिलसे निकला प न निकला दिलसे,
है तेरे तीरका पैकान अज़ीज़।

[५८]

नै गुल नग़्म[1] हूँ, न पर्दए साज़[2],
मैं हूँ अपनी शिकस्तकी आवाज़[4]।
तू और आराइशे ख़मे काकुल[5]
मैं, और अन्देशहाय दूर-दराज़।

---

१ गीत २ संगीत-यन्त्र ३ बाजका पर्दा जिससे सुर निकलते हैं, ४ पराजयकी वाणी ५. कुटिल अलकोंका शृंगार, ६. दूर दूरकी चिन्ताएँ।

ए तेरा ग़मज़ा[1], यक क़लम अंगेज़[2],
ए तेरा ज़ुल्म सर ब सर अन्दाज़[3]।
मुझको पूछा तो कुछ ग़ज़ब न हुआ,
मैं ग़रीब और तू ग़रीबनवाज़।

रदीफ़ 'शीन'

[३९]

न लेवे गर ख़से जौहर[4] तरावत[5] सब्ज़ए ख़त[6] से,
लगावे ख़ान ए आइने[7] में रूए निगार[8] आतिश[9]।
फ़रोग़े हुस्न से होती है हल्ले मुश्किले आशिक़[10],
न निकले शमअ के पा-से निकाले गर न ख़ार आतिश।

रदीफ़ 'ऐन'

[४०]

जादए रह[11] ख़ुर[12] को वक़्ते शाम है तारे शुआअ[13],
चर्ख़ वा करता है माहे नौ[14] से आग़ोशे विदाअ[15]।

[४१]

रुख़े निगारसे, है सोज़े जाविदानिए शमअ[16]
हुई है आतिशे गुल, आबे ज़िन्दगानिए शमअ।

---

१ कटाक्ष २ पूर्णतः मनोभावोंको उभाड़नेवाला ३ नख़से शिख तक तेरा हाव-भाव ४ जौहरके गुण ५ शीतलता तरी ६ मुखरोम ७ दर्पण ८ प्रेयसीका मुख ९ सौन्दर्यकी कान्ति १० प्रेमीकी कठिनाइयोंका समाधान ११ पथ-चिह्न १२ सूर्य १३ किरणोंका तार, १४ नवचन्द्र १५ विदाईकी गोद १६ शमअ (दीपक) की अमर जलन १७ पुष्प (माशूक) की कान्ति।

परतवे ख़ुर[1] से है शबनमको फ़नाकी तालीम,
मैं भी हूँ एक इनायतकी नज़र होने तक।
ग़मे हस्तीका, 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग[2] इलाज,
शमअ हर रंगमें जलती है सहर होने तक।

रदीफ़ 'काफ़'

[४४]

गर तुझको है यक़ीने इजाबत[3] दु'आ न माँग,
या'नी बग़ैर यक दिले बे मुद्द'आ[4] न माँग।
आता है दाग़े हसरते दिलका शुमार[5] याद,
मुझसे मेरे गुनहका हिसाब, ऐ ख़ुदा न माँग।

रदीफ़ 'लाम'

[४५]

है किस क़दर हलाके फ़रेबे वफ़ाए गुल[6],
बुलबुलके कारोबार पे हैं ख़न्दहाए गुल।
शर्मिन्द रखते हैं मुझे बादे बहारसे
मीनाए बेशराबो दिले बेहवाए गुल[7]।
तेरे ही जल्वे का है यह धोखा, कि आज तक,
बेइख़्तियार दौड़े है गुल दरक़फ़ाए गुल[8]।

---

१ सूर्य-प्रकाश २ मृत्युके सिवा ३ स्वीकृतिका विश्वास ४ निष्काम हृदयके बिना ५ हृदयकी अपूर्ण कामनाओंके दाग़की गिनती ६ फूलकी वफ़ाके भ्रमका शिकार, ७ मदिरारहित मधुपात्र (प्याला) एवं कुसुम-कामना-रहित हृदय (सूना हृदय) ८ फूलके पीछे फूल।

[४९]

की वफ़ा हमसे, तो ग़ैर उसको जफ़ा कहते हैं,
होती आई है, कि अच्छोंको बुरा कहते हैं।
आज हम अपनी परीशानिए ख़ातिर[1] उनसे,
कहने जाते तो हैं, पर देखिए क्या कहते हैं।
है परे सरहदे इदराक[2]से, अपना मस्जूद[3],
क़िबलेको अहलेनज़र[4] क़िबलानुमा[5] कहते हैं।

[५०]

हो गये हैं जमा अजज़ाए निगाहे आफ़ताब[6],
ज़र्रे उसके घरकी दीवारोंके रौज़न[7]में नहीं।
रौनके हस्ती है इश्क़े ख़ाना वीराँसाज़से[8]
अंजुमन बेशमअ[9] है, गर बर्क़ ख़िर्मनमें नहीं।
थी वतनमें शान क्या ग़ालिब कि हो ग़ुर्बतमें क़द्र,
बेतकल्लुफ़ हूँ वह मुश्तेख़स[10] कि गुलख़न[11]में नहीं।

[५१]

मेहरबाँ होके बुलालो मुझे, चाहो जिस वक़्त
मैं गया वक़्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूँ।
ज़हर मिलता ही नहीं मुझको, सितमगर वर्ना,
क्या क़सम है तेरे मिलनेकी कि खा भी न सकूँ।

---

१ हृदय-व्यथा २ ज्ञान-सीमा ३ उपास्य ४ ज्ञानी दृष्टि रखने वाले ५ दिशादर्शक ६ सूर्यके दृष्टि-खण्ड (किरणें) ७ रोशनदान ८ घरको वीरान कर देनेवाले प्रेमसे ही अस्तित्वकी शोभा है ९ दीपरहित १० मुट्ठीभर घास ११ भट्ठी।

तमाशा कि ऐ महू आईनःदारी[1],
तुझे किस तमन्नासे हम देखते हैं।

[४६]

ता फिर न इन्तिज़ारमें नींद आये उम्र भर,
आनेका अहद कर गये, आये जो ख़्वाबमें।
क़ासिद[2] के आते आते, ख़त इक और लिख रखूँ,
मैं जानता हूँ जो वह लिखेंगे जवाबमें।
है तेवरी चढ़ी हुई अन्दर निक़ाबके,
है इक शिकन पड़ी हुई, तर्फ़े निक़ाबमें[3]।
लाखों लगाव, एक चुराना निगाहका
लाखों बनाव, एक बिगड़ना इताबमें[4]।

[५०]

वो क्यों निकलने पाती है तनसे दमे समाअ[5],
गर वह सदा[6] समाई है चंगो[7] रबाबमें[8]।
रौ[9] में है रख़्शे-उम्र[10], कहाँ देखिए, थमे,
ने हाथ बागपर है, न पा है रिकाबमें।
अस्ले[11] शुहूदो[12] शाहिदो[13] मशहूद[14] एक है
हैराँ हूँ, फिर मुशाहिदः[15] है किस हिसाबमें।

---

१ अपने शृङ्गारमें लीन २ पत्र-वाहक ३ निक़ाबके कोनेमें ४ क्रोध ५ गाना-बजानेके समय ६ ध्वनि ७ एक बाजा ८ सितार, ९ गति १० जीवन-अश्व ११ मूल १२ उपस्थिति १३ प्रत्यक्षदर्शी १४ दर्शनीय (११-१२-१४ साधक और साध्यकी अवस्थाएँ हैं) १५ दृश्य देखना अवलोकना।

है मुश्तमिल नुमूदे सुवर[1] पर वजूदे बह्र[2]
याँ क्या धरा है क़तरा ओ मौजो हुबाब में[3]।
शर्म इक अदाए नाज़ है, अपने ही से सही
हैं कितने बेहिजाब कि हैं यों हिजाबमें।
आराइशे जमाल[4]से फ़ारिग़ नहीं हनोज़,
पेशे नज़र है आइना दाइम निक़ाबमें।
है ग़ैबे-ग़ैब[5], जिसको समझते हैं हम शुहूद[6],
हैं ख़्वाबमें हनोज़ जो जागे हैं ख़्वाबमें।

[१८]

हैराँ हूँ दिलको रोऊँ कि पीटूँ जिगरको मैं,
मक़दूर हो तो साथ रखूँ नौहागर[7]को मैं।
छोड़ा न रश्कने, कि तेरे घरका नाम लूँ
हर इकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं।
चलता हूँ थोड़ी दूर हर-इक तेज़रौके साथ
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मैं।
ख़्वाहिशको अहमक़ोंने परस्तिश[8] दिया क़रार
क्या पूजता हूँ उस बुते बेदादगर[9]को मैं।
फिर बेख़ुदीमें भूल गया राहे कूए यार
जाता वगरना एक दिन अपनी ख़बरको मैं।

---

१ रूपाभिव्यक्तिमें सम्मिलित है, २ सागरका अस्तित्व ३ बिन्दु, तरंग और बुदबुद ४ सौन्दर्य-शृङ्गार ५ परोक्षका परोक्ष ६ प्रत्यक्ष ७ शोक मनानेवाला ८ पूजा ९ ज़ालिम या मूर्त १ [illegible] नाम।

[५९]

मैं जो कहता हूँ, कि हम लेंगे क़यामतमें तुम्हें,
किस रऊनतसे वह कहते हैं कि हम हूर नहीं।

[६०]

दोनों जहान देके, वह समझे, यह ख़ुश रहा,
याँ आ पड़ी यह शर्म कि तकरार क्या करें।
थक-थकके, हर मक़ाम प दो-चार रह गये,
तेरा पता न पायें, तो नाचार क्या करें।
क्या शमअके नहीं हैं हवाख़्वाह अह्ले बज़्म,
हो ग़म ही जाँगुदाज़, तो ग़मख़्वार क्या करें।

[६१]

यह हम जो हिज्रमें दीवारो दरको देखते हैं
कभी सबाको कभी नामाबरको देखते हैं।
वह आयें घरमें हमारे, ख़ुदाकी क़ुदरत है,
कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते हैं।

[६२]

आहका किसने असर देखा है
हम भी इक अपनी हवा बाँधते हैं।*
तेरी फ़ुर्सतके मुक़ाबिल ऐ उम्र,
बर्क़को पा ब हिना बाँधते हैं।

---

१ गर्व २ शुभचिन्तक ३ प्राण-लेवा ४ मेंहदी-रंजित चरण (गतिहीन)।

* उर्दूमें गपशपको मज़मून बाँधना कहते हैं। हवा बाँधनाका अर्थ धाक बाँधना, धूमकी लेना है।

[६३]

क्यों गर्दिशे मुदाम[1] से घबरा न जाये दिल,
इंसान हूँ, पियाला ओ साग़र नहीं हूँ मैं।†
यारब ज़माना मुझको मिटाता है किसलिए
लौहे जहाँ[2] प हर्फ़े मुकर्रर[3] नहीं हूँ मैं।
ग़ालिब, वज़ीफ़ा-ख़्वार हो दो शाहको दुआ
वह दिन गये कि कहते थे नौकर नहीं हूँ मैं।

[६४]

सब कहाँ कुछ लाला ओ गुलमें नुमायाँ हो गयीं
ख़ाकमें क्या सूरतें होंगी कि पिन्हाँ[4] हो गयीं।
थीं बनातुन्नाशे गर्दूं[5] दिनको पर्देमें निहाँ
शबको उनके जीमें क्या आई कि उरियाँ हो गयीं।
जूए ख़ूँ आँखोंसे बहने दो कि है शामे फ़िराक़
मैं यह समझूँगा कि शमएँ दो फ़रोज़ाँ हो गयीं।
नींद उसकी है दिमाग़ उसका है रातें उसकी हैं
तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ूपर परीशाँ हो गयीं।
वह निगाहें क्यों हुई जाती हैं यारब दिलके पार,
जो मेरी कोताहिये क़िस्मतसे मिज़गाँ हो गयीं।

---

१ सदा के चक्कर (परेशानी) २ संसार-पृष्ठ ३ दुबारा लिखा (पुनरुक्त) अक्षर ४ विलीन ५ सप्तर्षि-मण्डल ६ दीप्त।

† प्राचीन कालमें साक़ी महफ़िलके बीच एक ही मधु-पात्र पीने के लिए देता था वह निरन्तर घूमता रहता था।

यों फ़िज़ा है याद, जिसके हाथमें जाम था गया,
सब लकीरें हाथकी, गोया रगेजाँ हो गयीं।
हम मुवहिद[1] हैं, हमारा केश[2] है, तर्के रुसूम[3]
मिल्लतें जब मिट गयीं, अज्ज़ाए ईमाँ[4] हो गयीं।
रंजसे ख़ूगर[5] हुआ इंसाँ तो मिट जाता है रंज,
मुश्किलें मुझपर पड़ी इतनी, कि आसाँ हो गयीं।

[६५]

मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ, तो सहल है
दुश्वार तो यही है, कि दुश्वार भी नहीं।
इस सादगी प कौन न मर जाये, ऐ ख़ुदा,
लड़ते हैं और हाथमें तलवार भी नहीं।

[६६]

दिल ही तो है, न संगो ख़िश्त[6] दर्दसे भर न आये क्यों
रोयेंगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताय क्यों?
दैर[7] नहीं हरम[8] नहीं दर[9] नहीं आस्ताँ[10] नहीं,
बैठे हैं रहगुज़र[11] प हम कोई हमें उठाये क्यों?
जब वह जमाले दिलफ़रोज़[12] सूरते मेह्रे नीमरोज़[13],
आप ही हो नज़ारः साज़[14] पर्देमें मुँह छुपाये क्यों?

---

१ सृष्टिकी एकतामें विश्वास रखनेवाला २ ढंग धर्म ३ परम्परा-त्याग ४ आस्थाके अंग ५ अभ्यस्त ६ पत्थर-ईंट ७ मन्दिर ८ मस्जिद काबा ९ द्वार १० चौखट ११ मार्ग १२ दिलको प्रकाशित करनेवाला रूप १३ मध्याह्नके सूर्य-समान १४ दृष्टिको बढ़ानेवाला।

दश्नःए ग़मज़ा जाँसिताँ,[2] नावके नाज़ बेपनाह[3],
तेरा ही अक्से रुख़ सही, सामने तेरे आये क्यों ?
वाँ वह ग़ुरूरे इज़्ज़ोनाज़[4], याँ यह हिजाबे पासे वज़अ[5],
राहमें हम मिलें कहाँ, बज़्ममें वह बुलाये क्यों ?

[६७]

मैंने कहा कि, बज़्मे नाज़[6] चाहिए ग़ैरसे तिही[7],
सुनके सितम ज़रीफ़ने[8] मुझको उठा दिया कि यों।
मुझसे कहा जो यारने, जाते हैं होश किस तरह
देखके मेरी बेख़ुदी, चलने लगी हवा कि यों।
गर तेरे दिलमें हो ख़याल वस्लमें शौक़का ज़वाल[9],
मौजे मुहीते आब[10] में मारे है दस्तोपा कि यों।

रदीफ़ 'वाव'

[६८]

हसरतसे दिल अगर अफ़्सुर्दः[11] है गर्मे तमाशा हो,
कि चश्मे तंग[12] शायद कसरते नज़्ज़ारः[13] से वा हो।

---

१ कटाक्ष-कटारी २ प्राणलेवा ३ पर्दपूर्ण सौन्दर्यका बाण जिससे रक्षा सम्भव नहीं ४ अपनी शानका अभिमान ५ अपनी परम्परा रखनेकी लज्जा ६ मा'शूककी महफ़िल ७ रिक्त ८ अत्याचारमें भी परिहास करनेवाला ९ पतन ह्रास १० जलपरिधि ११ खिन्न १२ संकीर्ण नयन १३ दृश्यके आधिक्य।

अगर वह सर्वक़द, गर्मे ख़िरामे नाज़ आ जाये,
कफ़े हर ख़ाके गुलशन शक्ले क़ुमरी नाला फ़र्सा हो[3]।

[६९]

ता'अत[4]में ता रहे न मय-ओ-अंगबीं[5]की लाग,
दोज़ख़में डाल दो कोई लेकर बहिश्तको।
हैं मुन्हरिफ़[6] न क्यों रहो रस्मे सवाबसे
टेढ़ा लगा है क़त, क़लमे सर नविश्त[7]का।

[७०]

है आदमी बजाए ख़ुद इक महशरे ख़याल[8],
हम अंजुमन समझते हैं, ख़ल्वत[9] ही क्यों न हो।

[७१]

वफ़ादारी बशर्ते उस्तुवारी[10] अस्ल ईमाँ[11] है,
मरे बुतख़ाने में तो का'बेमें गाड़ो बरहमनको।
शहादत थी मेरी क़िस्मतमें जो दी थी यह ख़ू मुझको
जहाँ तल्वारको देखा, झुका देता था गर्दनको।
न लुटता दिनको तो कब रातको यों बेख़बर सोता
रहा खटका न चोरीका दुआ देता हूँ रहज़न[12]को।

---

१ मस्त मन्थर गतिवाला २ बागकी प्रत्येक मुट्ठीभर मिट्टी ३ फ़ाख्तेकी तरह आर्तनाद कर उठे अर्थात् हज़ार जानसे आशिक हो जाये ४ पूजा ५ मदिरा और मधु, ६ विद्रोही ७ भाग्यलेखनी ८ कल्पनाका प्रलय ९ एकान्त १० स्वामिभक्ति शर्तके साथ वफ़ादारी ११ धर्मका मूल १२ लुटेरा।

[७२]

आता हूँ जब मैं पीनेको, उस सीमतन के पाँव,
रखता है जिदस, खेंचके बाहर लगनके पाँव।
अल्लाह रे ज़ौक़े दश्तनवर्दी कि बा'द मर्ग,
हिलते हैं खुद-बखुद मेरे अन्दर कफ़नके पाँव।
धक्का किसीके ख्वाबमें आया न हो कहीं
दुखते हैं आज उस बुते नाज़ुक बदनके पाँव।

[७३]

याँ पहुँचकर जो ग़श आता पैहम है हमको,
सदरह आहंगे ज़मीं बोसे क़दम है हमको।
दिलको मैं, और मुझे दिल, महवे वफ़ा रखता है,
किस क़दर ज़ौक़े गिरफ्तारिये हम है हमको।
तुम वह नाज़ुक कि ख़मोशीको फ़ुग़ाँ कहते हो,
हम वह आजिज़ कि तग़ाफ़ुल भी सितम है हमको।

[७४]

तुम जाना तुमको ग़ैरसे जो रस्मो-राह हो
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो।
उभरा हुआ निक़ाबमें है उनके एक तार
मरता हूँ मैं कि यह न किसीकी निगाह हो।
सुनते हैं जो बिहिश्तकी तारीफ़, सब दुरुस्त
लेकिन ख़ुदा करे वह तेरी जल्वा गाह हो।

---

१ चन्द्रमुखी रजत कामिनीको २ निरन्तर (पैहम) ३ सौ बार
४ चरण चूमनेके लिए ज़मीनपर झुकनेकी भावना।

[७५]

किसीको देके दिल कोई नवासंजे फ़ुग़ाँ[1] क्यों हो,
न हो जब दिल ही सीनेमें, तो फिर मुँहमें ज़बाँ क्यों हो।
वफ़ा कैसी, कहाँका इश्क़, जब सर फोड़ना ठहरा,
तो फिर, ऐ संगे दिल, तेरा ही संगे आस्ताँ क्यों हो।
यह कह सकते हो, हम दिलमें नहीं हैं पर यह बतलाओ,
कि जब दिलमें तुम्हीं तुम हो, तो आँखोंसे निहाँ क्यों हो।

[७६]

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो
हमसुख़न[2] कोई न हो और हमज़बाँ[3] कोई न हो।
बेदरो दीवार-सा इक घर बनाया चाहिए,
कोई हमसाया न हो और पासबाँ[4] कोई न हो।
पड़िए गर बीमार, तो कोई न हो तीमारदार,
और अगर मर जाइए, तो नौहाख़्वाँ[5] कोई न हो।

रदीफ़ 'छ'

[७७]

है सब्ज़ाज़ार[6] हर दरो दीवारे ग़मकदा[7],
जिसकी बहार यह हो फिर उसकी ख़िज़ाँ न पूछ।
नाचार बेकसीकी भी हसरत उठाइए,
दुश्वारिए रह ओ सितमे हमरहाँ[8] न पूछ।

---

१ रोदनका स्वर उत्पन्न करनेवाला २ बात करनेवाला ३ अपनी भाषा बोलनेवाला ४ पहरेदार, ५ रोनेवाला ६ हरीतिमा ७ शोक-गृहके द्वार-दीवार ८ सहयात्रियोंके अत्याचार।

रदीफ़ 'ये'

[७८]

सीखे हैं महरुख़ों के लिए हम मुसव्विरी[2],
तक़रीब कुछ तो बह्रे मुलाक़ात चाहिए।
मयसे ग़रज़ निशात है किस रूसियाह[3] को,
इक गूना[4] बेख़ुदी मुझे दिन-रात चाहिए।

[७९]

घरमें था क्या, कि तेरा ग़म उसे ग़ारत करता,
वह जो रखते थे हम इक हसरते ता'मीर[5], सो है।

[८०]

ग़मे दुनियासे, गर पाई भी फ़ुरसत सर उठानेकी,
फ़लकका देखना तक़रीब तेरे याद आनेकी।
उन्हें मंजूर अपने ज़ख़्मियोंका देख आना था
उठे थे सैरे गुलको, देखना शोख़ी बहानेकी।
हमारी सादगी थी इल्तिफ़ाते नाज़ पर मरना,
तेरा आना न था ज़ालिम मगर तमहीद जानेकी।

[८१]

दर्दसे मेरे है तुझको बेक़रारी हाय-हाय
क्या हुई ज़ालिम तेरी ग़फ़लतशिआरी हाय-हाय।

---

१ चन्द्रवदनियों २ चित्रकारी ३ कृष्णमुख पापी ४ किंचित्, ५. निर्माणकी कामना ६ कारण ७ मासूमकी कृपा ८ भूमिका ९. असावधान आचरण।

[८३]

जी जले ज़ौक़े फ़ना[1] की नातमामी पर न क्यों
हम नहीं जलते, नफ़स हरचन्द आतशबार[2] है।
आगसे, पानीमें बुझते वक़्त उठती है सदा,
हर कोई दरमाँदगी[3] में नालेसे नाचार है।
यासकी तस्वीर सरनामे प खेंची है, कि ता,
तुझ प खुल जावे कि इसको हसरते दीदार[4] है।

[८४]

इश्क़ मुझको नहीं, वहशत ही सही,
मेरी वहशत, तेरी शोहरत ही सही।
क़त्अ कीजे न तअल्लुक़ हमसे,
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही।
हम कोई तर्के वफ़ा करते हैं!
न सही इश्क़ मुसीबत ही सही।
यारसे छेड़ चली जाये असद
गर नहीं वस्ल, तो हसरत ही सही।

[८५]

डरते हैं उस मुग़ालिए आलमे मस्तीको जो,
जिसकी सज़ा हो असद प बर्केफ़ना मुझे।

---

१ मृत्युकी उत्कण्ठा २ अग्निवर्षक ३ क्लेश ४ दयनेच्छा
५. नाम बतानेके स्थानमें नामवाला नामक ६ मृत्युकी बिजलीकी छवि।

मस्तान तय करूँ हूँ रहे वादिए ख़याल,[1]
ता बाज़गश्त[2] से न रहे मुद्द'आ मुझे।
ग़ुस्सा किसी प क्यों, मेरे दिलका मु'आमला,
क्योंकि इन्तिख़ाबने रुस्वा किया मुझे।

[८६]

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्लसे गुज़री, 'ग़ालिब',
हम भी क्या याद करेंगे कि ख़ुदा रखते थे।

[८७]

नज़्ज़ार क्या हरीफ़ हो, उस बर्क़े हुस्न[4] का
जोशे बहार, जल्वेको जिसके निक़ाब है।
मैं नामुराद दिलकी तसल्लीको क्या करूँ,
माना कि तेरे रुख़से निगह कामयाब है।
गुज़रा असद, मसर्रते[5] पैग़ामे यार से,
क़ासिद प मुझको रश्के सवालो जवाब है।

[८८]

देखना क़िस्मत, कि आप अपने प रश्क आ जाये है
मैं उसे देखूँ, भला कब मुझसे देखा जाये है।
हाथ धो दिलसे यही गर्मी गर अन्देशे[6] में है,
आबगीन[7] तुन्दिए सहबा[8] से पिघला जाये है।

---

१ कल्पनाकी घाटियोंके मार्ग २ जिससे ३ प्रत्यावर्तनसे लौटने ध्येय ४ सौन्दर्य-विद्युत्, ५ प्रियके सन्देशके आह्लादसे ६ चिन्ता ७ शीशेका पात्र (दिल) ८ मदिराकी तीव्रता।

ग़ैरको, यारब, वह क्योंकर मनए गुस्ताख़ी[1] करे,
गर हया भी उसको आती है तो शरमा जाये है।
शौक़को यह लत कि हर दम नाले खेंचे जाइए,
दिलकी वह हालत, कि दम लेनेसे घबरा जाये है।
गरचे है तर्ज़ें तग़ाफ़ुल[2] पर्दादारे राज़े इश्क़[3],
पर हम ऐसे खोये जाते हैं, कि वह पा जाये है।
होके आशिक़, वह परीरुख़, और नाज़ुक बन गया
रंग खुलता जाये है जितना कि उड़ता जाये है।
नक़्शको उसके, मुसव्विर पर भी क्या-क्या नाज़ हैं,
खेंचता है जिस क़दर उतना ही खिंचता जाये है।

[८६]

देखना तक़रीरकी लज़्ज़त, कि जो उसने कहा
मैंने यह जाना, कि गोया यह भी मेरे दिलमें है।
बस हुजूमे नाउमीदी ख़ाकमें मिल जायगी
यह जो इक लज़्ज़त हमारी सइए बेहासिल[4]में है।
जल्वज़ार आतशे दोज़ख़[5], हमारा दिल सही
फ़ितनए शोरे क़यामत[6] किसके आबोगिल[7]में है।

—

१ धृष्टताको मना करना २ उपेक्षाका ढंग ३ प्रेम-रहस्यको छिपानेवाला ४ निष्फल प्रयास ५ नरककी अग्नि प्रदर्शिका ६ प्रलयके शोरका फ़ितना ७ पानी-मिट्टी (शरीर)।

[१०]

दिलसे तेरी निगाह जिगरतक उतर गयी,
दोनोंको इक अदामें रज़ामन्द कर गयी।
देखा था, दिलफ़रेबिए अन्दाज़े नक़्श पा[1],
मौजे ख़िरामे यार[2] भी, क्या गुल कतर गयी[3]।
हर बुलहवसने[4] हुस्नपरस्ती[5] शिआर[6] की,
अब आबरूए शेवए अहले नज़र[7] गयी।
नज़्ज़ारे ने भी, काम किया वाँ निक़ाबका,
मस्तीसे हर निगह तेरे रुख़पर बिखर गयी।

[११]

कोई दिन, गर ज़िन्दगानी और है,
अपने जीमें हमने ठानी और है।
दके ख़त मुँह देखता है नामबर,
कुछ तो पैग़ामे ज़ुबानी और है।

[१२]

कोई उम्मीद बर नहीं आती,
कोई सूरत नज़र नहीं आती।
मौतका एक दिन मुअय्यन है,
नींद क्यों रातभर नहीं आती।

---

१ चरण-चिह्नकी मनमोहकता २ प्रियकी मंथरगतिकी तरंग ३ खूब बिखेर गयी ४ लोभी ५ सौन्दर्योपासना ६ ग्रहणकी ७ दृष्टि रखनेवालोंके आचरणका सम्मान ८ वर्जन दृश्य ९. मि.त्वत।

आगे आती थी हाले दिल प हँसी,
अब किसी बातपर नहीं आती।
जानता हूँ सवाबे ताअतो ज़ुह्द,
पर तबीअत इधर नहीं आती।
है कुछ ऐसी ही बात, जो चुप हूँ,
वर्ना क्या बात कर नहीं आती।
हम वहाँ हैं जहाँसे हमको भी
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।
मरते हैं आरज़ूमें मरनेकी
मौत आती है पर नहीं आती।
का'बा किस मुँहसे जाओगे 'ग़ालिब'
शर्म तुमको मगर नहीं आती।

[६२]

दिले नादाँ, तुझे हुआ क्या है,
आख़िर इस दर्दकी दवा क्या है।
हम हैं मुश्ताक़[1] और वह बेज़ार[2]
या इलाही, यह माजरा क्या है।
मैं भी मुँहमें ज़बान रखता हूँ,
काश, पूछो कि मुद्दआ क्या है।

---

१ उत्सुक २ रुष्ट

कलाम

जब कि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद
फिर यह हंगामा ऐ ख़ुदा क्या है।
यह परीचेहर लोग कैसे हैं,
ग़मज़ा-ओ-इश्वा-ओ-अदा[1] क्या है।
शिकने ज़ुल्फ़े अंबरीं[2] क्यों है,
निगहे चश्म सुर्मा सा[3] क्या है।
सब्ज़-ओ-गुल कहाँसे आये हैं,
अब्र क्या चीज़ है, हवा क्या है।
हमको उनसे वफ़ाकी है उम्मीद,
जो नहीं जानते वफ़ा क्या है।
जान तुमपर निसार करता हूँ,
मैं नहीं जानता, दुआ क्या है।

[१४]

है साइक़ा[4] ओ शोला[5] ओ सीमाब[6] का आलम,
आना ही समझमें मेरी आता नहीं, गो आये।
जल्वःसे डरते हैं, न वाइज़से झगड़ते,
हम समझे हुए हैं उसे जिस भेसमें आ जाये।
हाँ अहले तलब कौन सुने ताने नायाफ़्त[7],
देखा कि वह मिलता नहीं अपने ही को खो आये।

---

१ फ़साद और हाव-भाव २ अम्बर-गन्धमयी अलकोंके घूँघर, ३ सुरमा (अंजन)-रंजित नयनोंकी चितवन ४ बिजली ५ ज्वाला, ६ पारा ७ वाञ्छित वस्तु न मिलनेका ताना।

[१५]

हस्ती हमारी, अपनी फ़नापर दलील[1] है,
याँ तक मिटे, कि आप हम अपनी क़सम हुए।
अहले हवसकी फ़तह है तर्के नबर्दे इश्क़[2]
जो पाँव उठ गये वही उनके अलम[3] हुए।
छोड़ी, असद न हमने गदाईमें दिल्लगी
सायल हुए, तो आशिक़े अहले करम हुए।

[१६]

ज़ुल्मतकदे[4] में मेरे शबे ग़मका जोश है
इक शमअ है दलीले सेहर, सो ख़मोश है।
ने मुज़्दए विसाल[5], न नज़्ज़ारए जमाल[6],
मुद्दत हुई कि आश्तिए चश्मोगोश[8] है।
दीदार बादा हौसला साक़ी, निगाह मस्त
बज़्मे ख़याल मयकदए बेख़रोश[10] है।

क़तआ

ऐ ताज़ा वारिदाने बिसाते हवाए दिल[11],
ज़िन्हार अगर तुम्हें हवसे नायो नोश[12] है।

१ प्रमाण २ लोभियोंकी विजय प्रेमके संघर्षका परित्याग है ३ झण्डा ४ तिमिराच्छन्न गृह ... ... ५ मिलनका सन्देश ७ रूप-दर्शन ८ नयन एवं कानोंकी मैत्री ९ ... १० ... ११ इच्छाओंकी महफ़िलमें नये आनेवालो १२ भोजन और पीनेकी इच्छा।

देखो मुझे, जो दीदए इबरतनिगाह[1] हो,
मेरी सुनो, जो गोशे नसीहत निओश[2] है।
साक़ी, बजल्वा दुश्मने ईमानो आगही[3]
मुतरिब[4], बनग़मा[5], रहज़ने तम्कीनो होश[6] है।
या शबको देखते थे, कि हर गोशए बिसात[7],
दामाने बाग़बानो कफ़े गुलफ़रोश[8] है।
लुत्फ़े ख़िरामे साक़ियो ज़ौक़े सदाए चंग
यह जन्नते निगाह[9] वह फ़िर्दौसे गोश[10] है।
या सुब्हदम जो देखिए आकर, तो बज़्ममें
ने वह सुरूरो सोज़[11], न जोशो ख़रोश[12] है।
दाग़े फ़िराक़े सोहबते शबकी जली हुई[13],
इक शमअ रह गयी है, सो वह भी ख़मोश है।

[६७]

देते हैं जन्नत हयाते दहर[14] के बदले,
नशा बअन्दाज़ए ख़ुमार[15] नहीं है।

---

१ शिक्षा लेनेवाली आँख २ उपदेशपर ध्यान देनेवाले कान, ३ अपनी छबिके कारण साक़ी ईमान व ज्ञान ले लेता है, ४ गायक, ५ संगीत द्वारा ६ मनकी शान्ति और बुद्धिको लूट लेता है ७ फ़र्श का हरएक कोना ८ मालीका दामन और फूल बेचनेवालेकी हथेली ९ माशूक (साक़ी) की मधुर गति और बाजा-ध्वनि १० स्वर्ग-नयन ११ स्वर्ग-श्रवण १२ ख़ुशी और गर्मी १३ रातकी महफ़िलके वियोगके दाग़से जली हुई १४ इस जगत्के जीवन १५ मदिरापानके बराबर नशा।

हमको मालूम है, जन्नतकी हक़ीक़त, लेकिन,
दिलके ख़ुश रखनेको, ग़ालिब यह ख़याल अच्छा है।

[१००]

एक हंगामे प मौक़ूफ़, है घरकी रौनक़,
नौहए ग़म ही सही, नग़मए शादी न सही।
न सताइश[1] की तमन्ना, न सिले[2] की परवा,
गर नहीं हैं मेरे अशआरमें मा'नी न सही।

[१०१]

ख़ुदाके वास्ते, दाद इस जुनूने शौककी देना,
कि उसके दर प पहुँचते हैं नाम बरसे हम आगे।

[१०२]

हर एक बात प कहते हो तुम कि तू क्या है,
तुम्हीं कहो कि यह अन्दाज़े गुफ़्तगू[3] क्या है।
न शो'लेमें यह करिश्मा[4] न बर्क़में यह अदा,
कोई बताओ कि वह शोख़े तुन्द ख़ू[5] क्या है।
जला है जिस्म जहाँ दिल भी जल गया होगा,
कुरेदते हो जो अब राख, जुस्तजू क्या है।
रगोंमें दौड़ते फिरनेके, हम नहीं क़ायल,
जब आँख हीसे न टपका तो फिर लहू क्या है।

१ प्रशंसा २ पुरस्कार ३ बातचीतकी रीति ४ चमत्कार, ५. तीव्र स्वभाववाला चपल (माशूक)

वह चीज़, जिसके लिए हमको हो, बिहिश्त[1] अज़ीज़,
सिवाय बाद:ए गुलफ़ाम मुश्कबू[2] क्या है।

[१०३]

क़ह्र हो या बला हो जो कुछ हो,
काशके, तुम मेरे लिए होते।
मेरी क़िस्मतमें ग़म गर इतना था,
दिल भी, यारब, कई दिये होते।

[१०४]

ग़ैर लें महफ़िलमें, बोसे जामके
हम रहें यों तश्नलब[3] [4]पैग़ामके।
ख़त लिखेंगे, गरचे मतलब कुछ न हो
हम तो आशिक़ हैं तुम्हारे नामके।
रात पी ज़मज़मपै मय और सुबहदम
धोये धब्बे जामए अहरामके।
इश्क़ने ग़ालिब निकम्मा कर दिया,
वर्ना हम भी आदमी थे कामके।

[१०५]

फिर इस अन्दाज़से बहार आई,
कि हुए मह्रो मह[7] तमाशाई।

१ स्वर्ग २ कस्तूरी गन्धमयी फूलों-सी रंगीन मदिरा ३ पिपासित अधर (प्यासे) ४ सन्देशके ५ काबेके निकट एक कुआँ है। ६ काबेकी परिक्रमा करते समय हाजियों-द्वारा शरीरपर लपेटा जानेवाला कपड़ा ७ सूर्य-चन्द्र।

देखो, ए साकिनाने ख़ित्तए ख़ाक[1],
इसको कहते हैं आलम आराई[2]।
कि ज़मीं हो गयी है सर ता सर[3]
रूकश सतहे चर्खे मीनाई[4]।
सब्ज़ा को जब कहीं जगह न मिली,
बन गया रूए आबपर काई।
सब्ज़ा ओ गुलके देखनेके लिए,
चश्मे नर्गिसको दी है बीनाई[7]।
है हवामें शराबकी तासीर,
बादानोशी[8] है बाद पैमाई[9]।

[१०६]

कब वह सुनता है कहानी मेरी
और फिर वह भी ज़बानी मेरी।
कर दिया ज़ोफ़[10]ने आजिज़ ग़ालिब,
नंगे पीरी[11] है, जवानी मेरी।

[१०७]

नक्श है सर अंगुश्ते हिनाई[12] का तसव्वुर[13],
दिलमें नज़र आती तो है इक बूँद लहूकी।

---

१ धरतीके अधिवासियो २ विश्वका शृंगार ३ सम्पूर्ण एक सिरेसे दूसरे सिरेतक ४ नीले आसमानकी बराबरी करनेवाली ५ हरीतिमा ६ पानीके मुख पानीकी सतह ७ दृष्टि-ज्योति ८ मद्यपान ९ हवा-खाना (बेकार) १० दुर्बलता क्षीणता ११ बुढ़ापेको लजानेवाली १२ मेंहदी-रंजित उँगलीका सिरा १३ ध्यान कल्पना।

[१०८]

है वस्ल हिज्र, आलमे तमकीनोज़ब्त[1] में,
मा'शूके शोख़ आशिके दीवाना चाहिए।

[१०९]

चाक मतकर जैब बेअय्यामे-गुल[3],
कुछ उधरका भी इशारा चाहिए।
दोस्तीका पर्दा है बेगानगी,
मुँह छुपाना हमसे छोड़ा चाहिए।
मुनहसिर मरने प हो जिसकी उमीद,
नाउमीदी उसकी, देखा चाहिए।
ग़ाफ़िल इन महतलअतों[4] के वास्ते
चाहने वाला भी अच्छा चाहिए।
चाहते हैं ख़ूबरूयोंका असद
आपकी सूरत तो देखा चाहिए।

[११०]

नुक्ता चीं[5] है ग़मे दिल उसको सुनाये न बने,
क्या बने बात जहाँ बात बनाये न बने।
मैं बुलाता तो हूँ उसको मगर ए जज़्बए दिल[6]
उस प बन जाये कुछ ऐसी कि बिन आये न बने।

---

१ सन्तोष और आत्मनियन्त्रणकी दशामें २ मज़ा ३ फूलोंकी ऋतु (वसन्त) के बिना ४ चन्द्रमुखियों ५ छिद्रान्वेषी (मा'शूक) ६ मनोकामनाकी पूर्ति ७ मनोभाव।

इस नज़ाकतका बुरा हो, वह भले हैं, तो क्या,
हाथ आवें, तो उन्हें हाथ लगाये न बने।
कह सके कौन, कि यह जल्वागरी किसकी है,
पर्दा छोड़ा है वह उसने, कि उठाये न बने।
मौतकी राह न देखूँ, कि बिन आये न रहे,
तुमको चाहूँ, कि न आओ, तो बुलाये न बने।
बोझ वह सरसे गिरा है कि उठाये न उठे,
काम वह आन पड़ा है, कि बनाये न बने।
इश्क़पर ज़ोर नहीं है यह वह आतिश 'ग़ालिब',
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।

[१११]

वह आके ख़्वाबमें, तस्कीने इज़्तिराब तो दे,
वले[2] मुझे तपिशे दिल[3] मजाले ख़्वाब[4] तो दे।
करे है क़त्ल लगावटमें तेरा रो देना,
तेरी तरह कोई तेग़े निगहको[5] आब[6] तो दे।
पिला दे ओकसे साक़ी जो हमसे नफ़रत है,
पियाला गर नहीं देता न दे शराब तो दे।
'असद' ख़ुशीसे मेरे हाथ-पाँव फूल गये
कहा जो उसने ज़रा मेरे पाँव दाब तो दे।

१ बेचैनीमें सान्त्वना २ किन्तु ३ दिलकी तपन ४ सोने एवं स्वप्नकी ताक़त ५ दृष्टिकी तलवार ६ पानी देना चमकाना।

[११२]

न तूफ़ाँ गाहे जोशे इज़्तिराबे शामे तन्हाई[1],
शु'आए आफ़ताबे सुब्हे महशर तारे बिस्तर है[2]।
कहूँ क्या दिलकी क्या हालत है हिज्रे यारमें, ग़ालिब,
कि बेताबीसे, हर इक तारे बिस्तर ख़ारे बिस्तर है।

[११३]

ख़ुदा या जज़्बए दिलकी मगर तासीर उल्टी है,
कि जितना खेंचता हूँ और खिंचता जाये है मुझसे।
उधर वह बदगुमानी है इधर यह नातवानी है,
न पूछा जाये है उससे न बोला जाये है मुझसे।
सँभलने दे मुझे, ऐ नाउमीदी क्या क़यामत है
कि दामाने ख़यालेयार[3] छूटा जाये है मुझसे
क़यामत है कि होवे मुद्दईका हमसफ़र[4], ग़ालिब,
वह काफ़िर, जो ख़ुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे।

[११४]

प्यार इतना है कि गर तू बज़्ममें आ दे मुझे
मेरा जिस्म, देखकर गर कोई बतलादे मुझे।
मुँह न दिखलावे न दिखला पर बअन्दाज़े इताब[5],
खोलकर पर्दा ज़रा आँखें ही दिखला दे मुझे।

---

१ बेचैनीके तूफ़ानसे भरी एकाकीपनकी विरह-सन्ध्या २ बिस्तरका प्रत्येक तार प्रलय-प्रभातके सूर्यकी किरणके समान चमकता है। ३ प्रियतमका आँचल ४ सहयात्री ५ क्रोध दिखाकर ६ मुखकी बातें।

[११५]

बाज़ीचए अत्फ़ाल[1] है दुनिया मेरे आगे,
होता है शबो रोज़[2] तमाशा, मेरे आगे।
मत पूछ कि क्या हाल है मेरा, तेरे पीछे,
तू देख, कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे।
ईमाँ[3] मुझे रोके है जो खेंचे है मुझे कुफ़्र,
का'बा मेरे पीछे है, कलीसा[4] मेरे आगे।
गो हाथको जुम्बिश[5] नहीं आँखोंमें तो दम है,
रहने दो अभी साग़रो मीना[6] मेरे आगे।

[११६]

नहीं ज़रीयए राहत, जराहते पैकाँ[7],
वह ज़ख़्मे तेग़ है, जिसको कि दिलकुशा कहिए[8]।
नहीं निगार[9] को उल्फ़त[10], न हो निगार तो है,
रवानिए रविशो मस्तिए अदा[11] कहिए।
नहीं बहारको फ़ुर्सत न हो, बहार तो है,
तरावते चमनो ख़ूबिए हवा[12] कहिए।

---

१ बच्चोंका खेल २ रात-दिन ३ धर्म ४ गिरजाघर ५ कम्पन ६ मधुपात्र और मधुकलश ७ बाणका घाव जीवका साधन नहीं है ८ दिलको विकसित करनेवाला तो कृपाणका ही घाव है, ९ प्यारी (प्रियतमा) १० प्रेम ११ मस्तीसे भरी चालका ढंग १२ पुष्पोद्यानकी शीतलता और हवाकी खूबी।

[११७]

करने गये थे उससे तग़ाफ़ुल[1]का हम गिला,
की एक ही निगाह, कि बस ख़ाक हो गये।

[११८]

जब तक दहाने ज़ख़्म[2] न पैदा करे कोई,
मुश्किल, कि तुमसे राहे सुख़न वा करे कोई[3]।
सरबों हुए न वादए सब्रआज़मासे उम्र
फ़ुर्सत कहाँ, कि तेरी तमन्ना करे कोई।
हुस्ने फ़रोग़े शमए सुख़न[6] दूर है, असद,
पहले दिले गुदाख़्त[7] पैदा करे कोई।

[११९]

इब्ने मरियम हुआ करे कोई,
मेरे दुखकी दवा करे कोई।
बक रहा हूँ जुनूँमें क्या क्या कुछ,
कुछ न समझे, ख़ुदा करे कोई।
न सुना, गर बुरा कहे कोई,
न कहा गर बुरा करे कोई।

---

१ उपेक्षा उदासीनता २ घावका मुँह, ३ तुमसे बातचीतकी राह निकालना मुश्किल है ४ कर्मण्यमुक्त होना ५ सन्तोषकी परीक्षा लेनेवाला आश्वासन ६ काव्य-प्रदीपके प्रकाशका सौन्दर्य ७ द्रवित हृदय ८ मरियम-पुत्र (ईसामसीह, जो रोगियोंको नीरोग करते फिरते थे)।

रोक लो गर ग़लत चले कोई,
बख़्श[1] दो, गर ख़ता करे कोई।
कौन है, जो नहीं है हाजतमन्द,
किसकी हाजत रवा करे कोई।
क्या किया ख़िज़्र ने सिकन्दरसे[2],
अब किसे रहनुमा करे कोई।
जब तवक़्क़ो[3] ही उठ गयी ग़ालिब,
क्यों किसीका गिला[4] करे कोई।

[१२०]

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी, कि हर ख़्वाहिश प दम निकले,
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।
निकलना ख़ुल्द[5] से आदम[6] का सुनते आये थे, लेकिन,
बहुत बे-आबरू होकर तेरे कूचेसे हम निकले।
मुहब्बतमें नहीं है फ़र्क़, जीने और मरनेका,
उसीको देखकर जीते हैं जिस काफ़िर प दम निकले।

---

१ क्षमा २ ख़िज़्र—एक पैग़म्बर हैं जो भूले-भटकोंको रास्ता बताते हैं। कहा जाता है कि वह सिकन्दरको अमृतके झरनेपर ले गये और स्वयं अमृत पी लिया। सिकन्दरको वे आदमी दिखाये जो अमृत पीकर अमर हो गये थे। सिकन्दरने उनकी हालत देखी तो अमृत पीनेसे इनकार कर दिया ३ आसरा भरोसा ४ शिकायत ५. स्वर्ग ६ आदि पुरुष। जैसे हिन्दुओंमें आदि मनु थे वैसे ही बाइबिल और क़ुरानमें आदि पुरुष आदम थे। यह शैतानके बहकावेमें आ गये इसलिए (मादी हव्वा या ईवके साथ) स्वर्गसे निकाल दिये गये। इन्हींकी सन्तान आदमी हैं।

कहाँ मयख़ानेका दरवाज़ा ग़ालिब और कहाँ वाइज़
पर इतना जानते हैं कल वह जाता था कि हम निकले।

[१२१]

हूँ मैं भी तमाशाइए नैरंगे तमन्ना[1],
मतलब नहीं कुछ इससे कि मतलब ही बर आवे।

[१२२]

सियाही जैसे गिर जाये दमे तहरीर काग़ज़पर
मेरी क़िस्मतमें यों तस्वीर है शबहाए हिज्राँ[2] की।

[१२३]

ख़मोशियोंमें तमाशा अदा निकलती है
निगाह दिलसे तेरे, सुर्मेसा[3] निकलती है।
फ़िशार तंगिए ख़िल्वत[4] से बनती है शबनम
सबा जो ग़ुंचे[5] के पर्देमें जा निकलती है।

[१२४]

फूँका है किसने गोशे मुहब्बत[6] में ऐ ख़ुदा
अफ़सूने इन्तिज़ार[7] तमन्ना कहें जिसे।

[१२५]

ऐ परतवे ख़ुर्शीदे जहाँताब[8] इधर भी
सायेकी तरह हम पै अजब वक़्त पड़ा है।

---

१ तमन्नाके जादूका दर्शक २ वियोगकी रातें ३ पूर्ण-रंजित ४ एकान्तकी संकीर्णताका दबाव ५ कली ६ प्रेमके कान ७ प्रतीक्षाका जादू ८ विश्वको प्रकाशित करनेवाला सूर्यकी ज्योति।

नाकर्दा गुनाहों[१] की भी हसरतकी मिले दाद,
यारब, अगर इन कर्दा गुनाहोंकी सज़ा है।

[१२६]

वाइज़ न तुम पियो, न किसीको पिला सको,
क्या बात है, तुम्हारी शराबे तहूर[२]की।
गो वाँ नहीं प वाँके निकाले हुए तो हैं,
का'बेसे इन बुतोंका भी निस्बत है दूरकी।
क्या फ़र्ज़ है, कि सबको मिले एक-सा जवाब,
आओ न, हम भी सैर करें कोहेतूर[३]की।
ग़ालिब गर इस सफ़रमें मुझे साथ ले चलें,
हजका सवाब[४] नज़्र करूँगा हुज़ूरकी।

[१२७]

कहते हुए साक़ीसे हया आती है, वर्न,
है यों कि मुझे दुर्दे तहे जाम[५] बहुत है।
ख़ूँ होके जिगर आँखसे टपका नहीं प मर्ग,
रहने दे मुझे याँ, कि अभी काम बहुत है।
होगा कोई ऐसा भी कि ग़ालिबको न जाने
शाइर तो वह अच्छा है, प बदनाम बहुत है।

---

१ बहुत पाप बिना पापोंके करनेकी लालसा पर बधाई। २ स्वर्गकी मदिरा ३ एक पर्वत जिसपर हज़रत मूसा ईश्वरीय ज्योति देखने गये थे ४ पुण्य ५ प्यालेकी तलीमें बैठी तलछट।

[१२८]

मुद्दत हुई है यारको मेहमाँ[1] किये हुए,
जोशे क़दहसे, बज़्म चराग़ाँ[2] किये हुए।
करता हूँ जमअ फिर जिगरे लख़्त-लख़्त[3] को
अर्सः हुआ है दा'वते मिज़गाँ[4] किये हुए।
फिर वज़ए एहतियात[5] से रुकने लगा है दम,
बरसों हुए हैं चाक गरेबाँ किये हुए।
फिर पुर्सिशे जराहते दिल[6] को चला है इश्क़
सामाने सद हज़ार नमकदाँ[7] किये हुए।
फिर शौक़ कर रहा है ख़रीदारकी तलब,
अर्ज़े मताए अक़्लो दिलो जाँ[8] किये हुए।
माँगे है फिर किसीको लबे बाम[9] पर हवस,
ज़ुल्फ़े सियाह रुख़ प परीशाँ किये हुए।
चाहे है फिर किसीको मुक़ाबिल[10] में आरज़ू[11]
सुरमेसे तेज़ दश्नःए मिज़गाँ[12] किये हुए।
इक नौबहारे नाज़[13] को ताके है फिर निगाह
चेहरः फ़रोग़े मय[14] से गुलिस्ताँ किये हुए।

---

१ सुरोत्सव २ दीपमालिका ३ जिगरके टुकड़े-टुकड़े ४ पलकोंकी (बर्छी) की दावत ५ सावधानीका ढंग ६ हृदयके घावोंकी पूछ-ताछ ७ लाखों नमकदानोंके साथ ८ बुद्धि हृदय और प्राण-धनका समर्पण ९ छज्जेपर, १० सामने ११ कामना अभिलाषा १२ पलकोंकी कटारी १३ वसन्तके मद-मस्त १४ मदिराभा।

जी ढूँढता है फिर वही फ़ुर्सत, कि रात-दिन,
बैठे रहें तसव्वुरे जानाँ[1] किये हुए।

[१२९]

वह ज़िन्दः हम हैं, कि हैं रूशनासे ख़ल्क़[2], ए ख़िज़्र,
न तुम कि चोर बने उम्रे जाविदाँ[3] के लिए।
बक़द्रे शौक़[4] नहीं, ज़र्फ़े तंगनाए ग़ज़ल[5],
कुछ और चाहिए वुसअत[6] मेरे बयाँके लिए।

क़सीदे

[१]

साज़ यक ज़र्रे नहीं फ़ैज़े चमनसे बेकार,
साय ए लालए बेदाग़ सुवैदाए बहार[7]।
मस्तिए बादे सबा से है ब अर्ज़ सब्ज़[8],
रेज़ए शीशए मय जौहरे तेग़ो कुहसार[9]।
मस्तिए अब्रसे गुलचीने तरब है हसरत[10],
कि इस आग़ोशमें मुमकिन है दो आलमका फ़िशार[11]।

---

१ मा'शूक़का ध्यान २ दुनियासे परिचित ३ अमर-जीवन, ४ उत्सुकताकी मात्राके अनुरूप ५. ग़ज़लका सँकरा क्षेत्र ६ विस्तार, ७ बहारके हृदयका काला तिल ८ प्रभात-समीरणकी मस्ती ९. पहाड़की तलवार अर्थात् पहाड़की घाटीकी हरीतिमा मदिराकी सुराहीका कण बन गयी है। १ बादलोंकी मस्तीसे चित्तकी अपूर्व अभिलाषाएँ भी फूलोंके फूल चुन रही हैं ११ इसके आलिंगनमें दोनों जगत् सिमट गये हैं।

कोहो सहरा हम मा'मूरिए शौक़े बुलबुल[1],
राहे ख़्वाबीदा[2] हुई ख़न्दए गुल[3]से बेदार।

दूसरा मतला

फ़ैज़से तेरे है ऐ शमए शबिस्ताने बहार[4],
दिले पर्वाना चराग़ाँ परे बुलबुल गुल्ज़ार[5]।
शक्ले ताऊस करे आइन खान पर्वाज़,
ज़ौक़में जल्वे के तेरे बहवाए दीदार[6]।
दीद ता दिल असद आइन यक परतवे शौक़
फ़ैज़ मा'नीसे ख़ते साग़र राक़िम सरशार[7]।

[२]

यह जुज़ जल्वए यकताइए मा'शूक़ नहीं
हम कहाँ होते अगर हुस्न न होता ख़ुदबीं[8]।
बे-दिली हाय तमाशा कि न इबरत है न ज़ौक़,
बेकसी हाय तमन्ना कि न दुनिया है न दीं[9]।

---

१ पर्वत एवं वन बुलबुलके शौक़से पूर्ण हैं २ निद्रित-पथ ३ फूलों की हँसी ४ ऐ बहार (वसन्त) के महलकी शमअ (दीप) ५. पर्वानों के दिल दीपक बन गये हैं और बुलबुलके पर गुल्ज़ारकी तरह रंगीन हो गये हैं ६. तेरी छवि देखनेके लिए आइन खाना (दिल) मोरकी तरह उड़ रहा है ७ ऐ असद! आँखसे लेकर दिल तक उत्कण्ठाके प्रकाश का आईना बन जाता कि उसके शौक़पर अर्थात् लिखनेवालेके मधुपात्र की रेखाएँ मस्त हो जायें ८ प्यारे मा'शूक़की अद्वितीय छविके सिवा और कुछ नहीं है ९. धर्म।

मिस्ले मजनूने वफ़ा,-बाद बवस्त तस्लीम[1],
सूरत नक़्शे क़दम, ख़ाक बफ़र्क़े तमकीं[2]।
इश्क़ बेरब्तिए शीराज़ए अजज़ाए हवास,
वस्ल ज़िंगारे रुख़े आइनए हुस्ने यक़ीं[3]।
किसने देखा नफ़से अह्लेवफ़ा आतशख़ेज़,
किसने पाया असरे नालए दिलहाए हज़ीं[4]?

[२]

हाँ, महे नौ[6]! सुनें हम उसका नाम,
जिसको तू झुकके कर रहा है सलाम।
दो दिन आया है तू नज़र दमे सुब्ह,
यही अन्दाज़ और यही अन्दाम।
बारे दो दिन कहाँ रहा ग़ायब?
'बन्दा आजिज़ है गर्दिशे अय्याम।
उड़के जाता कहाँ, कि तारोंका,
आसमाँने बिछा रखा था दाम[7]।"
जानता हूँ कि उसके फ़ैज़से तू,
फिर बना चाहता है माहे तमाम।

---

१ स्वीकृति (समर्पण) को भी हम वफ़ा (निष्ठा) की भाँति ही परीशान देखते हैं २ मर्यादाको चरण-चिह्नकी भाँति धूलमें मिला पाते हैं ३ जिस प्रकार मद्यपानसीमें चेतना विशृंखल हो जाती है उसी प्रकार प्रेम भी यहाँ परीशान है। मिलनका विस्तार दर्पण-पटकी भाँति धूमिल है, ४ मस्तोंके मान बनानेवाले स्नानगृहको किसने देखा है? ५ दुखिया दिलो ६ नवचन्द्र ७ जाल ८ पूर्णचन्द्र।

नजर आता है यूँ मुझे यह समर,
कि दवाख़ानए अज़लमें मगर[१] ।
आतश गुलपर क़न्दका है क़वाम,
शीरेके तारका है रेशा नाम[२] ।
या यह होगा कि फ़र्ते राफ़तसे,
बाग़बानोंने बाग़ जन्नतसे ।
अन्गबीके बहुक्मे रब्बुन्नास,
भरके भेजे हैं सर बमुहर गिलास[३] ।
या लगाकर ख़िज़रने शाख़े नबात
मुद्दतों तक दिया है आबे हयात ।
तब हुआ है समरफ़िशाँ यह नख़्ल
हम कहाँ वरना और कहाँ यह नख़्ल[४] ।
साहब शाख़ो बर्गोबार[५] है आम,
नाज़ परवर्दए बहार[६] है आम ।

१-२ ऐसा मान पड़ता है कि यह आदि सृष्टिके दवाख़ानेमें बना है । फूलकी आग पर मिश्रीकी चाशनी देकर इसे बनाया गया है और इस चाशनीके तारका नाम रेशा रख दिया गया है । ३ या ऐसा जान पड़ता है कि नन्दन-काननके मालियोंने मनुष्योंपर खुश होकर कृपा-पूर्वक और ईश्वराज्ञानुसार पुरस्कारस्वरूप मधुसे भरे हुए गिलास मुहर लगाकर भेज दिये हैं । ४ या ख़िज़रने मिश्रीका एक पौधा लगाकर बहुत मुद्दत तक अमृत सींचा है तब उस पौधेमें यह फल लगा है, ५ शाखाओं और पत्तोंसे युक्त ६ बहार द्वारा दुलारसे पाला हुआ ।

[२]

चिकनी डली (सुपारी) की प्रशंसामें

[१८७१ ई० की बात है जब नवाब ज़ियाउद्दीन अहमद और ग़ालिब दोनों कलकत्तामें थे। एक दिन बात-चीत चल रही थी कि एक सज्जनने फ़ारसी-कवि फ़ैज़ीकी बड़ी प्रशंसा की। ग़ालिब तो सिवा खुसरोके किसी भारतीय फ़ारसी-कविको मानते ही न थे इसलिए बोले—ठीक है पर जितनी तारीफ़ फ़ैज़ीकी होती है उतनेका अधिकारी वह न था। उन सज्जनने फ़ैज़ीकी काव्य-प्रतिभाकी प्रशंसा करते हुए कहा कि जब फ़ैज़ी पहली बार अकबरके दरबारमें गया अवसर आते ही ढाई सौ शेरोंका क़सीदा बनाकर पढ़ा। ग़ालिब बोले—अब भी ऐसे लोग हैं जो दो चार सौ नहीं तो दो-चार शेर तो तुरन्त बनाकर कह ही सकते हैं। उन सज्जनने जेबसे एक चिकनी डली (सुपारी) निकाली और कहा—इसपर कुछ कहिए। ग़ालिबने तुरन्त ये पंक्तियाँ सुनाईं।]

है जो साहबके कफ़ेदस्त प यह चिकनी डली,
ज़ेब देता है इसे जिस क़दर अच्छा कहिए।
ख़ामा अंगुश्त बदन्दाँ[१] कि इसे क्या लिखिए,
नातिक़ा[२] सर बगिरेबाँ[३] कि इसे क्या कहिए।
मुहरे मक्तूबे अज़ीज़ाने गरामी लिखिए[४],
हिर्ज़े बाज़ूए[५] शिगर्फ़ाने ख़ुदआरा[६] कहिए।

---

१ दाँतोंमें २ हैरान ३ वाणी ४ चिन्तित ५ सम्मानित प्रियजनोंके पत्रोंकी मुहर है ६ भुजाकी तावीज़ ७ स्वयं शृंगार किये हुए हसीन।

मिस्सीआलूद सरअंगुश्ते हसीनों लिखिए[1],
दाग़े तर्फ़े जिगरे आशिक़ शैदा[2] कहिए।
अख़्तरे सोख़्तए क़ैस[3] से निस्बत दीजे,
ख़ाले मुश्कीने रुख़े दिलकशे लैला[4] कहिए।
क्यों इसे क़ुफ़्ले दरे गंजे मुहब्बत[5] लिखिए,
क्यों इसे नुक़्तए परकार तमन्ना[6] कहिए?
क़न्द परवरक़ कफ़दस्तका दिल कीजिए फ़र्ज़,
और इस चिकनी सुपारीका सुवेदा कहिए।

क़ता

गये वह दिन कि नादानिस्त[7] ग़ैरोंकी वफ़ादारी,
किया करते थे तुम तक़रीर हम ख़ामोश रहते थे।
बस, अब बिगड़े पे क्या शर्मिन्दगी जाने दो, मिल जाओ,
क़सम लो हमसे, गर यह भी कहें "क्या हम न कहते थे।"

× ×

कलकत्तेका जो ज़िक्र किया तूने हमनशीं!
इक तीर मेरे सीनेमें मारा कि हाय-हाय!

---

१ चाहे इस कत्थीको मिस्सीसे पूर्ण अँगुलीका सिरा लिख सकते हैं २ आशिक़ प्रेमीके जिगरका दाग़ ३ मजनूँका जला हुआ नक्षत्र (भाग्य) ४ लैलाके चित्ताकर्षक मुख (कपोल) का मुश्कपूर्ण तिल ५ प्रेम-कोषके द्वारका ताला ६ कामनाकी परिधिका बिन्दु। ७ अनुभवहीन

वह सब्ज़ाज़ार हाय मुतर्रा[1] कि है ग़ज़ब !
वह नाज़नीं बुताने ख़ुदआरा[2], कि हाय-हाय !
सब्रआज़मा[3] वह उनकी निगाहें, कि हफ़ नज़र,
ताक़तरुबा[4] वह उनका इशारा, कि हाय-हाय !
वह मेवहाय ताज़ए शीरीं कि वाह-वाह !
वह बादहाय नाबे गवारा, कि हाय-हाय !

× ×

न पूछ इसकी हक़ीक़त, हुज़ूरवालाने,
मुझे जो भेजी है बेसनकी रोग़नी रोटी ।
न खाते गेहूँ, निकलते न ख़ुल्दसे बाहर,
जो खाते हज़रते आदम यह बेसनी रोटी ।

× ×

इफ़्तारे सौम[?] की कुछ अगर दस्तगाह हो,
उस शख़्सको ज़रूर है रोज़ा रखा करे ।
जिस पास रोज़ा खोलके खानेको कुछ न हो,
रोज़ा अगर न खाये तो नाचार क्या करे !

× ×

क्या इन दिनों बसर हो हमारी, फ़राग़ में,
कुछ तमअ रहा न किसी दर्दो दाग़में ।

---

१ शीतल (तरावटवाला) २ स्वयसज्जित रमणियाँ ३ धैर्यकी परीक्षा लेनेवाली ४ शक्ति हरनेवाला ५ बढ़िया स्वादिष्ट मदिराएँ ६ रोज़ा खोलना ७ साधन ८ विरह, ९ मन्शर ।

चाहा मजलिसमें शौक़, आ मुसान तूपर,
यों हँसते हैं राज़ यहाँ, हर चराग़में।
यह मक़नसा बकार बख़ुदा! यह चक्करें,
शोरिश है कुछ ज़रूर तुम्हारे दिमाग़में।

रुबाइयाँ

शब ज़ुल्फ़ो रुख़े अर्क़फ़िशाँ[1] का ग़म था,
क्या शरह करूँ, कि तुर्फ़ तर आलम था।
रोया मैं हज़ार आँखसे सुबह तलक,
हर क़तरए अश्क दीदए पुरनम था।

× ×

दिल सख़्त नज़न्द[2] हो गया है गोया
उससे गिलामन्द[3] हो गया है गोया।
पर यारके आगे बोल सकते ही नहीं,
'ग़ालिब' मुँह बन्द हो गया है गोया।

× ×

दुख जीके पसन्द हो गया है ग़ालिब,
दिल रुककर बन्द हो गया है ग़ालिब।
वल्लाह, कि शबको नींद आती ही नहीं,
सोना सौगन्द हो गया है ग़ालिब।

× ×

---

१ स्वेदशील २ आजिज़ परेशान ३ शिकायत करनेवाला।

सामाने ख़ूरो ख़्वाब[1] कहाँसे लाऊँ,
आरामके अस्बाब कहाँसे लाऊँ।
रोज़ा मेरा ईमान है ग़ालिब लेकिन,
ख़सख़ाना[2] व बर्फ़ाब[3] कहाँसे लाऊँ।

सेहरा

[फूलों या सुनहरे-रुपहले तारोंकी झालर जो विवाहके समय वरके सिरपर बाँधी जाती है। उसकी प्रशंसामें जो काव्य-रचना की जाती है उसे भी सेहरा कहते हैं। शहज़ादा जवान बख़्तका निकाह (विवाह) १ अप्रैल १८५२ को हुआ था। उस समय 'ग़ालिब' ने यह सेहरा कहा था]

[१]

ख़ुश हो ऐ बख़्त ! कि है आज तेरे सर सेहरा,
बाँध शहज़ादे जवाँबख़्तके सरपर सेहरा।
क्या ही इस चाँदसे मुखड़े पै भला लगता है,
है तेरे हुस्न दिल अफ़रोज़[4] का ज़ेवर सेहरा।
सर पै चढ़ना तुझे फबता है, पर ऐ तुर्फ़-ए-कुलाह[5],
मुझको डर है कि न छीने तेरा लम्बर सेहरा।
नाव भरकर ही पिरोये गये होंगे मोती,
वर्ना क्यों लाये हैं कश्तीमें लगाकर सेहरा।
सात दरियाके फ़राहम[6] किये होंगे मोती,
तब बना होगा इस अन्दाज़का गज़भर सेहरा।

---

१ खाने-पीने-सोने २ शीतल गृह ३ बर्फ़का पानी ४ हुस्न निखारनेवाला ५ टोपीकी ओर ६ संचित।

रुख़ प दूल्हाके जो गर्मीसे पसीना टपका,
है रगे अब्रे गुहरबार[1] सरासर सेहरा।
यह भी एक बेअदबी थी कि क़बा से बढ़ जाय
रह गया आनके दामनके बराबर सेहरा।
जीमें इतरायें न मोती, कि हमीं हैं इक चीज़,
चाहिए फूलोंका भी एक मुक़र्रर सेहरा।
जब कि अपनेमें समावें न ख़ुशीके मारे,
गूँधे फूलोंका भला फिर कोई क्योंकर सेहरा।
रुख़े रौशनकी दमक, गौहरे ग़ल्ताँकी चमक,
क्यों न दिखलाये फ़रोग़े महो अख़्तर सेहरा।
हम सुख़नफ़हम हैं, ग़ालिबके तरफ़दार नहीं,
देखें इस सेहरेसे कह दे कोई बेहतर सेहरा।

[२]

हम नहीं सारे हैं और चाँद सहाबउद्दीनख़ाँ
बज़्मे शादी है फ़लक काहकशाँ है सेहरा।
इनको लड़ियाँ न कहो बहरकी मौजें समझो
है तो कश्तीमें पर आके रवाँ है सेहरा।

[३]

चर्ख़ तक धूम है, किस धूमसे आया सेहरा
चाँदका दामन ले, ज़ुहरा ने गाया सेहरा।

---

१ मोती बरसानेवाला बादल २. चोगा (परिधान) ३ दोषपूर्ण ४ मानापमानता। ५ समुद्र-तरंग ६ तरलित या प्रतिभात मुक्ता ७ शुक्र,

रश्कसे लड़ती हैं, आपसमें उलझकर लड़ियाँ,
बाँधनेके लिए जब उसने उठाया सेहरा।

मरसियः

[शोक-गीत]

हाँ ऐ नफ़से बादे सेहर[1]! शो'ला फ़िशाँ[2] हो,
ऐ दज्लये ख़ूँ! चश्मे मलाइकसे[3] रवाँ हो।
ऐ ज़मज़मए क़ुम[4]! लबे ईसा प फ़ुग़ाँ[5] हो।
ऐ मातमियाने शहे मा'सूम[6] कहाँ हो?
बिगड़ी है बहुत, बात बनाये नहीं बनती।
अब घरको बग़ैर आग लगाये नहीं बनती॥
ताबे सुख़न व ताक़ते ग़ौग़ा नहीं हमको।
मातममें शहे दीं[7] के हैं, सौदा[8] नहीं हमको॥
घर फूँकनेमें अपने मुदारा[9] नहीं हमको।
गर चर्ख़ भी जल जाय, तो पर्वा नहीं हमको॥
यह ख़र्गहे नु पाय जो गुदस्से बजा है।
क्या ख़ेमए शब्बीर से रुत्बे में सिवा है॥
कुछ और ही आलम नज़र आता है जहाँका।
कुछ और ही नक़्श, है दिलो चश्मा जुर्गाँका॥

---

१ प्रात-समीरके स्वास २ ज्वालामुखी ज्वालावर्षी ३ फरिश्तोंकी आँखें ४ उठ्ना का राग ५ ईसाके अधरोंपर आर्तनाद बनना (हज़रत ईसा 'उठ्ना' कहते थे और मुर्दे उठ खड़े होते थे।) ६ सम्राट ७ धर्मेश ८ पागलपनकी रमती ९. हज़रत इमाम हुसैन।

कैसा फ़लक और मेहरे जहाँताब कहाँका।
होगा दिल बेताब किसी सोख़्त माँका॥
अब मेहरमें और ज़र्रेमें कुछ फ़र्क़ नहीं है।
गिरता नहीं इस रूसे कहो चर्ख़ नहीं है॥

स्फुट

मयकशीको न समझ बेहासिल,
बादए ग़ालिब अर्क़े बेद नहीं।

× ×

दिल आपका कि दिलमें है जो कुछ सो आपका
दिल लीजिए मगर मेरे अरमाँ निकालके।

× ×

चन्द तसवीरें बुताँ, चन्द हसीनोंके ख़तूत,
बाद मरनेके मेरे घरसे यह सामाँ निकला।

× ×

रखता हूँ उसे, थी जिसकी तमन्ना मुझको
आज बेज़ारीमें है, ख़्वाबे जुलेख़ा मुझको।

× ×

नियाज़े इश्क़, ख़िरमनसोज़े अस्बाबे हवस बेहतर,
जो हो जावे निसारे बर्क़[2] मुश्ते ख़ाराख़स बेहतर।

× ×

---

१ प्रेमकी विनय २ बिजलीपर निछावर।

ज़ख़्मे दिल तुमने दिखाया है, कि जी जाने है,
ऐसे हँसतेको रुलाया है, कि जी जाने है।

× ×

हम क्या कहें किसीसे, क्या है तरीक़ अपना,
मज़हब नहीं है कोई, मिल्लत नहीं है कोई।

× ×

पीरीमें भी कमी न हुई शौक़ ताँकमी,
राज़नकी[1] तरह दीदका आज़ार रह गया।
यह शुग़्ल है मिज़ाँकी सुहबतसे बेख़बर,
आइन्दः खास्तक जो गिरफ़्तार रह गया।

चयन

[तुरसाहमोदियरसे]

[१]

है कहाँ, तमन्नाका दूसरा क़दम, यारब।
हमने दश्ते इम्काँका, एक नक़्शे पा पाया।
बेदिमाग़े ख़िजलत हूँ, रश्के इम्तिहाँ ताके,
एक बेकसी तुझको आलम आशना पाया।

[२]

कारख़ानेसे जुनूँके भी मैं उरियाँ निकला,
मेरी क़िस्मतका न यक-ताप गिरेबाँ निकला।

---

१ वृद्धावस्था २ छिद्र ३ कष्ट ... ४ सम्भावना-क्षेत्र ५ चरण-चिह्न ६ थक ७ संसारका प्रेमी संसारको समझनेवाला ८ नंगा।

साग़रे जल्वए सरशार, है हर ज़र्रए ख़ाक[1],
शौक़े दीदार, बला आईना सामाँ निकला।
कुछ खटकता था मेरे सीने में, लेकिन आख़िर*,
जिसको दिल कहते थे, सो तीरका पैकाँ निकला।

[३]

याँ हुजूमे नग़्मःहाए साज़े इशरत[2] था 'असद'
नाख़ुने ग़म, याँ सरे तारे नफ़स मिज़राब[3] था।

[४]

'असद' यह इज्ज़ो[4] बेसामानिए फ़िरऔनी[5] तौअम[6] है,
जिसे तू बन्दगी कहता है, दावा है ख़ुदाईका।

[५]

हमने वहशतकदए बज़्मे जहाँ[7] में ज्यूँ शमअ,
शोलए इश्क़को अपना सरो सामाँ समझा।

---

१ मिट्टीका प्रत्येक कण छबिके मधुपानमें डूबा हुआ है, २ ऐश्वर्यके वाद्यसे निकले स्वरोंकी भीड़ थी। ३ स्वाँसके तारका सिरा मिज़राब बन गया था ४ नम्रता दीनता ५ फ़िरऔनकी दरिद्रता ६ समय जुड़वाँ फ़रोआ या फ़िरऔन प्राचीन मिस्रके बादशाहोंकी उपाधि थी। इनमेसे एकने खुदाईका दावा किया और मूसा द्वारा पराजित हुआ। उर्दू-फ़ारसी काव्यमें अत्याचार और अभिमानका प्रतीक ७ संसारकी महफ़िलके उन्माद कालमें।

*शायद 'जिगर' मुरादाबादीका शेर है—

कुछ खटकता तो है पहलूमें मेरे रह-रहकर
अब ख़ुदा जाने तेरी याद है या दिल मेरा।

[६]

बसूरत तकल्लुफ़[1] बमानी तअस्सुफ़[2],
'असद' मैं तबस्सुम हूँ पज़मुर्दगाँका[3]।

[७]

निगाहे चश्मे हासिद वामले, ऐ ज़ौक़े ख़ुदबीनी[4]!
तमाशाइ हूँ वहदतख़ानए आईनए दिलका।
शुम राहे सुख़नमें ख़ौफ़े गुमराही[5] नहीं 'ग़ालिब',
असाए ख़िज़्रे सेहराए सुख़न है ख़ामा 'बेदिल'का[6]।

[८]

ऐ वाय! ग़फ़लते निगहे शौक़, वर्ने याँ,
हर पार संग, लख़्ते दिले कोहे तूर[7] था।
नक़्श है तेरी तेग़के कुश्तोंकी मुतवस्सिर,
जौहर सवादे बस्तए मिज़्गाने हूर था।

[९]

रग गुल[8] आदए तारे निगाहसे हद मुआफ़िक़ है[9],
मिज़ाजे मंज़िले उल्फ़तमें हम और अन्दलीब आख़िर[10]।

---

१ रूपमें बनावट २ अर्थमें पश्चात्ताप ३ मैं मलिन वस्त्रोंकी पुष्पमाल हूँ ४ ऐ मेरे दर्प (ख़ुदबीनी) की पराकाष्ठा तू किसी द्वेषीकी दृष्टि उधार ले ले (क्योंकि विरोधी अपने सिवा किसी औरको देख ही नहीं सकता ५ पथभ्रष्ट होनेका भय ६ बेदिलकी लेखनी सम्भवके जंगलमें दिखानेको लाठी है, ७ पत्थरका हर टुकड़ा तूर पर्वतका टुकड़ा ही बना था ८ फूलकी नसें ९ दृष्टिके तार मार्गके अनुकूल हैं, १ गुत्थमगुत्थ।

गुस्ले अम्न[1] मक्के निज़ाअ हुआ, बेक़रारम,
निगाहा नारूअफ़सानी[2] हुआ स्मो दकेन आख़िर।

[१०]

तमाशाए गुलशन, तमन्नाए चीदन,[3]
बहार आफ़रीनाँ,[4] गुनहगार हैं हम।
न ज़ौक़े गिरेबाँ, न पर्वाए दामाँ
निगह आश्नाए गुलोख़ार[5] हैं हम।
'असद' शिक्वा कुफ़्र व दुआ नासिपासी[6]
हुजूमे तमन्नासे नाचार हैं हम।

[११]

पाँवमें जब वह हिना बाँधते हैं,
मर हाथोंको जुदा बाँधते हैं।
शेख़जी, का'बा का जाना मालूम
आप मस्जिदमें गधा बाँधते हैं।

[१२]

फिर हल्क़ए काकुलमें पड़ीं दीदकी राहें,
जूँ दूद[7] फ़राहममें[8] हुईं रोज़नमें[9] निगाहें।
वैरा हरम, आइनए तकरारे तमन्ना[10],
वामाँदगिए शौक़[11] तराशे है पनाहें।[12]

---

१ आत्म-निमन्त्रणका अभिमान २ सहर ३ (फूल) चुननेकी कामना ४ बहारके बनानेवाले ५ फूलों और कांटोंकी आँखें पहचानने वाले ६ कृतघ्नता ७ धुआँ ८ एकत्र ९ छिद्र १० कामनाकी पुनरावृत्तिका प्रभाव ११ थकनकी वजह १२ शरण ढूंढ़ती है।

[१३]

दौराने सरसे गर्मिये साग़र है मुन्तसिल,
ख़ुमख़ानए जुनूँ में दिमाग़ रसीद हूँ[1]।
की मुत्तसिल[2] सितार शुमारी[3] में उम्र सर्फ़[4],
तस्बीहे अश्कहाय जमिश्गाँ चकीद हूँ[5]।
हूँ गर्मिए निशाते तसव्वुरसे नग़मा सन्ज[6],
मैं अन्दलीबे गुलशने नाआफ़रीद हूँ[7]।
देता हूँ कुश्तगाँको सुख़नसे सरे तपिश,
मिज़राब तारहाय गुलूए बुरीद हूँ[8]।

[१४]

है तिलिस्मे देहर में[9], सद हश्रे पादाशे अमल[10],
आगही ग़ाफ़िल, कि यक इमरोज़ बेफ़र्दा नहीं[11]।

---

१ सिरके चक्करके कारण निरन्तर यह मालूम हो रहा है कि मैं मधुपात्रके चक्रमें सम्मिलित हूँ (और प्यालेपर प्याला चढ़ता जा रहा है) मानो मैं उन्मादके मदिरालयमें एक ऐसा दिमाग़ हूँ जो मदसे आप्लावित है, २ लगातार ३ तारे गिनना ४ व्यय ५. पलकसे टपके हुए आँसुओंकी तस्बीह (माला) हूँ ६ उनके ध्यानके आनन्दके उत्साहसे स्वरालाप कर रहा हूँ ७ मैं अनजाई पुष्पवाटिकाका बुलबुल हूँ ८ मैं मरनेवालोंको अपने काव्यसे उत्तप्त करता अर्थात् तड़पाता हूँ मानो कटे हुए गलेके तारोंपर मिज़राबके तुल्य झंकार पैदा करनेवाला हूँ ९. संसारके इन्द्रजाल १० दुनियाके तिलिस्ममें कर्मके प्रतिकारके सैकड़ों प्रलय उठते रहते हैं ११ ऐ ग़ाफ़िल सावधान हो कि आजका कोई भी दिन अपने भोरके बिना (अकेला) नहीं है।

[२३]

सुबहसे मा'लूम, आसारे ग़ुहूरे शाम है,
ग़ाफ़िलों ! आग़ाज़ेकार, आईनए अंजाम है ।
बस कि तेरे जल्वए दीदारका है इश्तियाक़
हर बुते खुर्शीद तलअ़त आफ़ताबे बाम है ।

[२४]

तोड़ बैठे जबकि हम जामो सुबू फिर हमको क्या ?
आस्मोंसे बादए गुल्फ़ाम गर बरसा करे ।

[२५]

रेहने अम्न है आईने नविए गौहर
बगने बहमें हर क़तर चश्मे पुरनम है ।

[२६]

खुद नाम बनके जाइए, उस आश्नाके पास,
क्या फ़ायदः कि मन्नते बेगाना खींचिए ।

[२७]

चमन-चमन गुले आईन दर किनारे हवस
उमीद महवे तमाशाय गुल्सिताँ तुझसे ।

---

१ सन्ध्या प्रकट होनेके समान २ उत्कण्ठा ३ सूर्यमुखी ४ मधुपात्र एवं मधुघट ५ गुलाबी शराब ६ मोतीकी सजावटके संयम एवं [निमन्त्रणकी अपेक्षा है ७ अन्यथा यथार्थमें तो प्रत्येक बूँद मधुपूर्ण पात्र है । ८ रूपवोंके फूल ९ लालसाकी गोदमें (लालसाकी गोदमें दर्पणाके फूलसे तूने चमन भर दिये हैं) १० आशाको तूने पुष्पोद्यान-का पूरा वैभवमें लीन कर दिया है ।

नियाज़[1], पर्दए इज़्हारे ख़ुदपरस्ती[2] है,
जबीने सिज्दा फ़िशाँ[3] तुझसे, आस्ताँ[4] तुझसे ।
'असद' ! बमौसिमे गुल[5] दर तिलिस्मे कुंजे[6] क़फ़स
ख़िराम[7] तुझसे, सबा[8] तुझसे, गुलिस्ताँ[9] तुझसे ।

[२८]

वह तश्नए सरशारे तमन्ना हूँ कि जिसको,
हर ज़र्रे में कैफ़ीयते साग़र नज़र आवे ।

अप्रकाशित काव्य

[जो पाण्डुलिपियोंमें या फुटकर मिलता है पर संग्रहोंमें अप्रकाशित है ।]

बदतर अज़ वीरान[11] है फ़स्ले ख़िज़ाँमें सहने बाग़,
ख़ानए बुलबुल बग़ैर अज़ ख़न्दए गुल बेचिराग़[12] ।

× ×

---

१ भक्ति २ आत्मपूजाकी अभिव्यक्तिका पर्दा है (आड़) है ३ सिज्दा (नमन) करनेवाला माथा ४ चौखट (भक्ति भी वस्तुतः अपनी ही पूजा या अहंकारपर एक पर्दा है अर्थात् जिसे भक्ति कहते हैं उसकी आड़में भी अहंकार है नहीं तो मस्तक यह कपाट और यह चौखट सब तो तेरे ही कारण है ।) ५. इस फूलोंकी ऋतु—वसन्त—में ६ क़फ़स—कारागृह—के तिलिस्ममें फँसा हुआ हूँ ७ गति चाल ८. मन्द समीर, पुरवैया ९ पुष्पोद्यान (जब यह चाल यह ठंडी हवा यह पुष्प-वाटिका तेरे ही कारण है तब बेचारा असद कारागृहके मायाजालमें क्यों फँसा पड़ा है ?) १० मैं कामनाओंकी बाढ़का वह प्यासा हूँ कि जिसे प्रत्येक कण मधुपात्र-सा दिखता है ११ उजाड़से भी बुरा १२ बुलबुलका घर फूलकी मुसकान बिना दीपहीन-सा है ।

करम ही कुछ सबबे-लुत्फ़ो-इल्तिफ़ात नहीं[1]
उन्हें हँसाके रुलाना भी कोई बात नहीं।

× ×

जूँ शमअ हम इक सोख़्ता[2] सामाने वफ़ा हैं,
और इसके सिवा कुछ नहीं मालूम कि क्या हैं?

× ×

हुस्न अपना गिरफ़्तार ख़ुद आराई[3] न हो,
गर कमीगाहे[4] नज़रमें दिल तमाशाई न हो।

× ×

वफ़ा जफ़ाकी तलबगार होती आई है,
अज़लके दिनसे यह प' मार होती आई है।

× ×

किसकी बर्क़े शोख़िए रफ़्तार[5] का दिलदादा[6] है,
ज़र्रे ज़र्रे इस जहाँका इज़्तराब आमादा[7] है।

× ×

दश्ते वहशत में न पाया किसी सूरतसे सुराग़
गर्दे जौलाने जुनूँ[10] तकने पुकारा हमको।

× ×

---

१ कुछ कृपा ही मानव एवं प्रेम-व्यवहारका कारण नहीं है २ जला ३ स्वयं शृंगार करना ४ कहीं छिपकर किसीकी घातमें बैठ जाय (यदि दिल पुलिस योग्य स्थानमें बैठनेवाला न हो तो बेपर्दा हुस्न अपना शृंगार भी न करे।) ५. गतिकी चंचलताकी बिजली ६ मुग्ध ७ बेचैनीकी ओर उन्मुख ८ उन्माद-वश ९. पता १० उन्माद-मस्तकी धूल।

नमूदे आलमे अस्बाब क्या है लफ़्ज़े बे-मानी
कि हस्तीकी तरह मुझको अदम[1] में भी तअम्मुल[2] है।

× ×

दर्द हो दिलमें तो दवा कीजे,
दिल ही जब दर्द हो तो क्या कीजे।
हमको फ़रियाद करनी आती है,
आप सुनते नहीं तो क्या कीजे।
दुश्मनी हो चुकी बक़दर वफ़ा
अब हक़े दोस्ती अदा कीजे।

× ×

मौत फिर ज़ीस्त न हो जाय यह डर है 'ग़ालिब'
वह मेरी क़ब्र प अंगुश्त बदन्दाँ होंगे।[3]

०

१ अनस्तित्व परलोक २ शंका ३ मेरी मृत्युपर उन्हें अफ़सोस होगा वह मेरी क़ब्रपर आयेंगे मुझे डर है कि उनके आनेसे मेरी मृत्यु जीवन न बन जाय और उन्हें मुँहमें उँगली देनी पड़े।

परिशिष्ट भाग

परिशिष्ट १

ग़ालिबके कुछ शागिर्द

ग़ालिबके शिष्योंकी संख्या बहुत अधिक थी और उसमें सब वर्गों और सम्प्रदायोंके लोग थे। यही नहीं उनके विचार तथा काव्य-शैलीमें भी भिन्नता पायी जाती है। स्वतः ग़ालिबके व्यक्तित्वकी विशालता तथा उनकी उदारतापर प्रकाश पड़ता है। उनके शिष्योंमें बहुत ही कम ऐसे हैं जिन्होंने उनका रंग अपनाया। सत्य यह है कि ग़ालिबने कभी किसी शिष्यको अपने जैसा बनानेकी कोशिश नहीं की। उनकी विशेषता यही थी कि वह हर एकको उसीके रंगपर चलाने-सँवारनेकी कोशिश करते थे जिससे उसके व्यक्तित्वका रूप उसके अपने ढंगपर बनी रहे। वह कभी अपनी प्रवृत्तियोंको दूसरपर लादनेकी कोशिश नहीं करते थे। इसीलिए ग़ालिबके शागिर्दोंमें तुफ्ता, हाली, सालिक, मजरूह, शाकिर, बेखुद जैसे विभिन्न शैलियोंवाले शायर मिलते हैं।

यह ग़ालिबकी लोकप्रियता और उदारताका प्रमाण है कि उनके शिष्योंकी संख्या सैकड़ों तक पहुँच गयी थी। जनाब अल्ताफ़ हुसेन 'हाली' ने अपनी पुस्तक 'यादगारे ग़ालिब' में ग़ालिबके ११ शिष्योंपर संक्षिप्त टिप्पणियाँ दी हैं। मालिकरामजीने 'तलामज़ए ग़ालिब'में खोज करके अनेक नये शिष्योंके नाम-धाम दिये हैं। इनकी कुल संख्या १४५ तक पहुँच गयी है। इनके अतिरिक्त विभिन्न संकलनों एवं तज़किरोंमें कुछ नाम और भी मिलते हैं जो विचारणीय हैं। मालिकरामजीके अनुसार ग़ालिबके शिष्योंकी नामावली निम्नलिखित है—

१ 'आराम' — मुंशी शिवनारायण अकबराबादी
२ 'आज़र' — नवाब ज़ुल्फ़िक़ारअलीख़ाँ देहलवी
३ आगाह' — सय्यद मुहम्मदरज़ा देहलवी उर्फ़ अहमद मिर्ज़ा
४ 'एहसान — हाजी एहसान अलीख़ाँ देहरादूनी
५ अहसन — मुफ़्ती मुहम्मद मुस्तफ़ा हसन ख़ाँ
६ अहसन — हकीम मज़हर अहसनख़ाँ रामपुरी
७ 'अख़्तर' — हकीम फ़तहयाबख़ाँ रामपुरी
८ 'अख़्तर' — मौलवी फ़ज़्लअली अज़ीमाबादी
९. अमीन' — मौलवी मुहम्मद सैफ़ुलहक़ देहलवी
१ इस्माइल' — मौलाना मुहम्मद इस्माइल मेरठी
११ अनवर' — सय्यद शुजाउद्दीन उर्फ़ उमराव मिर्ज़ा देहलवी
१२ बाक़र' — शाह बाक़रअली बिहारी
१३ 'बिस्मिल — मुंशी शाकिरअली मेरठी
१४ 'कलाम — साहिबज़ादा अब्बास अलीख़ाँ रामपुरी
१५. बेदिल' — मौलवी अब्दुल हमीद रामपुरी
१६ 'बेदिल' — मौलवी मुहम्मद हबीबुर्रहमान अंसारी सहारनपुरी
१७ बेताब — मुंशी बालमुकुन्द सिकन्दराबादी
१८ बेताब — मीर ऐनुलहक़ काठवी
१९ बीमार — हकीम मुहम्मद मुरादअली
२ 'पीरज़ी — मीर क़मरुद्दीन देहलवी
२१ तपिश' — मौलवी गुलाम मुहम्मदख़ाँ देहलवी
२२ 'तपिश — सय्यद मदद अली अकबराबादी
२३ 'तहसीन — क़ाज़ी अब्दुलरहमान पानीपती
२४ 'तुफ़्ता — मुंशी हरगोपाल सिकन्दराबादी
२५ तमन्ना — मौलवी अहमद हुसैन मिर्ज़ापुरी

७७ 'दोस्ती' नादिरशाह रामपुरी
७८. 'दौरां' नवाब मीर मुहम्मद खाँ मुफ़ाखिर
७९. सहाब सद्रुद्दीन खाँ रामपुरी
८ 'ज़हीर' हाफ़िज़ ताजमुहम्मद खाँ रामपुरी
८१ 'शेर' सय्यद मुहम्मद शेर खाँ बिहारी
८२ 'शेफ़्ता व हसरती' नवाब मुहम्मद मुस्तफ़ा खाँ देहल्वी
८३ 'साक़िब नवाब शेरज़माँ खाँ देहल्वी
८४ 'साहिब' मुहम्मद हुसेन बरेल्वी
८५ 'सालिक मुहम्मद मजीदुद्दीन बदायूनी
८६ सफ़ीर' सय्यद फ़रज़न्द अहमद बिलग्रामी
८७ 'सूफ़ी' शाह फ़ज़ल अली मनेरी
८८ सूफ़ी' मुहम्मद अली मलीहाबादी
८९. 'तालिब सरदार मुहम्मद खाँ
९ 'तालिब' मीरज़ा सदिरुद्दीन अहमद खाँ देहल्वी
९१ 'तालिब सय्यद शेर मुहम्मद खाँ देहल्वी
९२ तालिब डाक्टर मुहम्मद हफ़ीज़ सय्यद अकबराबादी
९३ 'तालिब' मुहम्मद रियाज़ुद्दीन
९४ तर्रार' सरफ़राज़ हुसेन देहल्वी
९५. तर्ज़ी' क़ुतुबुद्दीन दिलावर अली खाँ फ़री
९६ 'ज़फ़र अबूज़फ़र सिराजुद्दीन मुहम्मद बहादुरशाह
९७ 'ज़हीर' मुंशी प्यारेलाल देहल्वी
९८ आरिफ़ मीरज़ा ज़ैनुल्आबिदीन खाँ देहल्वी
९९ 'आशिक़ शंकरदयाल अकबराबादी
१ 'आशिक़ मुहम्मद इक़बाल हुसेन देहल्वी
१ १ आशिक़ मुहम्मद आशिक़ हुसेन खाँ अकबराबादी
१ २ 'आशिक़ सय्यद मुहम्मद नुमान देहल्वी

१ ३ 'अर्शी' सय्यद महमद हुसेन क़न्नौजी
१ ४ अज़ीज़' मुहम्मद विलायतअली खाँ सफ़ीपुरी
१ ५ अज़ीज़' मिर्ज़ा यूसुफ़अली खाँ बनारसी
१ ६ अता' अता हुसेन मारहर्वी
१ ७ अस्माई नवाब अमानुद्दीन अहमद खाँ देहलवी
१ ८ 'ज़िया' मुहम्मद ज़ियाअली खाँ रामपुरी
१ ९ ज़िमार' मीर हुसेन देहलवी
११ 'फ़ना' व 'कमाली' सय्यद महमद हुसेन सहसवानी
१११ 'फ़ौक़ डाक्टर मुहम्मद जान अकबराबादी
११२ 'फ़ख़्र' गुलाम हुसेन बिलग्रामी
११३ 'काशिफ़' बदरुद्दीन महमद उर्फ़ फ़क़ीर देहलवी
११४ कौकब' मुंशी तफ़ज़्ज़ुल हुसेन खाँ देहलवी
११५ 'लतीफ़ लतीफ़ अहमद उस्मानी
११६ माइल मीर आज़म अली खाँ सहसवानी
११७ मजरूह' मीर मेहदी हुसेन देहलवी
११८ मुज़्तर' अब्दुल्ला खाँ रामपुरी
११९ महमूद' मुहम्मद हुसेन देहलवी
१२ 'महमूद मुहम्मद महमूदुल्हक़ देहलवी
१२१ मह्री' नवाब गुलाम हसन खाँ देहलवी
१२२ मदहोश' सखावत हुसेन बदायूनी
१२३ 'मुश्ताक़ बिहारीलाल देहलवी
१२४ 'मासूम इख़्तियारुद्दीन रामपुरी
१२५ मज्नूँ' क़मरुद्दीनअहमद फ़र्रुख़ाबादी
१२६ मक़्सूद' मक़सूद आलम रिज़वी पहलवी
१२७ 'मंसूर मुहम्मद वहीद अकबराबादी
१२८ 'मूनिस' पण्डित शिवराम देहलवी

यह तो सम्भव नहीं कि इस ग्रन्थमें उनके सब शिष्योंका परिचय दिया जा सके। परन्तु उनमें जो प्रसिद्ध हुए या ग़ालिबके विशेष प्रिय थे उनका संक्षिप्त परिचय दे देना भी उचित होगा।

'आराम'

रायबहादुर मुंशी शिवनरायन अकबराबादी माथुर कायस्थ थे। इनके परदादा राय दयालचन्द निर्वासिन कालमें राजा चेतसिंहके वज़ीर थे। दादा और पिता भी उच्च पदोंपर थे। मुंशी शिवनारायणका जन्म १ सितम्बर १८११को आगरेमें हुआ। इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। प्रसिद्ध कोशकार डा० फैलन आगरा कालेजमें इनके अंग्रेजीके अध्यापक थे। पढ़ाई समाप्त करनेके अनन्तर अनेक नौकरियाँ कीं परन्तु नाम आगरा म्युनिसिपैलिटीके सेक्रेटरीकी हैसियतसे कमाया। जन-सेवामें लगे रहते थे। इतने लोकप्रिय हो गये थे कि कुम्हार इनकी मिट्टीकी मूर्तियाँ बनाकर बेचते थे। इन्होंने मुद्रण-कार्यके लिए मतबअ मुफ़ीदुल ख़लायक़ क़ायम किया जिससे ग़ालिबकी दो पुस्तकें 'दस्तम्बो' (१८५८) तथा 'दीवाने-उर्दू' (१८६१ ई०) प्रकाशित हुईं। एक साप्ताहिक (मुफ़ीदुल ख़लायक़) और दूसरा पाक्षिक (गुलदस्त मआनीसुमरा) पत्र भी सम्पादित एवं प्रकाशित करते थे। १८५८ में 'रिसाला बग़ावते हिन्द' नामक मासिक भी निकाला जिसके सम्पादक उनके मित्र डा० मुकुन्दलाल थे। मुंशी शिवनारायणकी मृत्यु ४ सितम्बर १८९८ को हुई।

इनका काव्य बहुत कम पाया जाता है। उसपर तसव्वुफ़का रंग है। नमूना यह है —

यह दुनिया इक सरा है इसको आख़िर छोड़ जाना है,
अगर दो-चार दिन आकर यहाँ ठैरे तो क्या ठैरे।

क़याम[1] अपना हो इस मेहनत सराए देहर[2] में क्योंकर,
जहाँ आफ़त ही आफ़त हो वहाँ 'आराम' क्या ठैरे।

'आगाह'

नवाब सय्यद मुहम्मद रज़ा देहलवी। जन्म १८३९ ई. मृत्यु १९१७ ई.। उनके उदाहरण लीजिए—

यह भी इक रंग है मुहब्बतका
रायें हम और हँसा करे कोई।

× ×

आ निगाहें उठ न सकती थीं मुदाया शर्म से
बेहिजाबाने[3] वह क्योंकर दिलमें पैदा हो गयीं।
मुझ हो किससे अदा क़ातिलकी तेरा तज़रूा,
मौतकी दुश्वारियाँ[4] दम-भरमें आसाँ हो गयीं।

'अदीब'

मौलवी मुहम्मद सैफ़ुल्लाह देहलवी। जन्म १८४९ ई. मृत्यु १८९१ ई.।

उच्च वंशके थे। दादा ख़ाँ बहादुर इकराम रहीम देहलीके सदर अमीन थे। सैफ़ुल्लाहकी शिक्षा अच्छी हुई। कई नौकरियाँ कीं। कोहेनूर 'पञ्जाबके हिन्द' इत्यादि कई पत्रोंका संपादन किया। फिर हैदराबादमें साढ़े चार सौ रुपये माहवारपर रिपोर्टर हो गये थे। भाषा-विज्ञानकी ओर रुचि थी उदार हास्यप्रिय व्यक्ति थे बोलते भी अच्छे थे। इनके कलाममें देहलीके मुहावरोंका अच्छा प्रयोग मिलता है।

१ निवास २ संसारकी धर्मशाला ३ बिना सजावटके ४ कठिनाइयाँ।

ख़ाली ख़याले यारसे दिल, एक दम नहीं,
रहते हैं अपने घरमें भी, इक मेहमाँसे हम।
सब कुछ अज़ीज़! इश्क़ने जीसे जुदा किया,
जाना कहाँ है और ये आये कहाँसे हम।

× ×

ग़ैर तक पूछते हैं—'हाय गयी हालत कैसी?''
दाग़ दी आपने हमपर यह मुसीबत कैसी।
कह दिया उसने कि अब यह भी न देखोगे कभी''
जब कहा मैंने, कि "मुँह देखेकी उल्फ़त कैसी?''

'इस्माइल'

मौलाना मुहम्मद इस्माइल मेरठी। जन्म १२ नवम्बर १८४४ मृत्यु १ नवम्बर १९१७ इन्होंने उर्दू एवं फ़ारसी गद्य-पद्यमें बहुत कुछ लिखा है। बच्चोंके लिए लिखी इनकी कविताएँ स्कूलोंमें बचपनमें बड़ी लोकप्रिय थीं। इनके काव्यमें नीति और धर्मका बहुत पुट है। इस्माइल साहब उन लोगोंमें से थे जिन्होंने उर्दू काव्यको नये विषय दिये नई भूमिकाएँ प्रदान कीं। काव्यके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

मैं बक़रार मंज़िल मक़सूद[1] बेनिशाँ[2]
रस्तेकी इन्तिहा[3], न ठिकाना मुक़ामका[4]।

× ×

१ उद्दिष्टस्थल चरम स्थान २ चिह्न-रहित ३ अन्त ४ ठहरने का स्थान।

हिमाये शाहिदे मुतलक़[1] न उट्ठा है न उट्ठेगा,
जिसे हम आसमाँ समझे थे वह भी इक मकाँ निकला।

× ×

कैसी समझ ! कहाँकी समझ किसलिए समझ !
हम हैं, तो वह नहीं है, वह है, तो हम नहीं।

× ×

मुझमें ईजाद[2] में बेपर्दे कोई साज़ नहीं,
है यह तेरी ही सदा, ग़ैरकी आवाज़ नहीं।

'असग़र'

सय्यद मुहम्मद वहीद उर्फ़ कमरान मिर्ज़ा। जन्म १८४० ई० मृत्यु १८८५ ई०।

इनका एक दीवान मिलता है जो रिफ़ाहे आम प्रेस लाहौरसे छपा था। इनके कलाममें रोज़मर्रे तथा ज़बानकी बहार है।

वह शोख़ी नहीं हाय क्या हो गया
वह काफ़िर तो अब कुछ नया हो गया।
तुम्हें याँ तक आना क़यामत सही
हमें जीते जानमें क्या हो गया ?

× ×

यह मस्तियोंका रंग है आगे शबाब[3] में
गोया कि यह नहाये हुए हैं शराबमें।

---

१ एक मात्र दृश्य (ईश्वर) का पूर्ण रूप पर्दा २ आवि-ष्कारोंकी पद्धति, ३ जवानीका जोश यौवन-प्राबल्य।

कुछ तो मिल जाये लबे शीरीं[1] से
ज़हर खानेकी इजाज़त ही सही।

× ×

चूर हैं मस्तीमें, यह अँगड़ाइयाँ,
ख़ाली हाथों लड़ते हैं तलवारसे।

'बेसब्र'

मुंशी बालमुकुन्द सिकन्दराबादी। जन्म १८२ ई० मृत्यु १८९ ई०। भटनागर कायस्थ थे। फ़ारसी अरबी और संस्कृतके ज्ञाता थे। ज्योतिषमें अच्छी गति थी। उर्दू फ़ारसी दोनोंमें शेर कहते थे। एक मसनवी 'लख़्ते जिगर' और एक दीवान प्रकाशित मिलता है। चन्द शेर नीचे दिये जाते हैं—

ग़ैरको देखना बचश्मे [2]हक़ारत,
देखनेका बहाना तो देखा।

साक़ी निगर[3] यह अपना नहीं ख़ुद-मसरूर, मुरूर,
यह आग तो किसीकी लगाई हुई-सी है।
कूज़ा सा कद छरेरा सा तन, चम्पई-सा रंग,
माही-सी सूरत, आँख लगाई हुई सी है।

× ×

दफ़अतन यह हुआ अश्क[4] हमारे निकल आये,
ख़ुर्शीद[5]के छूते ही सितारे निकल आये।

१ मधुराधर २ क्रोधान्वित आँखोंसे ३ जिसको पसन्द ४ आँसू, ५ सूर्य।

'तुफ़्ता'

मुंशी हरगोपाल। जन्म १८ ई. मृत्यु २ सितम्बर १८७९ ई.। भटनागर कायस्थ। ग़ालिबके परम-प्रिय शिष्योंमें थे। एक पत्रमें ग़ालिब लिखते हैं—

'मैं तुमको अपने फ़र्ज़न्दकी जगह समझता हूँ।' ज़िन्दगी भर ग़ालिब इन्हें मानते रहे, उनके सबसे ज़्यादा पत्र भी इन्हींके नाम हैं। इन्होंने ग़ालिबकी रचनाओंके सम्पादनमें सदा सहायता की। फ़ारसीमें ही लिखते थे। फ़ारसीके चार दीवान हैं और किसीमें भी बारह-तेरह हज़ार शेरसे कम नहीं।

ई अगर गोयम करा आमद मक़ी
क़स्दे जानम यारे जानी मी कुनद।
दिल कि बायदें आशनाई दाश्त सख़्त
ज़िन्दगानी जाविदानी मी कुनद।

× ×

आशिक़ाँ गर्मेतमाशा चू शुदन्द अज़ फ़र्ते शौक़,
बर रुख़े माशूक़ दीदन्द आँच हायल, साख़्तन्द।

'साक़िब'

मीरज़ा शहाबुद्दीन अहमदख़ाँ। जन्म १८४ ई.। मृत्यु १९ अप्रैल १८६९ ई.।

नवाब ज़ियाउद्दीन अहमदख़ाँ 'नय्यर' व 'रख़्शाँ'के बड़े पुत्र और ससुरालके सम्बन्धसे ग़ालिबके भतीजे थे। कलाममें दर्द है। ज़बान साफ़ है। काव्यमें प्रेमोद्रेकके साथ तसव्वुफ़की चाशनी भी है।

घर बयाबाँमें बनाया नहीं हमने लेकिन,
जिसको घर समझे हुए थे, वह बयाबाँ निकला।

× ×

रंजिशसे गर ख़फ़ा हो तो ईमाँ न हो नसीब,
काफ़िर बुतोंको कहते हैं इख़लाक़ प्यारसे।

× ×

कल मैंने कहा कि चन्द[1] पर्वेर
चेहरेसे निक़ाब आप उठायें।
कहते हैं अदाशनास[2] बाहम[3],
"अच्छा हो जो राज़ था क्यों छुपायें।
बाके रवायतें[4] मूसा व तूर,
सुन ली हो, तो देखनेको आयें।
बिस्मिल्लाह! हम उठायें पर्दे,
पर उनसे कहो कि ताब[5] लायें।"

'हाली'

शम्सुलउलमा मौलाना अल्ताफ़ हुसेन अंसारी। जन्म १८३७ ई० मृत्यु ३१ दिसम्बर १९१४ ई०।

ग़ालिबके संसर्गसे साहित्य एवं काव्यकी उत्तम शौक़ पैदा हुआ।

इन्होंने सबसे पहिले 'ग़ालिब' पर किताब (यादगारे ग़ालिब) लिखी। ग़ालिबके शिष्य होकर वह 'मीर'के अनुयायी थे जैसा स्वयं ही कहा है—

---

१ प्रेमीजन (आशिक़ोंका समूह) २ अदा (हाव भाव) को पहिचाननेवाले ३ परस्पर ४ वृत्तान्त ५ देखनेका साहस।

'हाली सुख़नमें शेफ़्ता से मुस्तफ़ीज़[1] हूँ,
शागिर्दे मीरज़ाका मुक़ल्लिद[2] हूँ मीरका।

हालीने उर्दूमें मशहूर शाइरोंकी बुनियाद डाली और सामाजिक सम स्याओंकी ओर उसे मोड़ा तथा नई डगरपर डाल दिया। मुसद्दस हाली मनाजाते बेवामें उन्होंने एक नये दर्दकी अँगड़ाई ली है। गद्यमें हयाते सादी यादगारे ग़ालिब और हयाते जावेद अमर ग्रन्थ हैं। 'मुक़द्दमा शेरो शाइरी' तथा 'यादगारे ग़ालिब'में इनकी समीक्षाशक्तिके भी दर्शन होते हैं। उर्दूके अलावा अरबी-फ़ारसीमें भी कविता करते थे। इनकी वन्दना उर्दूकी प्रथम पंक्तिके शाइरमें होती है।

इश्क़ सुनते थे जिसे हम वह यही है शायद,
ख़ुद ब ख़ुद दिलमें है इक शख़्स समाया जाता।
तुमको हज़ार शर्म सही मुझको लाख ज़ब्त
उल्फ़त[3] वह राज़[4] है, कि छुपाया न जायगा।

दिखाना पड़ेगा मुझे ज़ख़्मे दिल
अगर तीर उसका ख़ता[5] हो गया।*
नहीं भूलता उसकी रुख़्सतका वक़्त
वह रो-रोके मिलना गले हो गया।

---

१ लाभ उठानेवाला २ अनुकरणकारी ३ प्रेम ४ रहस्य ५ लक्ष्यभ्रष्ट।

* जिगर मुरादाबादीका प्रारम्भिक शेर है—

जिसे था पड़े हैं मेरे चश्मे दिल
कोई तीर शायद ख़ता हो गया।

गो मम है सुन्दो तलन्न, प साकी है दिलफ़्ता,
ऐ सेख़ ! मन फोगी न कुछ, हाँ फहे और ।
हम जिस प मर रहे हैं वह है बात ही कुछ और,
आलममें तुमसे लाख सही, तुम मगर कहाँ ?

'हाक़िर'

मुंशी नबी बख्श मक्बराबादी । मृत्यु १८९ ई ।

ग़ालिब इनकी समीक्षाशक्तिमें बड़ा विश्वास रखते थे और इनसे बराबर सलाह-मश्विरा लेते रहते थे। उनके नाम ग़ालिबके अनेक पत्र 'नादिराते ग़ालिब' में संग्रहीत हैं ।

अक्लके मुँहमें भर आया पानी,
जब कि पैकाँ का मज़ा याद आया ।
ख़त जो ग़ैरोंके किये उसने रक़म
हमको क़िस्मतका लिखा याद आया ।
बस कि मसनूई है सानाकी सिफ़त,
तुझको देखा तो ख़ुदा याद आया ।

'रम्ज़'

मीरज़ा फ़ख़्रुलमुल्क बहादुर मुहम्मद फ़ख़रुद्दीन वर्फ़ मिर्ज़ा फ़ख़रू । जन्म १८१२ ई मृत्यु १०-७-१८५६ ई । बहादुर शाह ज़फ़रके चौथे बेटे थे। कविताके अतिरिक्त संगीत और नृत्यका भी शौक़ था ।

आँखें तो उसकी देखके हाली हैं बेक़रार,
बिन देखे दिल तड़पने लगा इसको क्या हुआ ।

× ×

१ तीक्ष्ण और कटु, २ बाणकी नोक ३ निर्मित ४ निर्माता ।

तेरी राह किसने बताई, न पूछ,
दिले मुज़्तरिब[1], राहबर[2] हो गया।

× ×

यह शर्मगीं निगाह[3], यह तबस्सुम[4] निक़ाबमें,
क्या बे हिजाबियाँ हैं तुम्हारे हिजाबमें[5]

'सालिक'

मीरज़ा कुर्बान अली बेग हैदराबादी। जन्म १८२४ ई० मृत्यु १८८१ ई०।

इनमें बचपनसे ही काव्यकी ओर रुचि थी। पन्द्रह वर्षकी वयसे ही शेर कहने लगे थे। उर्दू फ़ारसी दोनोंमें कहते थे। पहिले मोमिन बादमें ग़ालिबके शिष्य हुए इसलिए इनके कलाममें दोनोंका रंग—पहिलेकी शोख़ी और दूसरेकी गहराई है—

तुम आ गये तो होश कहाँ, मेज़बाँ हो कौन,
आज आप अपने घरमें हैं कुछ मेहमाँसे हम।

× ×

रग-रगमें नेश इश्क़[6] है, ये चारागर[7] मेरे,
यह दर्द वह नहीं, कि कमी हो, कभी न हो।

× ×

---

१ आतुर हृदय २ पथप्रदर्शक ३ लज्जासे झुकी आँख ४ मुस्कान ५ तुम्हारी लज्जामें भी कैसी लज्जाहीनता है, ६ प्रेमका डंक ७ उपचारक

ज़बाँ कट जाये, गर मुँहसे तुम्हारा कुछ गिला निकले,
मगर यह तो कहूँगा, तुमको क्या समझा था, क्या निकले ?

'शादाँ' व 'क्यासी'

मीरज़ा हुसेन अलीख़ाँ। जन्म १८५ ई० मृत्यु ७ सितम्बर १८८ ई० 'आरिफ़' के छोटे लड़के थे और माँकी मृत्युके बाद ग़ालिबकी बीबी उमराव बेगमके पास पले।

तेरी हर अदा प मरता तेरे हर सुख़न प जीता,
मुझे मौत ज़िन्दगीपर, अगर इख़्तियार होता।

× ×

आलम न मुझसे पूछिए मेरे ख़यालका,
आईना बन गया हूँ, किसीके जमालका।

× ×

बेख़ुदी काम आ गयी आख़िर कि उन्हें मुझसे कुछ हिजाब नहीं,
ख़ैर हो आज ग़मकी ख़ातिर ! कि वह आते हैं और निक़ाब नहीं।

× ×

ख़याल था कि नींदका आँखोंमें है ख़ुमार,
कलकी-सी बात हो नहीं, बर्ज़े निगाहमें।

शफ़क़।

नवाब मुहम्मद मुस्तफ़ा ख़ाँ। जन्म १८ ६ ई० : मृत्यु १८६९ ई०। नवाब मुर्तज़ा ख़ाँके पुत्र थे। निवास इनका जहाँगीराबाद (मेरठ)

---

१ असर २ पिपासा।

का इलाक़ा ख़रीद लिया था। बचपन और जवानीमें रँगरलियाँ कीं पर बादमें परहेज़गार हो गये। अरबी फ़ारसीके आलिम थे। १८५७ के विद्रोहमें यह भी घसीट लिये गये और इनकी जायदाद ज़ब्त कर ली गयी तथा कारावासका दण्ड भी मिला। बादमें नवाब मुस्तफ़ा तथा अन्य प्रभावशाली मित्रोंकी सिफ़ारिशपर छोड़ दिये गये और आधी जायदाद भी मिल गयी। ग़ालिबसे इनकी ख़ूब पटती थी। उर्दू-फ़ारसी दोनोंमें शेर कहते थे। समीक्षक भी अच्छे थे। उर्दू शाइरोंका मशहूर फ़ारसी तज़किरा 'गुलशन बेख़ार' इन्हींकी रचना है। इनका काव्य करुण रससे परिपूर्ण है —

एक दिन शाम हमारी भी सेहर[1] कर देगा
वही जो शामको हर रोज़ सेहर[2] करता है।

× ×

शायद इसीका नाम मुहब्बत है शेफ़्ता!
है आग-सी जो सीनेके अन्दर लगी हुई।

× ×

हाय वह शेफ़्ता की बेताबी,
नाम लेना वह तेरे महफ़िलका।

× ×

'साक़िब'

मीरज़ा शहाबुद्दीन अहमद ख़ाँ। जन्म १८५२ ई. मृत्यु १ सितम्बर १९२५।

ग़ालिबके छोटे भाई थे। कविताकी ओर बचपनसे रुचि थी। इनकी भाषा साफ़-सुथरी तथा मुहाविरेदार है।

---

१ प्रभात २ जादू।

उठाया जो शबसे बाममें, उसने निक़ाबको,
शोख़ीने कुछ बढ़ा दिया ज़ुल्फ़के हिजाबको।

× ×

यहाँ तो यहीकी यही सूझती है,
ज़मानेका क्याफ़र नहीं सूझती है।
क़यामतक यादों प तुम भी रहे हो,
तुम्हें नासिहा! दूरकी सूझती है।

× ×

'ज़फ़र'।

अबूज़फ़र सिराजउद्दीन मुहम्मद बहादुरशाह। जन्म २४।१०।१७७५। मृत्यु ७ नवम्बर १८६२ ई०।

मुग़ल वंशके अन्तिम सम्राट्। ग़दरके अभिनेता। ग़दरके बाद इन पर अंग्रेज़ोंने मुक़दमा चलाया और इन्हें रंगूनमें निर्वासित कर दिया। वहीं बड़ी दुरवस्थामें मृत्यु हुई। दरवेश तबीयत पाई थी। उर्दू और हिन्दी (ब्रजभाषा) दोनोंमें कविता करते थे। ज़मानेकी गर्दिश और परेशानियोंने दिलके दर्दको और गहरा कर दिया था और यह तसव्वुफ़की ओर झुक गये थे। मिज़ाजमें दरवेशी आ गयी थी। इनके काव्यमें करुणाका गहरा रंग है।

पसे मर्ग[1] मेरी मज़ारपर जो दिया किसीने जला दिया,
उसे आह दामने बाद[2] ने सरेशाम ही से बुझा दिया।
शबेवस्ल[3] यूँ ही गुज़र गयी था अजब तमाशा था यारका,
कभी पा दबाके सुला दिया कभी पास रहके जगा दिया।

१ मरणोपरान्त २ प्रातःवायु ३ माशूक़के मिलनकी रात, ४ मिलनरात्रि।

पये मग़फ़िरत[1] मेरे क्या 'सफ़र' पढ़े फ़ातिहा कोई आनकर,
यह जो टूटी क़ब्रका था निशाँ उसे ठोकरोंसे मिटा दिया।

'आरिफ़'

मीरज़ा ज़ैनुल आबदीन ख़ाँ। जन्म १८१७ ई० मृत्यु १८५२ ई०।
ग़ालिबके साढ़ू भाई नवाब ग़ुलाम हुसेनके बेटे थे। ग़ालिब इन्हें पुत्रवत् स्नेह करते थे और इन्हींकी मृत्युपर उन्होंने वह मृत्युगीत लिखा जो उर्दूकाव्यमें अमर हो गया है। इनके बेटोंको अपने यहाँ लाकर रखा और पाला। आरिफ़में बड़ी प्रतिभा थी और ग़ालिब कहा करते थे कि यह मेरा सच्चा उत्तराधिकारी होगा पर भरी जवानीमें मर गये।

जो का'बे में है, है वही बुतख़ाने में जल्वा[2]
इक पर्दा है सो शैख़से हरम उठ नहीं सकता।
इक देखना है, कहिए तो उसको भी छोड़ दें,
रखते नहीं हैं आपसे, इसके सिवा सारा।
उठ्ठा क़दम जो आगेको, पे नाम वर नहीं,
पीछे तो छोड़ आये कहीं उसका घर नहीं।

'शाकिर'

मुंशी मुहम्मद एहसान हुसेन। उस्तादोंकी शानपर ग़ज़ल लिखते थे। पद्य-गद्यमें समान गति थी। चूंकि तीन दीवान प्रकाशित हैं। कलामके चन्द नमूने यहाँ दिये जाते हैं —

हाय किस नाज़से कहते हैं वह मुझसे हरदम,
'अपनी सूरत तो देखो, तुम्हें चाहें क्योंकर ?''

× ×

---

१ मुक्तिके लिए। २ छवि।

उन्हें ग़ुस्सा, कि मेरी बज़्ममें यह किसलिए आया,
मुझे यह ग़म, कि यह पहलूमें क्यों दुश्मनके बैठे हैं।

× ×

वह दिल है ख़ाक, जिसमें तेरी याद न हो,
वह गुल है ख़ार, जिसमें मुहब्बतकी बू न हो।

× ×

तौबा तो कर चुका हूँ, मगर कुछ-कुछ इन दिनों,
देती है दम बहारकी आबोहवा मुझे।

'अज़ीज़' :

मौलाना मुहम्मद विलायतअलीख़ाँ। जन्म ८ मार्च १८४१ ई० मृत्यु २ जुलाई १९२८ ई०।

फ़ारसी और उर्दूमें कहते थे। फ़ारसीमें चार और उर्दूमें तीन दीवान हैं। कुछ कलामका रंग देखिए—

[१]

हमने इक आलम[1] को छोड़ा इश्क़में,
लेकिन उनका और ही आलम[2] रहा।
जान दी मैंने तो पाई मरके जान
हममें जबतक दम रहा बेदम रहा।
का'बा कैसा! ज़िक्र[3] क्या! कैसी नमाज़!
उम्रभर सर उनके दरपर ख़म[4] रहा।

---

१ दुनिया २ हाल ३ जपतप ४ झुका।

उल्फ़ते ज़िन्दगी नहीं जाती,
जान बेइश्क ही नहीं जाती।
जान जाये तो आज़ जाय,
यह क़ज़ा जीते जी नहीं जाती।
होश जाते हैं, जब वह आते हैं*,
दिलकी हालत कही नहीं जाती।
क्या कहूँ मुझे[1] माजरा है, अज़ीज़!
दिल गया बेखुदी नहीं जाती।

'अज़ीज़'

मीरका मुझसे भारी था। मसिय घोड़ेका बड़ा शौक था। अक्सर शेर कहते थे।

नासेह[2] को, नातवानी[3] में हम सुनके क्या करें,
सर उनके आस्तां[4] से उठाया न जायगा।

× ×

हम यह कि अपनी मर्गको, तुम बिन तलब करें
तुम वह कि हमको तुमसे बुलाया न जायगा।

× ×

---

* मीर कहते हैं—

होश जाता नहीं रहा लेकिन
जब वह आता है तब नहीं आता।

१ अजीब २ उपदेशक ३ दुर्बलता मौनता ४ चौखट स्थान।

सर पटकता हूँ एक मुद्दतसे,
दारुए दर्दे सर नहीं मिलती।
सुबहसे शामतक है ग़श इतना,
नब्ज़ दो-दो पहर नहीं मिलती।
देखते रह हैं फिर आँखियोंसे,
क्यों नज़रसे नज़र नहीं मिलती।

'क़द्र'

मीर ग़ुलाम हुसेन बिलग्रामी। जन्म १८३३ ई० मृत्यु १४ सितम्बर १८८४ ई०।

कलामका नमूना—

वह मुझे देखकर हँस देते हैं,
आँख झुकती नहीं है मारीकी।

× ×

अभी था वस्लका इक़रार, और अभी इन्कार,
चलो हटो, इन्हीं बातोंसे 'क़द्र' जलते हैं।

× ×

तू मेरे बोसे लेने प, इतना ख़फ़ा हुआ!
पास भी कोई चीज़ है, तू सौ मार ले।

'मजरूह'

मीर मेहदी हुसेन। जन्म १८३३; मृत्यु १५ मई १९०३ ई०।
ग़ालिबके अत्यन्त प्रिय शिष्योंमें थे। इनके नाम लिखे ग़ालिबके अनेक महत्वपूर्ण पत्र मिलते हैं। कलाम रिन्दीकी निराली अदामें है—

यह जो चुपकेसे आये बैठे हैं,
लाख फ़ितने[1] उठाये बैठे हैं।
यह भी कुछ जीमें आ गई होगी,
क्या वह मेरे सिखाये बैठे हैं।

× ×

दिलमें हसरत, जिगरमें दाग़ कहाँ,
अब वह पहला-सा इज्तिराब[2] कहाँ?
वह समाये हुए हैं नज़रोंमें,
अपनी आँखोंमें जाये ख़्वाब[3] कहाँ?
दरे मयख़ाना यह रहा, मबरूक!
आप जाते हैं, ऐ जनाब, कहाँ?

× ×

मेरी टूटी हुई तोबाके टुकड़े
कोई रख दे ज़रा पीरे मुग़ाँ[4] से।
कि उनको आइना मैं तोड़ डालूँ,
फिर इक जामे शराबे अर्ग़वाँ से।

'नाज़िम'

नवाब मुहम्मद यूसुफ़ अलीख़ाँ नवाब रामपुर। जन्म ५ मार्च १८१६ ई० मृत्यु २१ एप्रिल १८६५ ई० ।

---

१ उपद्रव मालूम नटखटपन २ व्याकुलता ३ स्वप्नकी जगह, ४ मदिरालयका मुख्य प्रबन्धक ५ पवित्र मस्जिद।

है यह साक़ीकी करामत, कि नहीं जामके पाँव,
और फिर बज़्ममें सबने उसे चलते देखा।

× ×

इससे क्या बहस, कि होगी उसे फ़ुरक़त कैसी,
मौत इसमें नहीं आती, यह मुसीबत कैसी।

× ×

होते ही दर्दे जिगर क्यों उठ खड़े हुए,
मानी यह ऐसे हैं, कि न इनसे सुना गया।

परिशिष्ट २

गदर और बादके जमानेकी दिल्ली

गालिबने अपने मित्रों तथा शिष्योंको १८५७ तथा बादमें जो पत्र लिखे हैं उनसे उस जमानेकी दिल्लीकी हालतपर प्रकाश पड़ता है। इन पत्रोंसे कुछ अंश यहां दिये जाते हैं।

पत्र १ दिसम्बर १८५७

"अपने घरमें बैठा हूं। दरवाजेसे बाहर नहीं निकल सकता। सवार होना और कहीं जाना तो बड़ी बात है। रहा यह कि कोई मेरे पास आवे! शहरमें है कौन जो आवे? घरके घर बेचिराग पड़े हैं।

पत्र २ । ५ दिसम्बर १८५७

'खुदाकी कसम! ढूंढनेपर मुसलमान इस शहरमें नहीं मिलता क्या अमीर क्या गरीब क्या कारीगर अगर कुछ हैं तो बाहरके हैं। हिन्दू आकर कुछ बस गये हैं। अभी देखना चाहिए, मुसलमानोंकी आबादीका हुक्म होता है या नहीं।"

पत्र ३ ५ दिसम्बर १८५७

'तुम हर्गिज यहां आनेका इरादा न करना। अमीर गरीब सब निकल गये। जो रह गये थे वह निकाले गये जागीरदार पेंशनदार वगैरः कोई भी नहीं है। मुफस्सिल हाल लिखते हुए डरता हूं। किलेके नौकरोंपर कड़ी मार है। इन पत्रोंसे कुछ कुछ स्पष्ट है और इनसे घर-पकड़ हो

रही है। अंग्रेजी इन्तिज़ाम ११ मई से आज यानी ५ दिसम्बर तक बराबर जारी है।

पत्र ४   ५ दिसम्बर १८५७

'साहब तुम तो बच्चोंकी-सी बातें करते हो। दिल्लीको वैसी ही बसी हुई जानते हो जैसी पहले थी। क़ासिमजानकी गली मीर ख़ैरातीके फाटकसे फ़तहउल्लाह बेगके फाटक तक बेचिराग़ है। हाँ अगर आबादी है तो यह है कि गुलाम हुसेन ख़ाँकी हवेली अस्पताल है और ज़ियाउद्दीन ख़ाँके कमरेमें डाक्टर साहब रहते हैं। ज़ियाउद्दीन ख़ाँ और उनके भाई अपने बाल-बच्चे समेत लोहारूमें जा बसे। लालकुएँके मुहल्लेमें धूल उड़ती है। आदमीका नाम नहीं। तुम्हारे मकानमें जो छोटी बेगम फ़िरंगी की बीवी रहती थी उसके पास इस ख़िदमतगारको भेजा था। मालूम हुआ वह लाहौरको गयी है। तेलीकी दुकानमें कुत्ते लोटते हैं। मुंशी सदरुद्दीन साहब लाहौर गये हैं।

पत्र ५ । १८५८ ई०

एक मजेदार बात परसोंकी सुनो। हाफ़िज़ मम्मू बेगुनाह साबित हो चुके। छूट चुके। हाकिमके सामने हाज़िर हुआ करते हैं। असली जायदाद माँगते हैं। उनके कब्ज़ा मुक़र्रर गुज़र चुका है। सिर्फ़ हुक्मकी देरी थी। परसों वह हाज़िर हुए थे। मिसल पेश हुई। हाकिमने पूछा— 'हाफ़िज़ मुहम्मद बख़्श कौन?' अर्ज़ किया कि— मैं। असल नाम मेरा मुहम्मद बख़्श है। मम्मू मशहूर हूँ।" कहा—"यह क्या! हाफ़िज़ मुहम्मद बख़्श भी तुम और हाफ़िज़ मम्मू भी तुम सारा जहान भी तुम जो कुछ दुनियामें है वह भी तुम। हम मकान किसको दें?" मिसल दफ़्तर दाख़िल हुई। मियाँ मम्मू अपने घर चले आये।"

पत्र ५ ५ मार्च १८५८ ई०

'तुम्हारे उस ख़तका जवाब न लिख सका। जवाब तो लिख सकता था लेकिन कल्याणका पैर सूज गया था। वह चल नहीं सकता था। मुसल्मान आदमी शहरमें बराबर बिना टिकट नहीं जा सकता। इसी मजबूरीसे तुमको ख़त न भेज सका। कई दिनके बाद जब कल्यार अच्छा हुआ तब मैं तुमको आगरे में समझकर सिकन्दराबाद ख़त न भेज सका।

पत्र ६ १८६० ई

'बड़ी भारी आफ़त यह है कि क़ारीका कुआँ बन्द हो गया। लाल-डिग्गीके कुएँ बिल्कुल बन्द हो गये। और खारी ही पानी पीते। गर्म पानी निकलता है। परसों मैं सवार होकर कुओंका हाल जानने गया था। जामा मस्जिद होता हुआ राजघाट दरवाज़ेको चला। मस्जिद जामासे राजघाट दरवाज़े तक बेमुबालग़ा एक सुनसान जंगल हो गया है। ईंटोंके जो ढेर पड़े हैं अगर वह उठ जायें तो वह भयानक जगह हो जाये। याद करो मिर्ज़ा गौहरके बाग़ीचेके इस तरफ़ कई बाँस नीचा था। अब वह बाग़ीचे सहनके मानिन्द हो गया। यहाँ तक कि राजघाटका दरवाज़ा बन्द हो गया। चहारदीवारीके कंगूरे खुले हुए हैं। बाक़ी सब अट गया। काश्मीरी दरवाज़े का हाल तुम देख गये हो। अब फ़ौजी सड़क (रेलवे लाइन) के लिए कलकत्ता दरवाज़े से काबुली दरवाज़े तक मैदान हो गया है। पंजाबी कटरा धोबीवाड़ा रामजीगंज सआदत ख़ाँका कटरा जरनैलकी बीबीकी हवेली रामजीदास गोदामवालेके घर साहब रामका बाग़ व हवेली इनमेंसे किसीका पता नहीं मिलता। पूरा शहर जंगल हो गया।

पत्र ७ १८६० ई०

'यहाँ शहर ढह रहा है। बड़े-बड़े नामी बाज़ार ख़ास बाज़ार और उर्दू बाज़ार और ख़ानमका बाज़ार जो कि इनमेंसे हर एक-एक शहर था अब पता भी नहीं कि कहाँ थे। घर व दुकानके मालिक यह नहीं बता

दिल्ली नहीं है जिसमें लाख-लाखकी छप्पर में आता-जाता हूँ। यह वह दिल्ली नहीं है जिसमें इत्मीनान शामसे ठहरा हुआ हूँ। एक कैम्प है।

बदस्तूर बादशाहके मरनेके बाद जो बचे हैं वह पाँच-पाँच रुपया महीना पाते हैं। बड़े-बड़े मुसलमानोंमें-से मरनेवालोंको गिनो— हसन अली खाँ बहुत बड़े बापका बेटा सौ रुपया रोजका पेंशनदार सौ रुपया महीना की नौकरीवाला बनकर मर गया। अमीर नासिरउद्दीन वालिदकी जानिबसे आली खानदान और नाना व नानीकी जानिबसे बहुत बड़ा अमीर था। वह बेगुनाह मारा गया। आगा सुल्तान बख्शी मुहम्मद अली खाँका लड़का जो खुद भी बख्शी हो चुका है, बीमार पड़ा। दवा न मिली। आखिरमें मर गया। तुम्हारे चचाके बराबर मरनेवालेका आखरी काम अंजाम दिया गया। जिन लोगोंको पूछो। नाज़िर हुसैन मिर्ज़ा जिसका बड़ा भाई मारा गया था उसके पास एक पैसा नहीं टकेकी आमदनी नहीं। मकान हालांकि रहनेको मिल गया है लेकिन देखिए छूटा रहेगा या ज़ब्त हो जाये। बुड्ढे साहब सब जायदाद बेचकर और सब कुछ खा पीकर सीधे भरतपुर चले गये। ज़ियाउद्दौलाकी पाँच सौ रुपया किरायेकी जायदाद छूट-छटकर फिर ज़ब्त हो गयी। बुरी हालतमें लाहौर गया। वहाँ पड़ा हुआ है। देखिए क्या होता है। क़िस्सा मुख़्तसर, बहादुरगढ़ बल्लभगढ़ और फ़र्रुख़नगर क़रीब-क़रीब तीस लाख रुपया की रियासतें मिट गयीं। शहरके अमीर मिट्टीमें मिल गये······।

—ऐजाज़ अलीके लेख (नया दौर' अगस्त १९५७) से।

०